अप्रैल मास की एक उदास संध्या अस्ताचलगामी भगवान भास्कर, इस समय अपने किरण जाल को समेट रहे थे। विदाई के समय उन्होंने एक पल अनुराग भरी सृष्टि से दृष्टि को देख स्वर्ण वृष्टि की और रजनी रानी के पर्यंक में विश्राम केलिये चल दिये। ईर्षालु मानव समुदाय को यह बात अच्छी न लगी। उसने सूर्य के सखा रजनीश के उदय होने से पूर्व ही स्वयं निर्मित प्रकाश से सृष्टि का शृंगार किया।

और फिर कनाटप्लेस का गोलाकार पार्क सहसा ही विद्युत प्रकाश से जगमगा उठा। गानों की प्रतिस्पर्धा और भी तीव्र हो गई। पक्षीगण इधर उधर से आकर पार्क के वृक्षों पर आश्रय खोजने लगे। परन्तु रजनी और राजेश अब भी पार्क में ही बैठे थे। ये दोनों सहपाठी प्रेमसूत्र में बँध चुके थे। यह स्थान उनके लिये नवीन नहीं था। तीन वर्ष से ये निरन्तर इसी पार्क और इसी हरी-हरी घास पर आकर बैठते रहे थे। यहाँ इन्होंने सदैव अपने भावी जीवन की गुत्थी सुलझाई और वह उलझती ही गई। उन्होंने उलझन में भी एक नवीनता पाई जो आज न थी। रजनी को लग रहा था—जैसे उसका भाग्य भास्कर अभी अस्त हो रहा है। वह दृष्टि झुकाये घास के तिनकों से खेल रही थी। उसके मन की उदासी मुखाकृति पर अंकित थी। कातर वाणी में उसने राजेश से कहा।

"आप विश्वास करें, मनुष्य परिस्थिति का दास है।"

राजेश ने रजनी के मुख पर आँखें गड़ाते हुए उत्तर दिया—

"मुझे तुम्हारी प्रत्येक बात पर विश्वास है रजनी! साथ ही तुम्हें भी विश्वास करना चाहिये कि सबल व्यक्तित्व की परिस्थिति दासी होती है। क्या तुमने तीन वर्ष की सहशिक्षा में भी मुझे नहीं पहचाना? मेरे विचार में यह हमारी वियोग वेला न होकर सदैव के लिये स्थिर

मिलन की पृष्ठभूमि मात्र है। इसीलिये अविश्वास को मन में स्थान न दो। दो आत्माओं के इस मिलन को संसार की कोई शक्ति पृथक नहीं कर सकती। यह प्रेम की अग्नि परीक्षा की बेला है। इस समय तुम साहस का परिचय देना चाहिए।"

"साहस हो तो साहस का परिचय दूं राजेश। आप से छुपा तो कुछ भी नहीं है। भारत विभाजन के समय ही मैं पंगु बन चुकी थी। किशोर अवस्था में जिसके माता-पिता साम्प्रदायिक दंगों के शिकार हो गये हों, उसमें आप ही बतायें, साहस आयेगा कहाँ से ?"

"देखो रजनी! कुसमय में अतीत को जितना भी सम्भव हो शीघ्र भूल जाना चाहिए। मेरी दृष्टि में तो जीवन छोटी-बड़ी कड़ियों की एक ऐसी अद्भुत शृंखला है, जिसमें न चाहने पर भी प्रत्येक प्राणी को बंधना पड़ता है। विश्वास करो, अब तुम भी बंध चुकी हो।"

"लता का बल वृक्ष का आश्रय होता है राजेश। नियति की उपेक्षा और मानवी प्रहार ने मुझे इतना दुर्बल बना दिया है, कि अब जीवन पथ में एक छोटी सी रोड़ी भी पर्वत की बाधा बन कर खड़ी हो जाती है। सच मानिए आपको पाकर मैं सब कुछ भूल चुकी थी। तीन वर्ष तक जिस कल्पवृक्ष के नीचे स्वर्गिक आनन्द पा चुकी हूँ, भला उससे दूर होने पर अब कैसे जी सकूँगी ?"

यह कहते हुए रजनी की आँखों में आँसू छलक आये।

राजेश ने जेब से रूमाल निकाल रजनी के अश्रुमुक्ताओं को जीवन निधि जानकर जेब में रख लिया। रजनी ने भी अपने दोनों हाथ राजेश के पगों पर टिका दिये। मानों वह अपने अतीत के धुँधले चित्रों को नेत्र जल से धोने का प्रयत्न कर रही हो। उसी समय राजेश ने रजनी के हाथों को अपने हाथों में लेकर हार्दिक प्रेम को मूक रूप से व्यक्त किया। गम्भीर भाव से वह बोला—

"समर्पण में विश्वास की महिमा को न भूलो रजनी! मैंने तुम्हारे सर्वस्व को ग्रहण करते समय भावी परिस्थिति पर भली प्रकार विचार

कर लिया था। मैं जानता हूँ आज हम कहाँ आ चुके हैं। यहाँ से लौट कर जाने का अब प्रश्न ही नहीं उठता। असत्यों से प्रताड़ित मानव का यह धर्म नहीं है कि वह सत्य को भी सन्देह की दृष्टि से देखने लग जाये।"

"क्षमा करना राजेश! असत्यों से निरन्तर पराजय पाने वाला प्राणी सत्य से संदिग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है। मुझे इस समय आपसे विश्वास नहीं, बल चाहिये बल।"

"देखो रजनी! निरन्तर प्रताड़ना पाने वाले तुम्हारे दुर्बल मन का यह धर्म कदापि नहीं है कि तुम मेरे प्रति शंकित और मेरे हार्दिक प्रेम के प्रति अविश्वासी बन जाओ। तुमने इतने समय में कुछ तो जाना ही होगा। मैंने प्रथम दिवस जो तुम्हें वचन दिया है वह प्राणान्त तक अमिट रहेगा। इस समय तुम्हें प्रेम पादप को विश्वास की जल गगरी से सींचना है। कभी ऐसा न हो, यह पुष्पित और फलित होने से पूर्व ही कुम्हला जाये।"

"सब कुछ खोकर तो मैंने आपको पाया है मेरे देवता। आशंका केवल यही है कहीं रुष्ट नियति आपकी छाया से भी मुझे वंचित न कर दे। मुझे आप पर आज तक कभी अविश्वास न हुआ है और न भविष्य में होगा। भय तो केवल आगन्तुक परिस्थिति का ही है। कहीं ऐसा न हो वह मुझे फिर उसी अंध कूप में डाल दे।"

"देखो रजनी! सूर्य देव सृष्टि से अभी विदा होकर गये हैं। तुम जानती हो उनका उदय निश्चित है। इसी प्रकार तपित वसुन्धरा की तृष्णा मिटाने के लिए वर्षा काल में मेघमाला आती ही है। पतझर के समय उदासीन वृक्ष और लतायें बसन्त से फिर अपनी खोई हुई मुस्कान को पाते ही हैं। फिर बताओ तुम कुछ समय के लिये विदाई के इस अवसर पर इतनी भयातुर क्यों हो गई हो? स्मरण रखो कि आत्मिक सत्य की विजय निश्चित है।"

"ठीक है राजेश। साथ ही यह भी सत्य है– प्रेम सम्बन्ध के सूत्र को इस समाज के कठोर नियमों की कतरनी एक पल में ही काट देती है। सत्य मानो, मुझे इस कतरनी से बहुत डर लगता है।"

"कैसी बातें कर रही हो रजनी। मुझे पिता जी पर पूर्ण विश्वास है। मेरी प्रसन्नता के लिये वे आज तक सब कुछ करते आ रहे हैं। मैं उन्हें विवाह के लिए भी विवश कर दूँगा। आधुनिक समाज की वैवाहिक नियमावली मेरे लक्ष्य की बाधक नहीं बन पायेगी।"

"आपके इस कथन की सभ्यता का समय ही साक्षी होगा।"

रजनी जैसे विश्वास के सोपान से फिसल पड़ी हो।

"समय के साथ ही साक्षी के लिए क्या यह हरी घास पर्याप्त नहीं है। इसी के वक्ष पर तो हमने सर्वोत्तम सम्बन्ध वेदी के प्रथम मंत्रों का तीन वर्ष उच्चारण किया है।"

"आप कुछ भी कहें। सत्य तो यह है, मैं अब आपके बिना रह ही नहीं सकती। मुझे तो अब आप यह बतायें कि हमारा स्थाई मिलन कितने दिनों में सम्भव है।"

"मेरी रजनी। अधीर न हो। घर जाते ही सर्वप्रथम कुशल-पत्र लिखूँगा। पन्द्रह दिन में विवाह का निर्णय पत्र तुम्हारे पास आ जाएगा इसके पश्चात् एक मास के भीतर तुम्हारा राजेश भी तुम्हारे पास आकर रहेगा। इन दिनों में वियोग की ज्वाला को दूरी की वायु जब भी भड़काए तुम्हें विश्वास के जल से बुझाना ही होगा।"

"इस समय मुझे स्मृति-चिन्ह भी तो चाहिए।"

"और मुझे स्मृति-अवलम्बन।"

कहते हुए राजेश ने रजनी के कपोल पर धीमी सी चपत लगा दी। रजनी ने जैसे तीन लोक के बिखरे सुख को अपनी झोली में संचित कर कर लिया हो। उसका मुख ऐसे ही खिल गया, जैसे प्रथम किरण से कमल खिल उठता है।

"कहो कैसा रहा स्मृति चिन्ह ?" राजेश ने पूछा।

रजनी कुछ न बोली। उसकी दृष्टि वसुन्धरा के हरे वक्ष पर गढ़ी हुई थी। राजेश का मन मधुकर इस समय उसकी अलकों में उलझ रहा था। कुछ देर मौन रहकर रजनी बोली—

"पत्र लिखने में देरी न करना।"

"अब तुम मुझे मेरे कर्त्तव्य का पाठ न पढ़ाओ।"

"क्यों न पढ़ाऊँ ? इस समय आप भाव लोक से कर्म लौक में जा रहे हैं। इसीलिए नारी होने के नाते मेरा यह धर्म समुचित है। कृपया माता जी और पिताजी के मेरी ओर से चरण छूना न भूलना।"

"मेरे कर्त्तव्य की प्रेरणा और भावना की अवलम्बन रजनी, मुझे क्या करना होगा, यह थोड़ा मैं भी जानता हूं।"

"मैं क्या करूँ मेरे राजेश। यह सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है। यहाँ जिसको हम जानते हैं—उसी की पुनरावृत्ति आनन्ददायी सिद्ध होती है।"

रजनी के मुख पर इस समय हल्की मुस्कान खेल रही थी।

'मेरे विचार से तो तुम्हें भी मेरे साथ ही चलना चाहिए।"

"राजेश ने रजनी की आँखों में दृष्टि गढ़ाते हुए कहा।

"अरे! आप तो अभी भावसागर में डूब गए। साथ तो अब मैं एक ही बार चलूँगी। याद रखो ऐसी चलूँगी जो कभी फिर लौटकर ही न आऊँ।"

रजनी के स्वर में अमिट विश्वास झलक रहा था।

तो फिर यह बताओ, इस समय तुम कहाँ ठहरोगी !"

"आप मेरी ओर से कोई चिन्ता न करें। मैं सागर के तट पर पड़ी सीपी के समान अपने स्वाति मेघ की प्रतीक्षा करती रहूंगी।"

"तब याद रखो, तुम्हारा मेघ वर्षा की झड़ी लगाता, हुआ, तुम्हारे पास आकर ही रहेगा।"

"यदि आप आज्ञा दें, तो राधा के पास ही ठहर जाऊँ।"

"कौन राधा ?"

"ओहो ! भूल भी गए अपने मन की मल्लिका को। वही तो राधा है। जिसको देखकर कभी आपकी कनौती खड़ी हो जाया करती थी।"

रजनी के स्वर में विनोद टपक रहा था।

"देख लो। मुझे तो वह कुछ चंचल दिखाई देती है।"

राजेश ने रजनी के विनोद को गम्भीरता में बदल दिया।

"कुछ दिन ठहरने में क्या बुराई है। अपने से तो बेचारी जब मिलती है, बड़ी ही उदारता का परिचय देती है।"

"चलो फिर जैसा तुम उचित समझो। कहाँ रहती है वह ?"

"यहीं रोहतक रोड़ के पास क्वार्टर नम्बर तैंतीस में।"

"और यदि कुछ दिन इसी कमरे में रहो तो क्या बुराई है।"

"इसको तो अब छोड़ ही दो। प्रथम तो मैं इसमें अकेली रह ही नहीं सकती। दूसरे किराया भी अधिक है।"

"तो फिर अब यह अन्तिम निश्चय हो गया न ?"

निश्चय की तो बात ही छोड़ दीजिए। मेरा कभी निश्चय था, कि सहशिक्षा मैं कभी नहीं पढ़ूँगी। और यही सह-शिक्षा मेरे जीवन का कितना बड़ा वरदान बनकर आई है। देख लीजिए न कभी-कभी निश्चय भंग होने से भी जीवन में कितना मौलिक परिवर्तन हो जाता है। मुझे तो लगता है सिद्धान्त और व्यवहार में बहुत बड़ा भेद है।"

"सिद्धान्त और व्यवहार के इस भेद को तो भविष्य में जान लेंगे देवी जी। इस समय तो सर्व प्रथम माता-पिता का आर्शीवाद प्राप्त करना है हम दोनों को।"

"पिता का आशीर्वाद सुनते ही रजनी का हृदय धड़कने लगा। वह विनम्र भाव से प्रार्थना करती हुई सी कहने लगी—"

"मेरे राजेश ! बुरा न मानना। पिताजी के आशीर्वाद की बात सुन कर ही मेरा दिल धड़कने लगता है। आप सम्पन्न परिवार के

शिक्षित और सुन्दर युवक हैं । न जाने कितनी रंगीन पंखों वाली चिड़िया आपके पथ सहगमन की प्रतिक्षा कर रही होगी । मुझे भय है कहीं मेरे जैसी असहाय युवती का मूक क्रन्दन नकारखाने में तूती की आवाज न बन जाये ।"

रजनी की आँखें फिर गीली हो गईं ।

"देखो रजनी ! तुम्हारी यह बढ़ती हुई निराशा तो मुझे भी निराश बनाकर छोड़ेगी । मुझे दुःख है, तुमने आज तक मुझे तिल बराबर भी नही पहचाना । मै पूछता हूं—तुम ने सन्देह और अविश्वास के हाथों से समर्पण की सगाई ही क्यों की है । फस्ट नो मी वैल दैन से एनीथिंग ।"

"मैंने आपको प्रत्येक दृष्टि से जान लिया है मेरे देवता । इस समय तो मैं केवल आपकी काया की छाया बनकर रहना चाहती हूं ।"

"फिर वही मूर्खता । काया की छाया तो तुम अब बन चुकी हो । कंचन जब आभूषण बन जाए, उसे आभूषण ही पुकारो ।"

"बन तो अवश्य चुकी हूं राजेश ! किन्तु जब तक अन्धकार न हटे उस समय तक छाया विलीन ही रहती है ।"

"तुम्हें दुर्बल देखकर मुझे बहुत दुःख होता है ।"

"अच्छा अब मैं सबल बनूंगी । इस समय आप मुझे एक आशीर्वाद देते जाओ ।"

कहते हुए रजनी ने दोनों हाथ राजेश के पगों पर टिका दिए ।

"सर्वस्व पाकर भी और क्या चाहती हो ? बोलो ।"

"मुझे पुत्रवती होने का आशीर्वाद चाहिए ।"

इस कथन को सुनकर राजेश की आकृति ऐसी ही बन गई जैसे वह अभी सोते से जागा हो । एक क्षण मौन रहकर वह बोला —

यह तो इस सम्बन्ध के प्रतिदान का फल है रजनी । समय पर यह तुमको ही नहीं बल्कि मुझे भी प्राप्त होगा । इस समय तो इस आशी-र्वाद को नियति पर छोड़ दीजिए ।

"मैंने इस आशीर्वाद की माँग अपनी नियति से ही की है।"

"ऐसा न कहो रजनी। मनुष्य को विधाता के पद पर आसीन करने की दुष्चेष्टा बहुत बुरी बात है।"

यह कहते हुए राजेश ने घड़ी देखी—आठ बज चुके थे। वह फिर धीमे स्वर में बोला—

"अब यहाँ से उठना भी होगा रजनी।"

रजनी ने आह सी भरते हुए उत्तर दिया—

"ऐसी क्या जल्दी !"

"यदि न उठें तो कोई उठाने वाला आ जायेगा।"

"जीवन की यही तो विचित्र विडम्बना है राजेश। दो अतृप्त आत्माओं को यह दुनियाँ कुछ देर एक साथ बैठा भी तो नहीं देख सकती।"

"हाँ रजनी।" कहते हुए राजेश ने रजनी के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर उसे ऊपर उठाया। रजनी जैसे फिसल पड़ी हो। धुंधले प्रकाश में उसने इधर-उधर देखा—और फिर राजेश के चरणों मे पड़ गई। रजनी की दोनों चोटियाँ राजेश के पगों के दोनों ओर इसी प्रकार पड़ी थी जैसे वह भावी जीवन की सम्वन्ध बेड़ियों का प्रथम संकेत कर रही हों। राजेश ने तुरन्त रजनी को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया वह भूल ही गया कि इस समय पार्क में खड़ा है। रजनी की आंखों में इस समय अश्रु निर्झरणी फूट रही थी। रजनी की इस दशा को देख राजेश की आँखें भी गीली हो गईं। वह कुछ कर्कश स्वर में बोला—

"क्या कर रही हो रजनी ? सरिता की एक धारा को यदि कोई टापू कुछ देर के लिए दो बना दे तो क्या धारायें दो ही हो जायेंगी।"

दोनों फिर मन्थर गति से बातें करते हुए पार्क से निकल ओडियन के सम्मुख आये और स्कूटर लेकर अपने लक्ष्य की ओर चल दिये।

२

सम्भावित आशंकायें कभी-कभी कितना सत्य रूप धारण करके आती हैं, राजेश को गाँव जाकर इस सत्य का बोध हो गया। उसे विश्वास था—पिताजी उसके निश्चय का समर्थन करेंगे। हुआ इसके विपरीत। वह पहले ही किसी लड़की वाले से वचन-बद्ध हो चुके थे। राजेश के पिता आस-पास के गाँवों के सम्मानित व्यक्ति थे। इसीलिए उनके लड़के के साथ सम्बन्ध के लिए वर्षों से लड़की वाले आ रहे थे। इस सिर दर्दी से छुटकारे के लिए अन्त में उन्होंने समीप के गांव की एक देखी भाली लड़की के पिता को अन्तिम वचन दे दिया। उन्होंने विवाह की आरम्भिक तैयारी भी कर ली थी।

राजेश को दिल्ली से आये आज तीसरा दिन था। उसे अपनी माता रामप्यारी से कल ही अपने विवाह के विषय में सम्पूर्ण विवरण प्राप्त हुआ था। प्रात: काल जब उसके पिता रामनाथ दूध पीकर खेतों पर जाने लगे, उसी समय अवसर पाकर राजेश बोला—

"मेरा विचार तो अभी आगे पढ़ने का है पिताजी।"

"क्यों नहीं! अवश्य पढ़ो। हमने मना कब किया है।"

"माता जी से पता चला है कि आप मेरे विवाह का निश्चय कर चुके हैं।"

"तो फिर इसमें तुम्हारी क्या हानि है। विवाह के दो बर्ष बाद गौना होगा। इतने तुम एम. ए. कर ही लोगे।"

"मुझे तो लगता है आप इस निश्चय में शीघ्रता कर गये हैं।"

उसी समय रामप्यारी वहाँ आ गई। वह बोली—

"असली बात क्यों छिपा रहे हो राजेश। जो मुझसे कहा है वह अपने पिता जी से भी कह दो।

वह फिर अपने पति को सम्बोधित कर कहने लगी—

"आप बैठ जाएँ। बात कुछ देर की है।"

रामनाथ जी दालान में पड़ी चारपाई पर बैठ गए। राजेश खड़ा रहा और रामप्यारी नीचे पड़े आसन पर बैठ गई। रामनाथ ने पूछा —"

"क्या बात है आखिर ? कुछ पता भी तो चले।"

"बात ही क्या है। यह तो राजेश से पूछो। मैं तो इतना जानती हूं कि इसके साथ कोई लड़की दिल्ली पढ़ रही है। यह उसी के साथ विवाह करना चाहता है।"

"क्या मतलब ? हमने तो इसको दिल्ली में पढ़ने के लिए भेजा था. लड़की ढूँढने के लिए तो इससे एक शब्द भी नहीं कहा।"

राजेश जो अभी दृष्टि झुकाये खड़ा था कहने लगा—

"ठीक है पिताजी। हो सकता है मैंने भूल की हो। फिर भी माता जी ने जो कुछ कहा है वह सत्य है।"

"देखो राजेश ! मैं यह मानता हूँ कि तुमने शब्द मुझसे ज्यादा पढ़े हैं। इसके साथ ही तुम यह न भूलो कि मेरा अनुभव तुमसे कहीं अधिक है। प्रत्येक मनुष्य के आयु और सम्बन्ध के अनुसार कर्म निश्चित होते हैं। तुम्हारी इस समय की गतिविधियों के हम समर्थक नहीं, आलोचक हैं।"

"ठीक है पिताजी ! फिर भी मेरे विचार से आपको विवाह का निश्चय करने से पूर्व मुझसे पूछना अवश्य चाहिए था।"

"इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि तुम्हें हमारे निश्चय पर विश्वास नहीं ! देखो राजेश तुम न भूलना— बेटा चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, पिता से बड़ा किसी दशा में भी नहीं हो सकता। पर्वत की सबसे ऊँची चोटी भी आकाश के नीचे ही होती है।"

"आपका कथन सर्वांश सत्य है पिताजी। और साथ ही मेरे लिए शिरोधार्य भी है, फिर भी मैं इतना अवश्य कहूँगा कि दुनियाँ में प्रतिस्पर्धा की दौड़ में पिता ही पुत्र को अपने से आगे देखता है। आप विश्वास करें, इस समय मैं ऐसी स्थिति में हूँ, यदि आपने मेरी इच्छा के विपरीत मेरा विवाह किया तो मैं भावी जीवन की प्रगति को खोकर अपने जीवन को अपने ही लिए एक पहेली बना बैठूँगा।"

"कुछ भी राजेश! मैंने जो कुछ निश्चय किया है, सोच-समझ कर किया है। मैं अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार जानता हूँ।"

"आप उसकी पूरी बात तो सुनें। जाना कुछ भी नहीं है, बस अपनी जबान की दुहाई दिए जा रहे हो।" रामप्यारी का मौन भंग हुआ।

"मैंने सब सुन लिया है। बुद्धिमान संकेत से ही सत्य को जान लेते हैं। मैं जानता हूँ, कोई पढ़ी लिखी लड़की होगी। देखने में सुन्दर होगी और बताओ, जानने के लिए क्या है?"

"जब सारी बातें अच्छी हों, तो विवाह में बुराई क्या है?"

"जिस विषय में तुम सोच ही नहीं सकती, उसमें व्यर्थ क्यों टाँग अड़ा रही हो? क्या मैंने विवाह का वचन देते हुए तुम से नहीं पूछा था?"

"तो अभी क्या बिगड़ गया? अभी तो बेटी बाप के ही घर है। कह देंगे—हमारा लड़का विवाह करना ही नहीं चाहता।"

"मुझे तो लगता है तुमने आज तक घास ही खाई है। उस दिन को भूल गई, जब कूद कर लड़की देखने गई थी। पुरुष की जबान हाथी के दाँत होते हैं, कछुवे की गर्दन नहीं। जानती हो, वचन देकर पीछे हटने से बदनामी होगी।"

"एक बात पर यदि आप ध्यान दें तो कहूँ।"

ये शब्द राजेश के थे।

"बात तुम एक नहीं अनेक कहो। निश्चय हमारा एक ही रहेगा।

वचन भंग कर मैं बदनामी का सेहरा सिर पर नहीं बाँध सकता।"

निश्चय आपका जो भी हो, मैं इतना अवश्य कहूँगा—

"महान से महान मनुष्य का निश्चय भी कभी असत्य हो सकता है। आप जानते ही हैं, यह युग नित्य नवीनताओं को कार्यान्वित करने का है। पुरानी रूढ़ीवादी शृंखलायें आज टूटती चली जा रही हैं। विवाह के क्षेत्र में भी अब नए आदर्श जन्म पा गये हैं। अब वह समय गया जब वर-वधु एक-दूसरे के लिए गुप-चुप की पुड़िया हुआ करते थे।"

"तो मैं समझ लूँ, तुम दिल्ली से सामाजिक क्रान्ति का ठेका लेकर आये हो। क्या तुम्हें माता-पिता के सम्मुख इस प्रकार मुँह खोलते शर्म नहीं आ रही है।"

"क्रान्ति तो होनी ही चाहिए पिताजी। पुरुष चाहे तो अनेक विवाह करे और विधवा स्त्री विवाह के नाम पर भरे यौवन काल में कलंकित हो जाय। यही तो हैं पुरानी मान्यतायें।"

"इस कथन का दूसरा अर्थ यह भी है कि जिस युवती से तुम विवाह करना चाहते हो, वह विधवा है।"

"जी हाँ! विधवा के साथ ही वह अनुन्नत जाति की भी है।"

रामप्यारी जो अब तक शान्त थी बीच में ही बोल पड़ी—

"यह तो कभी नहीं हो सकता बेटा! एक तो विधवा और दूसरे जाति-पांति का पता नहीं। मैं तो कभी नहीं मान सकती। एक तो बेटा और वह भी ऐसा विवाह करे। अच्छी रही।"

"देख लो अपने बेटे को। विधवाओं का उद्धार करने जा रहे हैं।"

"आप कुछ भी कहें पिताजी, मैं तो यह जानता हूँ कि विवाह का सम्बन्ध जाति और धन का समर्थन कभी नहीं चाहता। मेरी दृष्टि में तो विवाह दो सत्य आत्माओं के स्थायी मिलन की प्रथम विधिवत् क्रिया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"

"ठीक है राजेश। इस समय तुम अपनी इस शिक्षा को उस समय तक के लिए सुरक्षित रख दो, जब तक बाप बनो। हमें तुम्हारी शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।"

इस कथन को सुनकर राजेश बाहर चला गया। उसके जाते ही रामनाथ अपनी पत्नी से कहने लगे—

"देख लिया अपने बेटे का चाल चलन। इससे तो यह बिना पढ़ा ही अच्छा था। इसके लिए तो हमारे पास जमीन भी बहुत थी। बेकार में दिल्ली भेज कर बिगाड़ लिया।"

"कम से कम एक बार उस लड़की को देख तो लो।"

"तुम्हारी तो बुद्धि को ही कीड़ा खा गया है राजेश की माँ। क्या देख लूँ उसको? पढ़ी लिखी लड़की बाहर से टीप-टाप करके जो रहती है, इसीलिए अच्छी लगती है। क्या तुम बिना पढ़ी नहीं हो। बताओ हमने कभी कोई भूल की है? पिताजी ने जहाँ वि ाह किया, वहीं स्वीकार कर लिया।"

"मै पढ़ी नहीं तो क्या है। मेरे बाप ने दहेज भी तो कितना दिया था। एक बार तो घर ही भर गया था। इतना दहेज तो तुम्हारे बेटे के विवाह में भी नहीं आयेगा।"

"दहेज की बात छोड़ो। यहाँ तो प्रश्न वचन का है। आज वचन से गिर जाने पर कल कोई हम पर विश्वास ही नहीं करेगा। आज तो आस-पास तूती बोल रही है। छोटे बड़े कार्यों में सब पूछते हैं। कल हमें कुत्ता भी न पूछेगा। चारों ओर आगे और पीछे काना-फूसी आरम्भ हो जायेगी।"

"वचन की बात तो जानें आप। मैं तो चाहती हूँ, कोई ऐसी बहू आये, जो घर को भरती ही चली आये।"

"छपकली की दौड़ तो छत तक ही होती है। तुम दहेज के अतिरिक्त कुछ और सोच ही नहीं सकती।"

"तो क्या मैं आपकी दृष्टि में छपकली हूँ?"

"और क्या कहूँ? जब तुम बार बार दहेज की बात को ही लेकर बैठ जाती हो, तो फिर यही कहना पड़ता है। तुम ही बताओ, जब शर्मा जी का घर भी अच्छा है, लड़की स्वस्थ और सुन्दर है। फिर

विवाह में बुराई क्या है। जो बन पड़ेगा, बेचारा दहेज भी देगा।"

"तो ठीक है। अब तो मैं दिल्ली की लड़की से विवाह होने ही नहीं दूंगी। मैं तो उसे कोई बड़े घर की बेटी समझती थी।

"विवाह नहीं होने दोगी—तुम तो ऐसे कह रही हो, जैसे मैं कर ही रहा हूँ। तुम नही जानती। यह तो थोड़ी देर की जवानी का जोश है। कुछ दिनों में निकल जायेगा। अभी बिछुड़ कर आया है, इसीलिए इतना उदास रहता है।"

"कहीं जवानी में आपको भी तो ऐसी ही उदासी न हो गई थी।

"तुम भी कैसी मूर्खता भरी बातें करती हो। हमने कौन से कालेज में पढ़ाई की थी जो ऐसा होता।"

"बातें तो कुछ अनुभव की सी ही कर रहे हो।"

"हमें पता है राजेश की माँ—आजकल की शिक्षा ने युवक और युवतियों के चाल-चलन को बिल्कुल ही बिगाड़ दिया है। मैं जब घी लेकर जाता था, तो वहाँ पर लड़कियों को देखकर भौंचक्का रह जाता था। शर्म तो जैसे उन्होंने पानी में बहा दी है।"

"हमें तो कभी नहीं बताया दिल्ली से आकर।"

,'बताना ही क्या है, चाहो तो घर में ही लाकर देख लो। हाथ कंगन को आरसी क्या। बेटे का विवाह दिल्ली से कर लो।"

"छोड़ो जी! नई बहू का मुँह देख कर सब भूल जायेंगे।"

"मेरे विचार से अब इसका विवाह जल्दी ही कर दें।"

"जितनी जल्दी करो, उतना ही अच्छा है।"

"अब तुम इस विषय में इससे बात ही न करना।"

रामनाथ जी इतना कहकर खेतों पर चले गये। उनके जाते ही रामप्यारी भी अपने घर के कार्य में जुट गई।

३

मनुष्य जब तक जीता है—उसे जीवन से अनुराग है। रजनी इस सत्य को जानती है। फिर भी वह इस विषय में सोचती रहती है। मैं क्यों जी रही हूँ? उत्तर मिलता है, तुम किसी की हो—और कोई तुम्हारा है, जीना ही चाहिए। फिर वह सोचती है—क्या मेरा संचित अनुराग तद्रूप मेरे सम्मुख आएगा। उसे राधा के पास एक सप्ताह हो गया था। राजेश का उसे कुशल पत्र मिल चुका था। वह उसके आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। इस समय उसको एक पल युग बना हुआ था।

कुसमय में मनुष्य का सहयोगी कौन बन जाय—रजनी यह भी सोचती रहती। राधा के विषय में वह सब कुछ जानती थी। उसके विचार राधा से नहीं मिलते। छह मास पूर्व राधा जब उसकी विद्यालय में सहपाठिन थी, सिर का दर्द बनी हुई थी। राधा के कालेज छोड़ते समय रजनी मन ही मन प्रसन्न हुई थी। राधा सदैव रजनी और राजेश के मध्य बाधा सी बनी। रजनी अब उसी राधा के पास समय बिता रही है। राजेश पर पूर्वासक्त राधा सोचती है—रजनी के यहाँ ठहरने से राजेश यहाँ अवश्य आयेगा। वह इसीलिए रजनी के प्रति उदार है।

रात रजनी जब सोने लगी, राधा उसकी चारपाई पर जम गई। वह सोती एक ही कमरे में है फिर भी उनकी खुल कर कभी बातें नहीं हुईं। आज राधा ने निश्चय कर लिया—रजनी के जीवन का रहस्य जानना ही चाहिए। राधा का बहन भाई कोई नहीं है। केवल माता-पिता हैं सो दूसरे कमरे में सो रहे हैं। आज वैसे भी शनिवार है।

राधा ने खुलकर बातें करने का यही उचित अवसर पा लिया। उसने रात भर बातें करने का निश्चय कर वार्तालाप की श्रृंखला जोड़ी—

"कहो बहन रजनी ! क्या समाचार हैं ?"

"ठीक है राधा ! जीवन बीत ही रहा है।"

"क्या दूसरा पत्र नहीं आया राजेश का ?"

"अभी तो नहीं आया।"

"तभी तो इतनी उदास दिखाई दे रही हो।"

"उदासी तो अपने जीवन का आभूषण है राधा।"

"ऐसा न कहो रजनी। बी० ए० का परिणाम आते ही कोई नौकरी कर लेना। परीक्षा में तुम सफल हो ही जाओगी।"

"जब तक मनुष्य जीवन की परीक्षा में असफल है, उस समय तक इन परीक्षाओं का मूल्य ही क्या है राधा।"

"वर्तमान से भयभीत होकर भविष्य की आशायें नहीं छोड़नी चाहिएँ रजनी। कौन जानता है जीवन में कब कैसा मोड़ आ जाए।"

"अतीत के पच्चीस वर्षों ने जो कुछ दिया है, उसके आधार पर तो भविष्य से आशावादी होना असम्भव है राधा बहन।"

"अतीत को तो मैं कुछ नहीं जानती। हाँ, वर्तमान से भविष्य का अनुमान कर सकती हूँ। तुम्हारा भविष्य बहुत उज्जवल है।"

"जीवन की यही तो विडम्बना है मेरी बहन। अतीत से गठबन्धन के बिना भविष्य की आशायें खड़ी ही नहीं होती।"

"तो फिर आज अपने अतीत का ही थोड़ा परिचय दे दो।"

"क्या करोगी जानकर ? जो घाव भरने लगे हैं वह भी हरे हो जायेंगे। रजनी के स्वर में आह स्पष्ट झलक रही थी।

"आज तो मैंने तुम्हारी जीवन पुस्तक के प्रत्येक पाठ को पढ़ने का निश्चय कर लिया है रजनी।"

"नहीं मानती तो सुनो—भारत विभाजन के समय मैं दस वर्ष की अशिक्षित और साथ ही विवाहित किशोरी थी। साम्प्रदायिक दंगों में

माता-पिता और पति सब की मृत्यु हो गई। मैं एक सिन्धी रँगड़ जाति की लड़की हूँ। जातीय परम्परा से मेरा विवाह उस आयु में हुआ जब मैं विवाह शब्द का अर्थ भी नहीं जानती थी। विभाजन के समय मैं वृद्ध मामा के साथ भारत आई। किन्तु उनको भी विधाता ने कई वर्ष पूर्व मुझसे छीन लिया।"

कहते हुए रजनी का गला भर आया। वह जब चुप हो गई तो राधा बोली—

"इतनी अधीर न हो बहन ! दुनियाँ में एक से अधिक एक दुखिया पड़ा हुआ है और फिर यह तो समय ही कुछ ऐसा था। इस समय तो न जाने कितनों का जीवन एक जटिल समस्या बन कर रह गया है। कितनी ही जीवन कलिकायें तो खिलने से पूर्व ही मुरझा गईं।"

कुछ देर दोनों मौन बैठी रहीं। राधा ने फिर मौनता भंग की—

"तो फिर आज तक जीवन कैसे बीता है, रजनी ?

"क्या करोगी सब जानकर ? मैं तो एक रोड़ा हूँ रोड़ा। जिस ने ठुकरा कर जहाँ डाल दिया, वहीं पड़ी रही। कुछ दिन कैम्प में रही जहाँ पढ़ना आरम्भ किया। शिक्षा के लिए सेठ 'आसूमल' से दस रुपए छात्र वृत्ति मिली, तो मैट्रिक पास किया। मैट्रिक करने के पश्चात् मुझे एक कांग्रेसी की कृपा से उच्चशिक्षा के लिए पन्द्रह रुपए छात्रवृत्ति सेठ करोड़ी मल से मिली। इन्हीं कृपाओं के फलस्वरूप मैं आज यहाँ तक आ सकी हूँ।"

रजनी इतना कहते हुए फिर चुप हो गई। इस बार वह भाव-मग्न न होकर चिन्तातुर थी।

"कुछ हरिजन फंड से भी तो मिला होगा आपको ?"

"कुछ न पूछो राधा ! इस अल्प जीवन में न जाने कितनी करुणा का अवलम्बन बन चुकी हूँ मैं।"

"इतने दिनों रहती कहाँ रहीं आप ?"

"कभी कैम्प और कभी विधवा आश्रम, समय बीत ही गया।"

"सचमुच रज ! तुम्हारा जीवन तो विचित्र प्रकार की कड़ियों की बड़ी ही अद्‌भुत शृंखला है।"

"अभी कुछ और भी है राधा। भेड़ जहाँ जाती है, वहीं पर कैंची लिए मूंडने वाले भी तो बैठे रहते हैं। इस समय में एक दो भूखी आत्मायें भी तो मिली हैं। किसी ने गुप्त सम्बन्ध को विवश किया तो कोई प्रणय पोथी को ही खोल बैठा। एक नेता जी तो विवाह के लिए ही मचल पड़े। सत्य मानो बड़ी कठिनाई से सुरक्षा करने में आज तक समर्थ हो पाई हूँ।"

"यह सब किस समय की बातें हैं ?"

"कुछ वर्ष पूर्व की। इस समय तो मैं राजेश के साथ ही रहती थी।"

राधा इस कथन को सुनकर कुछ देर मौन मनन सा करती रही। फिर वह व्यवस्थित सी हो संयत स्वर में बोली—

"तब तो आपने जीवन का नया मोड़ पा लिया है। स्वागत करो बहन इस मोड़ का। राजेश के पास रहने से पूर्व कुछ निश्चय भी तो किया ही होगा। अब कुछ इसका भी परिचय दे दो।"

"निश्चय तो बहुत कुछ किया है राधा। किन्तु अन्धी का भाई जब तक गोद में न आ जाए, उसे आया हुआ कैसे जानूं। कार्यान्वित होने से पूर्व निश्चय का मूल्य ही क्या है।"

राधा ने विषय को मार्मिकता से विनोद की ओर मोड़ने के लिए कुछ मुस्कान सी बिखेरते हुए कहा—

"तब तो इन दिनों गाड़ी लाइन पर चढ़ गई होगी रजनी। सच-मुच तुम बड़ी ही भाग्यशाली हो। अब तक तुम्हारी करुणा कहानी सुनकर जितनी संवेदना जाग्रत हुई थी, उतनी ही अब तुम्हारे सौभाग्य से ईर्ष्या भी हो रही है। सत्य मानो रजनी, राजेश जैसा सर्वगुण सम्पन्न युवक जिस युवती के हृदय का हार बन जाये, उससे बड़ी सौभाग्यवती और कोई नहीं हो सकती।"

कुछ समय पूर्व वेदना के सागर में डूबी हुई रजनी राधा के इस कथन को सुनकर मन ही मन फूल गई। स्त्री के सच्चे प्रेमी की जब कोई अन्य स्त्री प्रशंसा करे, उसके लिये इससे बड़ी प्रसन्नता का जीवन में कोई अवसर ही नहीं होता। मन के उल्लास का दमन कर वह बोली—

"राजेश को पाने का जिस दिन अन्तिम विश्वास हो जायेगा राधा, उस दिन ये पांव पृथ्वी पर नहीं पड़ेंगे।"

"जिनको तुम मन रूप में पा चुकी हो, यदि वह तन रूप में न भी मिले तो क्या बात है रजनी ?

"इन थोथे आदर्शों पर मुझे अधिक विश्वास नहीं है राधा। मेरे विचार से तो नारी पुरुष के मन से भी अधिक तन की भूखी है। मन तो नारी को एक प्रौढ़ पुरुष भी दान कर सकता है। फिर बताओ नवयुवक पर ही नारी क्यों मिटती पाई जाती है।"

"मैंने कहीं पढ़ा है; कभी-कभी कुछ पाने के लिए सर्वस्व को भी खोना पड़ जाता है। क्या यह सत्य है।"

"अक्षरशः सत्य है राधा। मैं भी उनको पाने के लिये सर्वस्व खोने का निश्चय कर चुकी हूँ। सत्य मानो, यदि इस बार मुझे जीवन में निराशा मिली तो मैं जीवन से मोह ही छोड़ दूँगी।"

"मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे तुम कुछ जल्दी कर गई हो। मेरे विचार से तो जीवन के किसी पथ में भी बुद्धि का सन्तुलन नहीं खोना चाहिए। जिस पथ में आँखें नहीं, वहाँ ठोकर अवश्य लगेगी। इतिहास के पन्नों को देखो—कितनी नारियों ने इस पथ में अन्धी होकर अपना जीवन अपने ही लिये पहेली बना लिया है।"

"कथन तुम्हारा भी सत्य है राधा। किन्तु मेरे विचार से जहाँ तर्क विद्यायनी बुद्धि अपना कार्य करती रहती है, वहाँ प्रेम न होकर केवल निर्वाह ही होता है। प्रणय की तो महिमा ही यह है कि वहाँ प्राणी थोड़ी देर के लिये अन्धा सा हो जाये।"

राधा ने घड़ी देखी, बारह बज चुके थे। उसे कुछ नींद की जम्हाई सी आ गई। वह उठी, और अपनी चारपाई पर लेट गई। रजनी को अभी भी नींद नहीं आ रही थी। उसने कुछ देर शान्त भाव से मनन सा किया, और फिर पत्र लिखने बैठ गई।

प्रिय राजेश !

आप सकुशल घर पहुंच गये हैं। इस समाचार का पत्र मुझे मिल चुका है। अब मैं राधा के यहाँ दूसरे पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूँ। आशा है आपने भावी जीवन के लिए माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया होगा। मेरी ओर से आप कोई चिन्ता न करें। पत्रोत्तर द्वारा सूचित करें कि आप दिल्ली कब आ रहे हैं ? शेष मिलने पर।

आपकी
रजनी

राधा चारपाई पर लेट अवश्य गई थी। उसे नींद नहीं आई। पत्र को लिखकर जब रजनी सोने की तैयारी करने लगी, राधा चारपाई से उठकर उससे कहने लगी—

"क्या लिखा है। पत्र में रजनी ?"

"लिखना क्या है राधा। थोड़ा मन का भार कम कर लिया है। न जाने आज मेरा मन कुछ भारीपन क्यों अनुभव कर रहा है।

"प्रणय पथ में पग बढ़ाने से पूर्व ही शान्ति रहती है रजनी। मैं तो कहती हूँ भगवान किसी को इस पथ पर न बढ़ाये। मेरी मानो तो अब भाव लोक से कर्म लोक में आ जाओ। सुखमय जीवन बिताने के लिये अर्थ के पक्ष में बढ़ो मेरी बहन। मुझे एक प्रार्थना-पत्र लिख कर दे दो, मैं सेठ करोड़ीमल के मिल में ही तुम्हारे लिये किसी उपयुक्त कार्य की व्यवस्था करा दूंगी। बड़े अच्छे हैं मिल के व्यवस्थापक। मेरी बात मान लेंगे।"

"अच्छा बहन राधा ! कल लिखूंगी। अब तो सिर में दर्द हो रहा रहा है। चलो अब सो जायें। रात बहुत हो गई है।

और फिर दोनों शान्त भाव से अपने-अपने बिस्तर पर पड़ गई।

४

उस रात को राजेश न जाने कब तक जागता रहा। प्रातः वह दस बजे तक बिस्तर से न उठ पाया। रमानाथ खेतों की देखभाल के लिये चले गये थे। राम प्यारी खाना बना रही थी। उसी समय किसी बच्चे ने उनको बन्द लिफाफा दिया। पत्रवाहक लिफाफा बच्चे को दे गया था। राम प्यारी ने लिफाफा लेकर राजेश को जगाया। वह आँख मलता हुआ उठा और पत्र को तुरन्त खोल कर पढ़ने लगा। एक ही दृष्टि में वह सारे पत्र को पढ़ गया। राम प्यारी उस समय राजेश के मुख पर आँखें गड़ाये थी, जैसे वह उसके मुख को ही पढ़ रही हो। जब राजेश नें पत्र पढ़ लिया तो राम प्यारी बोली—

"किसका पत्र है बेटा ?"

"क्या करोगी जानकर माता जी ?"

"अपनी माँ से भी कुछ छिपाना चाहते हो।"

"नहीं, माता जी। आप से क्या छिपाना है। उसी लड़की का पत्र है। दिल्ली से आया है।"

"क्या लिखा है पत्र में ?"

"आप और पिताजी को चरण स्पर्श।"

"बस इतना ही था और कुछ ? पत्र तो बहुत बड़ा है।"

"और सबको जान कर आप क्या करेंगी ?"

कहता हुआ राजेश बिस्तर से खड़ा हुआ और तुरन्त बाहर चला गया। वह सोचता हुआ जा रहा था—पिताजी को अपनी वचन बद्धता

से प्यार है। माता जी को बहु रानी का दहेज चाहिए। और मैं क्या चाहता हूँ ? इस पर वह विचार करने के लिए ही तत्पर नहीं थे।

विचारों में खोया राजेश, अपने खेतों का एक चक्कर लगाकर गाँव से कुछ दूर नदी के तट पर बैठ गया। वहाँ वह प्रतिदिन ही प्रातः या संध्या अवश्य आता है। आज वह समय से कुछ पिछड़ कर आया है। उसे आज सरिता के तट की शोभा में वह उन्माद दिखाई नहीं दिया। वह सोच रहा था—यह वही प्रतिदिन वाली सरिता और उसका तट है किन्तु आज कुछ उदास है यहाँ का वातावरण। वह फिर तट पर बैठ कर पत्र को पढ़ने लगा। पत्र को कुछ पढ़ उसने एक दृष्टि सरिता के प्रवाह पर डाली। उसने देखा—

सरिता के दोनों तटों को हठीली धारा निकट आने ही नहीं देती। उसे लगा— सचमुच यह दृश्य उसी के जीवन का प्रतिबिम्ब है। क्या रजनी से उसका शाश्वत संयोग सम्भव है। विचार करते ही उसे एक धक्का सा लगा। वह कुछ सचेत सा हो फिर पत्र को पढ़ने लगा। पत्र पढ़कर उसकी दृष्टि सरिता की लहरों पर पड़ी। वह अबोध बालक के समान भयभीत हो गया। साहस सा बटोर वह स्वयं से बोला—

"जो पथिक सरिता की लहरों के उत्थान पतन से भयभीत हो गया, वह पार जा ही नहीं सकता। पुष्पों को हृदय का हार बनाने वाला व्यक्ति काँटों से भयभीत होकर क्या पायेगा ? जीवन का कौन-सा पथ है जहाँ काँटे नहीं बिछे। रजनी इन्हीं काँटों से भयभीत थी। वह नारी है, मैं पुरुष हूँ। मुझे पुरुषत्व का परिचय देना ही चाहिए। अपनत्व की सुरक्षा साहस के अभाव में सम्भव नहीं है। रजनी के अन्तिम शब्द कितने मूल्यवान थे—"मुझे पुत्रवती होने का आशीर्वाद चाहिए।" इस एक वाक्य में सृष्टि का विकास और विनाश दोनों ही निहित हैं।

अब मुझे क्या करना चाहिए ? राजेश सोच ही नहीं पा रहा है। वह फिर खड़ा हुआ और धारा के प्रवाह के साथ-साथ चलने लगा। इस प्रकार चलने में उसे कुछ सुखाभास हुआ। वह सोच रहा था—

अविराम गति से प्रवाहित यह धारा एक दिन सागर में मिल कर

अचल हो जायेगी। यही है जीवन की गति का रूपक। सागर मिलन तक न जाने कितनी बार इस धारा को मुड़ना होगा। मुड़ने से इसकी गति में कोई अन्तर नहीं आयेगा। मुझे भी जीवन पथ में मुड़ कर मार्ग बनाना चाहिए।

विचार करते ही राजेश को एक झटका लगा। वह सिर को दोनों हाथों से दबा कर तट पर बैठ गया। इस समय रजनी की लुभावनी आकृति उसकी आँखों के सामने नाच रही थी। उसे लगा—रजनी कह रही है—

"मुझे भूलना नहीं राजेश। मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। तुमने एक मुरझाई कलिका को खिलाया है और प्रतिदान में कलिका ने भी अपनी सम्पूर्ण सौरभ को तुम पर लुटा दिया है। अब कहीं ऐसा न हो जाय कि उसकी पत्तियाँ ही उड़ती फिरें।"

साहस सा बटोर राजेश फिर खड़ा हो गया। वह बड़बड़ाने लगा—कुछ भी हो, मैं अपने निश्चय पर अडिग रहूँगा। किसी के विश्वास को भंग करने से अच्छा है, उसे विष देकर मार देना।

यूँ ही बड़बड़ाता हुआ राजेश वहाँ से चलकर अपने बाग में आ गया। वहाँ वह एक पेड़ के नीचे आँखों पर हाथ रख कर बैठ गया। उसका विचार प्रवाह बदला—जिस लड़की से पिता जी मेरा सम्बन्ध निश्चित कर चुके हैं, क्यों न उसे देखा जाय? गाँव की लड़कियाँ अनपढ़ होकर भी स्वाभाविक सौन्दर्य की समष्टि होती हैं। विचार करते ही उसके हृदय से हूक सी उठी। उसने तुरन्त अपने मुँह पर तमाचा लगाया। मैं क्या सोचने लगा। जिस सौन्दर्य को देखने के लिए मैं तत्पर हुआ, वह केवल गर्मी की धूप है। दृष्टि जिस सौन्दर्य का समर्थन करती है, वह उसी को चकाचौंध कर देता है। आन्तरिक सौन्दर्य सावन की वृष्टि है, जिसके लिये एक वर्ष का समय तो अवश्य चाहिए। रजनी को तो मैं कई वर्ष प्रत्येक दृष्टि से देख चुका हूँ।

स्वयं ही तर्क-वितर्क करता हुआ राजेश जब वहाँ से उठा—एक

बज चुका था। वह फिर सीधा घर आ गया। उसके पिता उस समय उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह राजेश के आते ही बोले—

"कहाँ चले गए थे राजेश ? सवेरे से कुछ खाया भी नहीं। आओ अब मेरे साथ बैठ कर खाना खाओ।"

"क्या आपने अभी खाना नहीं खाया ?"

"नहीं, मैंने सोचा—साथ ही खायेंगे।"

राजेश को लगा—सचमुच माता-पिता का प्यार ही जीवन की सर्वोत्तम निधि है। मैं कितना अभागा हूँ जो इससे वंचित होना चाहता हूँ।" मन ही मन सोचता हुआ वह चुपचाप पिता के पास बैठ गया। और फिर उसके पिता राजेश को दुधमुँहा बच्चा समझ कर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए धीमे स्वर में बोले—

"आज कोई पत्र आया है क्या ?"

"जी हाँ, पिताजी !"

"यदि चाहो, तो अपनी होने वाली पुत्रवधु को दिखा दूँ। सत्य मानों बेटा ! शर्मा जी की लड़की साक्षात् लक्ष्मी है लक्ष्मी। मनुष्य को कभी भी छोटी भावनाओं का दास बनकर बड़ी भूल नहीं करनी चाहिए।"

"आप भोजन तो कर लें पिता जी ! इन बातों पर फिर बिचार कर लेना। हमारे कारण तो माता जी भी अभी भूखी हैं।"

"कोई बात नहीं बेटा ! तुम हंसते रहा करो। जब से तुम दिल्ली से आये हो, हमारा तो यूँ ही पेट सा भरा रहता है।"

कहते हुए राम प्यारी ने दो थाली लगा कर तख्त पर रख दी।

"अरे ! ये दो थाली क्यों लाई हो ?" राजेश भी तो खायेगा।"

"हम तो दोनों एक ही थाली में खा लेंगे।"

रामप्यारी फिर एक थाली को रसोई में ले गई। राजेश और उसके पिता खाना खाने लग गये। राजेश अन्यमनस्य भाव से भोजन भी कर रहा था और साथ ही सोच रहा था—"श्रवण कुमार ने अपने

माता-पिता को बहँगी में बिठा कर तीर्थ यात्रा कराई थी। मैं समझता हूँ, वह इस प्रकार सेवा करके भी माता-पिता के ऋण भार से मुक्ति न पा सका होगा। कितना अभागा है वह व्यक्ति जिसने माँ-बाप के स्नेह भरे हाथ की छत्रछाया नहीं पाई।"

राजेश को विचार मग्न देख रमानाथ ने मुँह के कौर को निगल एक गिलास पानी पिया और फिर बोले—

"क्या सोच रहे हो बेटा ?"

"कुछ नहीं पिताजी।"

"कुछ कैसे नहीं राजेश ! जानता मैं भी कुछ हूँ। तुम एक बात कभी मत भूलना। माता पिता के जहाँ सन्तान के प्रति अनेक कर्त्तव्य हैं, वहीं पर कुछ अधिकार भी हैं। यह आज नहीं तो कल पिता बन कर तुम जान ही जाओगे। तुम्हें विश्वास करना चाहिए कि हमने जो निश्चय किया है, वह सर्वथा उचित है और यदि कहीं त्रुटि भी रह गई है तो वह भी तुम्हें वरदान ही सिद्ध होगी।"

"ठीक है पिताजी। जो आप उचित समझें करें।" कहता हुआ राजेश पानी पीकर चुपचाप उठा, बैठक में जाकर चारपाई पर लेट गया। वह इस समय भी सोच रहा था—

"अच्छा होता, यदि मैं गाँव का एक अशिक्षित युवक ही होता। कितने भोले हैं ये ग्रामीण अनपढ़ युवक ? माता-पिता ने जिस युवती से एक बार सम्बन्ध श्रृंखलाओं में बाँध दिया, जीवन भर बँधे रहते हैं। लड़ते झगड़ते और कभी हँसते और खेलते जीवन को बिता ही देते हैं। यह जानते ही नहीं कि नारी और पुरुष के आकर्षण में मन का क्या महत्व है। अच्छा हो, मैंने जो कुछ पढ़ा है सब भूल जाऊँ। दिल्ली की जगमगाती सड़कों ने मेरे नयनों में जिस प्रकाश को जन्म दिया है, उस से तो यह गाँव का अन्धकार कहीं अच्छा है। जिस कोलाहल ने मेरे मन में खलबली को जन्म दिया है, उससे तो मेरा शान्त मन कहीं अच्छा होता।"

राजेश की चेतना दिल्ली पहुँची—रजनी ! सचमुच तुम कितनी

महान हो । तुम मुझे सम्पूर्ण रूप से जानती हो, यही मेरा सौभाग्य है । क्या हमारा अतीत अब लौट कर आयेगा । आशा धूमिल सी होती जा रही है । अब यदि प्यार की भित्तियों पर निर्मित होने वाले अत्याचार के भवन में, मैं तुमसे पृथक रहने लगूं, तो क्या तुम मुझे क्षमा कर पाओगी । नहीं, कभी नहीं । तुम्हें क्षमा करना ही नहीं चाहिए ।"

निरन्तर चिन्तन के भार से दबा हुआ राजेश थोड़ा हल्का होने के लिये खड़ा हुआ और बैठक से बाहर आ गया । उसे बाहर आते ही अपनी एक दूर के रिश्ते की भाभी मिल गई । वह पानी के दो घड़ों को सिर पर रख कर मस्त हाथी के समान झूमती जा रही थी । राजेश को देखते ही वह बोली—

"अब मिठाई कब खिलाओगे लाला जी ?"

राजेश समझ गया—यह विवाह की मिठाई की माँग है । उसने बलपूर्वक मुख पर मुस्कान को समेट कर उत्तर दिया—

"जब चाहो भाभी जी ।"

"हमने तो सुना है लाला ! शहरों में बड़ी ही रंग-बिरंगी औरतें होती हैं ।"

"सच सुना है भाभी । वहाँ तो सब कुछ ही होता है ।"

"तो फिर तुम्हें हमारी जैसी गाँव की क्यों भाएगी ।"

राजेश ने बात को टाल दिया । वह बोला—

"ये घड़े तो रख आओ भाभी । शाम को घर आऊँगा । वहीं पर खुलकर बातें कर लेना ।"

राजेश फिर खेतों की ओर भ्रमण के लिये निकल गया ।

५

सेठ करोड़ी मल के भारत में कई मिल हैं । दिल्ली में भी उनका एक कपड़ा मिल है । उनके सम्पूर्ण व्यवसायिक केन्द्रों में लगभग पन्द्रह हजार श्रमजीवी कार्य करते होंगे । भारत के प्रत्येक प्रमुख नगर में जहाँ उनके व्यवसाय चल रहे हैं, वहीं पर सभी शहरों में उनकी कोठियाँ हैं । सेठ जी रहते अधिकतर नई दिल्ली में ही हैं । यहीं पर रहते हुए, वे सारे भारत के उद्योगों पर नियंत्रण रखते हैं । दिल्ली का कपड़ा मिल उनके व्यवसायिक केन्द्रों में सबसे महत्वपूर्ण है । इसके व्यवस्थापक देवदत्त जी हैं । इनका प्रसिद्ध नाम है धर्मार्थी । सेठ जी धर्म खाते से वर्ष में जो भी दान करते हैं । उसका नियन्त्रण उत्तरदायित्व देवदत्त पर ही है । इसीलिए वह धर्मार्थी जी प्रसिद्ध हैं । भगवान की ओर से जैसे धर्मराज प्रत्येक प्राणी के स्वर्ग नरक अधिकार पर विचार करते हैं । इसी प्रकार धर्मार्थी जी भी सेठ जी की ओर से दान-पात्र की पहचान करते हैं ।

उस दिन रजनी और राधा जब सवा दस बजे धर्मार्थी जी के कार्यालय में पहुंची वह उपस्थित थे । कार्यालय में उनका आने और मिलने का कोई निश्चित समय नहीं था । राधा रजनी को लेकर निर्भीकता से अन्दर चलीं गई । राधा ने अन्दर पहुंच सबसे पहले मुस्कराते हुए प्रणाम किया और फिर रजनी का परिचय देकर वह कुर्सी पर बैठ गई । धर्मार्थी जी ने हाथ जोड़कर राधा के प्रणाम का उत्तर दिया, और फिर उनकी दृष्टि रजनी पर जम गई । रजनी इस समय दृष्टि झुकाये राधा की कुर्सी के पास खड़ी थी । धर्मार्थी जी उससे मिले—

"आप बैठिये। खड़ी क्यों हो।"

रजनी धर्मार्थी जी के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई।"

"आपको तो हमारे यहाँ से छात्रवृत्ति भी मिलती रही है।"

"जी हाँ। मैं आपकी कृपा की आभारी हूँ।"

रजनी ने फिर प्रार्थना पत्र धर्मार्थी जी के हाथ में थमा दिया। धर्मार्थी जी प्रार्थना पत्र पर विहंगम दृष्टि डाल रजनी की ओर देखने लगे। रजनी ने दृष्टि नीचे झुका ली। फिर वह राधा से बोले—

"इनका परीक्षा परिणाम तो अभी आया नहीं है। फिर भी इनको साधारण सा कार्य अभी दे देते हैं। ये मजदूरों के क्वार्टरों में जाकर धार्मिक प्रचार करें। इस कार्य के लिए इनको डेढ़ सौ रुपये मासिक दे देंगे। यदि ये चाहें तो यहीं पर इन्हें एक कमरा भी रहने के लिए दे दिया जायेगा।"

राधा ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। रजनी ने भी आन्तरिक आशंका का गला घोंट कर धीरे से कहा—

"मुझे यह सेवा स्वीकार है। कृपया यह और बता दीजिए, यह नियुक्ति कब से होगी ?"

"आज से ही समझ लीजिये।"

धर्मार्थी जी ने घंटी बजाई। घंटी बजते ही चपरासी अन्दर आकर चुपचाप खड़ा हो गया। वह उससे बोले—

"बड़े बाबू को बुलाओ।"

कुछ ही क्षणों में बड़े बाबू वहाँ आ गए। धर्मार्थी उनसे बोले—

"इनके लिए तुरन्त एक कमरे की व्यवस्था कर दो। आज से इनकी क्वार्टरों में धर्म प्रचार के लिए नियुक्ति की गई है।

"जी श्रीमान् जी!" कहकर बड़े बाबू वहाँ से चल पड़े। उनके साथ ही राधा और रजनी की भी खड़ी हो गई। धर्मार्थी ने उसी समय रजनी को रोकते हुए कहा—

"आप अभी ठहरें। कुछ विशेष बातें करनी हैं।"

न चाहने पर भी रजनी रुककर बोली—

"कहिए ! क्या आज्ञा है।"

"आप पहले भी तो एक दो बार यहाँ आई हैं।"

"जी नहीं। आपने कहीं और देखा होगा।"

"अभी आप कहाँ ठहरी हुई हैं।"

"राधा बहन के पास ही ठहरी हूँ अभी तो।"

"मजदूरों के मध्य रहने में कोई आपत्ति तो नहीं है आपको ?"

"जी, नहीं।"

"यदि वेतन कम हो, तो बढ़ाया भी जा सकता है।"

"जी नहीं प्रर्याप्त है।"

"राधा जी से आप का परिचय कैसे हुआ ?"

"यह मेरी परीक्षा काल की सखी है।"

"शायद आप सहशिक्षा में पढ़ती रही हैं।"

"जी हाँ !"

"तो फिर आपका कोई सखा भी अवश्य होगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ? ऐसे शब्द आपके मुख से शोभा नहीं देते।"

"क्षमा करना ! इस सत्य को जानने में कोई दोष ही नहीं समझते।"

"आप मुझसे बड़े हैं और साथ ही योग्य भी। क्या कह सकती हूँ मैं आपके सम्मुख। मेरी दृष्टि में तो व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित प्रश्न करना सर्वथा अनुचित है।"

"इस अनुचित और उचित के विवाद ने ही तो भारत की यह दशा बनाई है रजनी ! दूसरे देशों की ओर थोड़ा आँख उठाकर देखो वहाँ मनुष्यों को जीवन से कितना अनुराग है। यह तो केवल हमारा ही देश है जहाँ पाप और पुण्य की अनेक परिभाषाओं ने मानव-जीवन को निर्जीव बनाकर छोड़ दिया है।"

"मैं आपके पास याचना लेकर आई हूँ, तर्क करने नहीं।"

"और मेरे विचार से यहाँ आपको सर्वस्व लेकर आना चाहिए था।"

रजनी कुछ कहना ही चाहती थी, कि बड़े बाबू वहाँ आ गए। वह बोले—"चलिए बहिन जी! आपको क्वार्टर दिखा दूं।"

रजनी जैसे कारावास से मुक्त हुई हो। बड़े बाबू के साथ चल पड़ी। अखंड सौन्दर्य की एकाधिकारिणी रजनी के विषय में धर्मार्थी जी सोचते ही रह गए—कितना आकर्षक व्यक्तित्व है इस युवती का।"

जो कमरा बड़े बाबू ने दिखाया, रजनी को पसन्द आ गया। वह फिर राधा के पास आकर बैठ गई। वे दोनों कुछ देर इधर-उधर की बातें करती रहीं। उनकी बातचीत के समय वहाँ चपरासी आया और राधा को बुलाकर ले गया। राधा के कमरे में प्रवेश करते ही धर्मार्थी जी से प्रश्न किया—

"तुम्हारी सखी तो कुछ रूखी सी दिखाई देती है।"

"रूखी सी नहीं बल्कि सूखी सी कहिए।"

"क्या कह रही हो राधा? क्या फँस चुकी है किसी के जाल में।"

"आपको इतनी भी पहचान नहीं है।"

"तो क्या मैं विदेश में यही पढ़ने गया था।"

"सुना है, विदेशी लड़कियाँ सब कुछ सिखा देती है।"

"ठीक है किन्तु भारतीय लड़की से पढ़ना बहुत कठिन है।"

"तो समझ लीजिए देवी जी किसी की स्मृतियों में खोई हुई हैं।"

"कौन है वह सौभाग्यशाली?"

'इसी का एक सहपाठी युवक।"

"तब तो यह बड़ी ही उलझी हुई गुत्थी है।"

"प्रयत्न करोगे तो सुलझ जायेगी।"

"तो फिर सुलझाते समय एक सिरा तुम्हें पकड़ना होगा।"

"मुझे पकड़ना न होता तो यहाँ लाती ही क्यों?"

"क्या तुमने इसके प्रेमी युवक को देखा है ?"

"एक बार नहीं, अनेक बार।"

"बड़ा लक्की है, वह युवक।"

राधा फूट पड़ी—"लक्की ही नहीं बल्कि सुन्दर और स्वस्थ भी है। लाखों में एक है श्रीमान् जी।"

"तो क्या तुम्हारे भी मन का मन्थन किया है उसने!"

"नारी के मन का मन्थन तो ब्रह्मा भी नहीं कर पाये है जनाब।"

"ठीक है। फिर भी हम इसका मन्थन अवश्य करेंगे।"

"यह पहले ही सोच लीजिए कि मन्थन करके पाना क्या है।"

"अमृत न सही मदिरा ही सही। कुछ तो मिलेगा ही।"

"यह भी सम्भव है इन दोनों के स्थान पर केवल विष ही मिले।"

"तुम तो पहले ही ज्योतिषी बन बैठीं।"

"मेरे विचार से तो आप किसी मनभावती युवती से विवाह कर लें। इस प्रकार जीवन कब तक चलता रहेगा।"

"विवाह के पश्चात् आदमी केवल कर्तव्यों के लिये ही जीता है।

"और मेरे विचार से कर्त्तव्य पालन ही जीवन की सत्यता है।"

"तो फिर तुम आज तक विवाह के बन्धन से मुक्त क्यों ?"

"यह तो आप पहले ही जान चुके हैं। धन के अभाव में माता-पिता अच्छा लड़का पा नहीं सकते। और जिसको पाकर खिलाना पड़े, उससे तो अविवाहित रहकर माँ-बाप की सेवा कहीं उत्तम है।"

"छोड़ो इन व्यर्थ की बातों को। अपनी सखी को बुलाओ। एक बज गया है। साथ बैठकर चाय पियेगें।"

"मैं अभी बुलाकर लाती हूँ। आप चाय मंगा लें।"

कहती हुई राधा बाहर चली गई। कुछ देर में जब वह रजनी सहित वहाँ आई, चाय आ चुकी थी। राधा ने आते ही चाय तैयार की और तीनों पीने लगे। धर्मार्थी जी ने बात की शृंखला जोड़ी—

"हम चाहते हैं—हमारे मजदूरों का प्रत्येक क्वार्टर एक मन्दिर बन

जाये । घर-घर में कीर्तन हो और प्रत्येक मजदूर भगवान का भक्त हो ।"

रजनी इस कथन को सुनकर मन ही मन मुस्कराई । कितना आडम्बर है इस व्यक्ति के जीवन में । एक ओर धर्म की दुहाई देता है और दूसरी ओर अधर्म से धर्म समझकर खिलवाड़ करता है । उससे चुप न रहा गया । वह बोली—

"मजदूरों के घरों को मन्दिर बनाने का उत्तरदायित्व आप मुझ पर छोड़ दें । इस कार्य के लिये मैं दिन रात एक कर दूँगी । आप केवल उनकी आर्थिक समस्याओं को ही सुलझाते रहें ।"

"ठीक है । भविष्य में आप मजदूरों के कल्याण के लिये आप जो उचित समझें, मुझे सूचित करें । मैं उनकी कठिनाइयों पर विचार करूँगा । मैं तो उनको अपना भाई समझता हूँ । आप देखेंगी—भारत के प्रत्येक मिल में मजदूरों की यूनियन है । केवल यही एक मिल है, जहाँ के श्रमजीवियों ने कोई संगठन बनाने की बात ही नहीं सोची । मैं चाहता हूँ—भविष्य में भी यह समय न आये ।"

तीनों ने अपनी-अपनी चाय समाप्त कर प्यालियों को मेज पर रख दिया । अवसर की नाड़ी पहचान राधा बोली—

"आपकी उदारता को यहाँ कौन नहीं जानता । रजनी बहन भी भविष्य में परिचित हो जायेगी ।"

राधा फिर कुर्सी से खड़ी हो गई । वह बोली—

"अब आज्ञा दीजिये । आज मैं रजनी के साथ ही जाना चाहती हूँ । कल इनका सामान भी यहाँ लिवा कर लाना है ।"

राधा के इस कथन के साथ ही रजनी भी खड़ी हुई और हाथ जोड़ प्रणाम कर चल पड़ी ।

धर्मार्थी जी ने प्रणाम का कोई उत्तर नहीं दिया । वह न जाने उस समय कौन सी कल्पनाओं में खोये हुए थे ।

दोनों फिर वहाँ से मुक्त सी हो, सीधी घर आ गईं ।

६

रात्री के आठ बजे होंगे। रमानाथ जी भोजन से निवृत्त हो बैठक में नहीं गये। वे दालान में पड़ी चारपाई पर लेट गये। वे अपनी पत्नी रामप्यारी से राजेश के विवाह के विषय में परामर्श कर कोई अन्तिम निर्णय करना चाहते थे। चारपाई पर लेटे हुए ही वे बोले—

"मुझे तो समझ ही नहीं आता कि इस राजेश को क्या हो गया है। सुई खाया सा होता जा रहा है।

"न पेट भर खाना और न पूरी नींद सोना। फिर भला कमजोर क्यों नहीं होगा। यह तो कुछ पागल सा होता जा रहा है।"

"अब भोजन कर लिया है उसने ?"

"अभी तो आया ही नहीं है। कहीं फिरता होगा धक्के खाता।"

"इससे तो यह अनपढ़ ही अच्छा था।"

"तो फिर मुझसे क्या कह रहे हो। पढ़ाया तो आपने ही है।"

"तुम तो हर बात पर उबल पड़ती हो। कौन है जो अपने बच्चों को पढ़ाना नहीं चाहता। फिर मैंने कौन सी भूल कर दी। अब नहीं तो विवाह के बाद आप ही ठीक हो जायेगा।"

"जब यह जानते हो तो दुबला होने की बात ही क्यों करते हो?" कहती हुई रामप्यारी रसोई से दूध का गिलास हाथ में लिये रमानाथ के पास बरामदे में आकर आसन पर बैठ गई।

"यह दूध क्यों ले आई ? राजेश को तो आ जाने दो।"

उसी समय राजेश ने दालान में प्रवेश किया। वह छुप कर माता-पिता की बातें सुन रहा था। दोनों की बात-चीत से उसके हृदय में इस समय उनके प्रति श्रद्धा भाव की गंगा उमड़ रही थी।

"अभी तुमने खाना भी नहीं खाया है बेटा कहाँ थे ?" रमानाथ बोले।

"मुझे भूख नहीं है पिताजी।"

"तो फिर दूध ही पी लो।" रमानाथ ने दूध का गिलास राजेश के हाथ में थमा दिया। रामप्यारी उठी और रसोई से दूसरा दूध का गिलास ले आई। राजेश ने खड़े-खड़े ही दूध पी लिया। वह फिर वहाँ से चुपचाप बैठक में चला गया। उसके जाते ही रमानाथ रामप्यारी से बोले—

"सचमुच राजेश बहुत उदास रहता है।"

"तो फिर कर दो, उसकी मन चहेती से उसका विवाह।"

"मेरी तो समझ में एक बात नहीं आती। आखिर यह नारी क्या बला है ? महान से महान पुरुष को पल भर में ही पागल बना देती है। विचित्र है यह वशीकरण मंत्र। इसके वशीभूत मानव, परिवार, जाति, देश, धर्म आदि सब ही को भूलता चला जाता है।"

"आज तो आप बड़ी अनुभव की सी बातें कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे सब कुछ देख चुके हो।"

"हम कौन सा लड़कियों के साथ पढ़े हैं।"

"तो क्या स्त्रियाँ कालेजों में ही मिलती हैं ?"

"व्यर्थ की बातें छोड़ अब विवाह की तैयारी में जुट जाओ। मैं शर्मा जी से कह देता हूँ कि एक महीने में विवाह अवश्य करना है। वह भी तैयारी कर लेंगे।

"विवाह से इसका मन थोड़े ही बदल जायेगा।"

"बिलकुल बदल जायेगा। लोहे को लोहा ही काटता है। नारी के वियोग में व्याकुल व्यक्ति का सीधा उपाय है रिक्त स्थान की पूर्ति।

विवाह के बाद तो यह दिल्ली की ओर मुँह भी न उठायेगा।"

"आप ही जाने आदमियों के मन की बात। मैं तो यह जानती हूँ, यदि शर्मा जी की लड़की उस लड़की से सुन्दर हुई तो ही यह उसको भूल सकता है।"

"जवानी में तो सब ही स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं रानी जी। जवानी अपने आप में एक सुन्दरता है। यौवन की आँधी जब आती है, पाँव उखाड़े बिना नहीं रहती। और जब यह आँधी जाती है, अपने पीछे एक अचल शान्ति छोड़ जाती है।"

"तो क्या यह आँधी आपके भी पाँव उखाड़ चुकी है?"

"मेरे ही नहीं, साथ में तुम्हारे भी। भूल गई वह दिन जब राजेश का जन्म भी नहीं हुआ था, एक पल को भी अलग नहीं होती थीं।"

"छोड़ो इन बातों को। बैठक में जाओ। लड़का अकेला होगा। उसको समझा बुझाकर विवाह के लिये तैयार कर लो। अच्छा यही है, साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।"

"इस समय तो तुम बड़ी अच्छी लग रही हो।"

"तो क्या मैं कभी बुरी भी लगती हूँ?"

"उसी समय जब मुँह देखी बातें करती हो। हमारे सामने हमारी सी और बेटे के सामने बेटे की सी बातें करना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"देखो जी! बूढ़े पति और जवान बेटा—दोनों को प्रसन्न रखना नारी का पहला धर्म है।"

"तो क्या तुम्हारे विचार से हम बूढ़े हो गये हैं। खबरदार कभी फिर ऐसी बातें की तो। अभी तो हम जवान हैं जवान। जानती हो साठा पुरुष ही पाठा कहा जाता है और फिर हमारी तो उम्र भी अभी पचास वर्ष ही तो है। तुमने बूढ़ा ही कहना आरम्भ कर दिया।"

"अपनी जवानी की बातें छोड़कर पहले बेटे की जवानी को तो संभाल लो।"

"अच्छा एक बात मानों। हमारी जवानी को तुम संभालो और हम तुम्हारे बेटे की जवानी का प्रबन्ध करते हैं।"

रामप्यारी कुछ लजाकर रसोई में चली गई। वह वहीं से बोली—

"बैठक में जाओ। यहाँ क्या कर रहे हो?"

"जा रहे हैं श्रीमती जी।"

कहते हुए रमानाथ बैठक में चले गये। राजेश उस समय बिस्तर पर बैठा था। वह पिता को देखते ही खड़ा हो गया। रमानाथ बोले—

"बैठो बेटा! खड़े क्यों हो? रमानाथ अपने बिस्तर पर बैठ गये।

राजेश भी अपने बिस्तर पर बैठ, पिताजी से बोला—

"मैं कल दिल्ली जाना चाहता हूँ! पिताजी।"

"क्यों? क्या कोई विशेष कार्य है?"

"कुछ मित्रों से मिलना है और एक दो पुस्तक भी लानी हैं।"

"चले जाना। यह बताओ लौटोगे कब?"

"तीसरे दिन लौट आऊँगा।"

"ध्यान से सुनो तो एक बात कहूँ बेटा! मनुष्य कितना ही महान क्यों न हो, उसके जीवन की एक परिधि अवश्य है। उससे बाहर जाकर वह एक ओर अपने से शत्रुता करता है और दूसरी ओर वह सामाजिक सहानुभूति से वंचित हो जाता है मनुष्य स्वतंत्र होकर भी उद्दण्ड नहीं हो सकता। संभवहीन स्वेच्छाचारी मानव तो केवल पशु है पशु।"

"यदि आप नहीं चाहते, तो मैं दिल्ली नहीं जाऊँगा।"

"दिल्ली जाने या न जाने की बात छोड़ो। मूल बात यह है कि तुम्हें हमारे निश्चय का विरोध नहीं करना चाहिए। क्या तुम हमारी प्रसन्नता के लिये अपनी भावनाओं का बलिदान नहीं कर सकते? सत्य मानों तुम्हारी जगह यदि मैं होता, प्रथम बार ही पिता के निश्चय का समर्थन कर देता। मुझे दुःख है कि तुम अपने धर्म को भूल गये हो।"

"मैंने आपके निश्चय का विरोध न किया है और न ही भविष्य

में करूँगा। फिर भी मेरी एक प्रार्थना है। वह यही है कि आपकी वचनबद्धता मुझे दुनियाँ का सबसे विश्वासघाती बना देगी। इसीलिए उचित समझो तो विचार कर देख लो।"

"मैं तुम से बलिदान चाहता हूँ बेटा।"

"यह मेरा बलिदान न होकर किसी अबला का बलिदान है। पिताजी। अच्छा होता यदि आप मेरी इस जीवन की सबसे बड़ी भूल का समर्थन कर देते।"

"और इससे भी अच्छा यह होगा कि तुम हमारे निर्णय को सहर्ष स्वीकार कर लो।"

"मुझे आपका आदेश शिरोधार्य है। राजेश ने इस कथन के साथ हृदय को पाषाण तो बना लिया था। किन्तु वह फिर भी धड़कने लगा। उसके मुख पर असीम उदासी छा गई।"

"मेरी आत्मा सन्तुष्ट हुई बेटा।"

इस कथन के पश्चात् सन्तोष की साँस लेकर रमानाथ चुपचाप बिस्तर पर लेट गये। राजेश भी मलमल की चादर तानकर मौन मनन करने लगा—'कल दिल्ली जाकर रजनी से क्या कहूँगा ? मैं कितना आगे बढ़-कर पीछे हट रहा हूँ। एक सत्य आत्मा के प्रति विश्वासघात से बड़ा पाप क्या दुनिया में कोई और हो सकता है। कितना अच्छा हो—आने वाली प्रातः की प्रथम रश्मि मेरे शव का आलिंगन करे। पाप के भार को वहन करने के लिए क्या करूँगा जी कर ? किन्तु क्या करूँ माँगने पर मौत भी तो नहीं मिलती।"

विचारों की बहुमुखी दौड़ के पश्चात् राजेश ने निश्चय किया—"जीवन में प्रेयसी और पत्नी दोनों का स्थान पृथक है। रजनी प्रेयसी है और विवाह सम्बन्ध में बँधने वाली स्त्री पत्नी। मेरा जीवन उस जलपात के समान है, जिसको जल, पवन और किरण सब ही की आवश्यकता है। माता-पिता यदि जल हैं तो पत्नी पवन और प्रेयसी रजनी प्रातःकाल की प्रथम किरण।"

राजेश को घण्टों पड़ा रहने पर भी नींद नहीं आई। उसने दियासलाई जलाकर घड़ी देखी—बारह बज चुके थे। वह फिर बिस्तर से उठकर गली में आ गया। रात्री का सन्नाटा था। केवल झींगुरों की आवाज़ राजेश की श्रुतियों को स्पर्श कर रही थी। उसको गली में देख एक कुत्ता भौंकने लगा। फिर क्या था सारे गाँव के छोटे-बड़े कुत्ते कर्णकटु आवाज में अपने साथी के अनुयायी बन गये। धुँधली चाँदनी में राजेश गली में यूँ ही चलता चला गया। उसका कोई लक्ष्य बिन्दु न था, फिर भी वह गाँव से बाहर आ गया। रुका वह अब भी नहीं। विचारों में खोया राजेश नदी के तट पर पहुंच गया। उसे यहाँ रुकना पड़ा। उसी समय उसके मन में एक विचार उठा—

जीवन के प्रत्येक पथ का अन्तिम छोर अवश्य है वहाँ से आगे कहाँ बढ़ा जाये? जब वह खड़ा हुआ सोच रहा था, उसकी आँखों के सामने से गीदड़ों की एक जोड़ी दौड़ती हुई निकल गई। उसने दृष्टि दूसरी ओर मोड़ी। देखा तो एक मृग दम्पत्ति का जोड़ा प्रेम-क्रीड़ा कर रहा था। इधर से दृष्टि मोड़ उसने नदी के पार देखा तो उसे सारस की एक जोड़ी खेत में चुपचाप खड़ी हुई दिखाई दी। उसने सोचा—

"यही वह जोड़ी है जिसका प्रेम के पथ में साहित्यकारों ने आदर्श प्रस्तुत किया है। सचमुच मानव जीवन की अपेक्षा पशु-पक्षियों में कुछ मर्यादायें अवश्य पाई जाती है। जीवन को विकासोन्मुखी मानने वाले दार्शनिकों पर राजेश को कुछ क्रोध सा आ गया। सभ्यता की दुहाई देने वाले केवल जीवन की यथार्थता को ढाँपे हुए हैं जीवन वास्तव में उस ढोल के समान है जिसकी ध्वनि तो है किन्तु अन्दर से पूर्णतयारिक्त।"

झुरमुट में बोलने वाले किसी पक्षी ने राजेश का विचार भंग किया। उसकी दृष्टि जल प्रवाह पर पड़ी। उसने देखा—निष्ठुर जल मछलियों को छोड़कर बहता जा रहा है। कितनी महान हैं ये मछली जो एक पल के वियोग में ही प्राण दे देती हैं। राजेश को यह सब अपने जीवन का रूपक सा दिखाई दिया। वह फिर भारी पगों से घर लौट आया। उसे बिस्तर पर पड़ते ही नींद आ गई।

प्रातः जब वह उठा नौ बज चुके थे।

७

धर्मार्थी जी एक ओर मिल के व्यवस्थापक हैं—और दूसरी ओर सेठ करोड़ीमल के चहेते पुत्र समतुल्य। इस पुत्र स्नेह का एक विशेष कारण है। जब सेठजी युवा थे, उसी समय की घटना है। एक बार सेठजी एक पाठशाला के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित हुए। इस पाठशाला की प्रधानाध्यापिका थी धर्मार्थी जी की विधवा माता। उनसे सेठ का प्रथम परिचय निरन्तर निकटता का कारण बनता चला गया। वह की व्यवहार कुशल और सुन्दर। सेठजी उनकी उंगलियों पर नाचने लगे। धर्मार्थी उस समय एक वर्ष का बच्चा था। आगे चलकर उसकी शिक्षा-दीक्षा का सम्पूर्ण भार सेठ जी ने ही उठाया। विदेश से जब धर्मार्थी शिक्षा समाप्त करके आये, तो उन्हें आते ही मिल का व्यवस्थापक बना दिया गया।

सेठ जी के दो पुत्र और हैं। किन्तु वह अपना बड़ा पुत्र धर्मार्थी को ही मानते हैं। संध्या को धर्मार्थी जी सीधे सेठ जी के पास आते हैं और फिर अपनी कोठी में विश्राम करते हैं आज जब धर्मार्थी जी संध्या को सेठ के पास पहुंचे वह फोन कर रहे थे। धर्मार्थी जी चुपचाप खड़े हो गये। जब सेठ जी ने फोन करके चोगा रखा, तो धर्मार्थी जी ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। सेठ जी प्रणाम का उत्तर दिये बिना ही बोले—

"और सब काम धाम तो ठीक चल रहा है।"

"जी हाँ। सब ठीक है। कुछ ऐसा अवश्य जान पड़ता है, जैसे मजदूरों में कुछ साम्यवादी घुस आये हों।"

"अँ !" सेठ जी सुनते ही चौक पड़े—"इस बात की ओर खास ध्यान रखना। भगवान बचाये इन साम्यवादियों से। कहते हैं अपने को साम्यवादी और होते हैं पक्के ढोंगी और मक्कार। इनको तो आतंकवादी ही कहना चाहिए। उखाड़-पछाड़ के अतिरिक्त जैसे इन्हें कोई काम ही नहीं है। भोले मजदूरों की भलाई की आड़ में इन्हें अपना उल्लू सीधा करना खूब आता है। एक ओर धन कमाते हैं, और दूसरी ओर मजदूरों के लिये नेता बन जाते हैं।"

"आप चिन्ता न करें। मैं इनको मिल में पनपने ही नहीं दूँगा।"

"मिल में ही क्या, मेरा बस चले तो इन्हें दुनियाँ से ही निकाल कर फेंक दूँ। कोई इनका धर्म नहीं। ईश्वर पर विश्वास नहीं। न सिर पर टोपी होती है और न पैरों में जूती। फिर भी हर बात में अपनी टाँग जरूर अड़ाते हैं।"

"मैं भली प्रकार समझता हूँ इनकी गतिविधियों को। मैंने मिल क्वार्टरों में धर्म प्रचार की और व्यवस्था बढ़ा दी है। हमारे मिल में पंजाबी, पुरबिये और पहाड़ी तीन वर्ग के मजदूर अधिक हैं। मैं तीनों वर्गों की धर्म कीर्तन मंडली के लिए बाजे ढोलक आदि का मिल की ओर से प्रबन्ध कर रहा हूँ। प्रत्येक मजदूर से भाईचारा बढ़ाऊँगा। प्रत्येक के घर पर समय के अनुसार जाता रहूँगा। अब मैं साम्यवादियों की बातें सुनने का मजदूरों को अवसर ही न दूँगा।"

"ठीक है, इस जमाने में मजदूर भय से नहीं, प्यार से ही चलाये जा सकते हैं। जब तुम्हें कार में जाते कोई मजदूर मिले, उसे तुरन्त कार रोक कर बिठा लो। उनसे प्यार बढ़ाओ और उनमें भाग्यवाद का प्रचार कराओ। आवश्यक समझो तो कोई धर्म प्रचारक रख लो। मैं तो चाहता हूँ, हमारे प्रत्येक मिल में ही एक धर्म प्रचारक होना चाहिए।"

"आवश्यकता हुई तो ऐसा ही करूँगा।"

"करूँगा नहीं बल्कि कर दो। मेरा तो विचार है कि एक ऐसा मन्दिर बनवाऊँ जिससे विश्व में ही धर्म की जाग्रति हो। उसमें प्रत्येक

देवी देवता की मूर्ति हो । सब उसके दर्शन के लिए आयें । इससे एक ओर धर्म की जाग्रति होगी और दूसरी ओर विश्व में हमारा नाम भी होगा ।''

''यह विचार तो आपका बहुत उत्तम है । यदि हम धर्म के नाम पर प्रत्येक मजदूर से चार आने प्रति मास भी लें, तो भी पचासों हजार की प्रतिवर्ष धनराशि एकत्र हो सकती है । इसके अतिरिक्त अन्य साधनों से भी धन जुटाया जा सकता है । एक ओर अपने धर्म खाते का सारा धन वहाँ लगाएंगे और दूसरी ओर चन्दा भी एकत्र करेंगे ।''

''तुम तो बहुत समझदार हो गये हो अब ।''

''सब आप की कृपा का ही फल है सेठ जी । आपकी कृपा न होती तो हम किसी पाठशाला में बच्चों की नाक ही साफ करते होते ।''

''क्या मतलब है तुम्हारा ? मैं समझा नहीं ?''

''मतलब यही कि एक अध्यापिका का बेटा अध्यापक ही तो होता । न ऊँची शिक्षा मिलती और न उठ पाते ।''

''तुम्हें यह पता ही नहीं है कि मैं तुम्हें अपना बड़ा बेटा समझता हूँ । इस नाते पढाना तो मेरा धर्म था ।''

''मुझे पता है आप मुझे पुत्र से भी अधिक प्यार करते हैं । आपके उपकार को तो मैं आजीवन नहीं भूल सकता ।''

''अच्छा अब इस मन्दिर के निर्माण की तैयारी करो ।''

''आप चिन्ता न करें । मैं कुछ पंडितों और कलाकारों से मिलकर ही इसकी योजना बनाऊँगा ।''

''मन्दिर के निर्माण की सफलता के लिए कुछ नेताओं से भी तो मिलना होगा तुम्हें । परमिट का काम तो इनसे ही निकलना है ।''

''यह सब भी आप मुझ पर ही छोड़ दीजिये ।''

''अच्छा ठीक है कल फिर विचार करेंगे ।''

कहते हुए सेठ जी कोठी के अन्दर चले गये । धर्मार्थी जी कुछ देर वहीं बैठे विचारों में खोये रहे । उनकी उपस्थिति में ही वहाँ अकस्मात्

रजनी का प्रवेश हुआ। उसको देख धमार्थी जी के मन में उथल-पुथल सी मच गई। उन्हें आशंका हुई—"कहीं रजनी का सेठ जी से विशेष परिचय तो नहीं है। यह कहीं मेरे विषय में उलटी-सीधी बातें न कर दें। कुछ नहीं तो सेठ जी शंकित अवश्य हो जाएंगे। हो सकता है, वह फिर हमें धर्मार्थी न समझ कर क्रूर-कर्मार्थी ही समझ लें। बड़े आदमियों की आँखें नहीं होती, केवल कान होते हैं।"

रजनी को धर्मार्थी जी ने प्रणाम का अवसर ही नहीं दिया। वह दोनों हाथ जोड़ प्रणाम कर बोले —

"आइये रजनी देवी। कहो कैसे आईं ?"

रजनी ने गर्दन झुकाए हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

"मुझे आप केवल रजनी कहें तो उत्तम है।"

"क्यों ? ऐसी क्या बात है ?"

"यही कि मैं केवल रजनी हूँ— देवी नहीं।"

रजनी अभी तक खड़ी थी। धर्मार्थी जी बोले—

"आप बैठ क्यों नहीं जातीं, रजनी रानी ?"

"मैं रानी भी नहीं हूँ महोदय !"

कहती हुई रजनी कुर्सी पर बैठ गई।

"बड़ी विचित्र हैं आप तो। आदर सूचक सम्बोधन से क्या आपको कोई चिढ़ है ?"

"चिढ़ नहीं है श्रीमान् जी ! आप मुझ से प्रत्येक दृष्टि से बड़े हैं। इसीलिए आपका स्नेह सूचक सम्बोधन ही मुझे प्रिय है।"

धर्मार्थी जी सोचने लगे--विचित्र है यह युवती ! अनुपम सुन्दरी होकर भी कितनी व्यवहार कटु है पीठ पर हाथ ही नहीं रखने देती। पानी डालो तो गीली होने के स्थान पर और भी सूख जाती है।" प्रत्यक्ष रूप में वह बोले—

"आप आई किसलिए हैं इस समय ?"

"सेठ जी और आपको धन्यवाद देने।"

"धन्यवाद किस बात का ?"

"यह तो विदित ही है आप महानुभावों का कुछ मेरा अतीत आभारी है और कुछ भविष्य आशा लगाए बैठा है।"

"सेठ जी तो अब मिलेंगे नहीं। अन्दर चले गये हैं।"

"चलिए फिर कभी सही।" रजनी कुर्सी से खड़ी हो गई।

"ठहरो रजनी! हम भी चलते हैं। यदि उचित समझो तो कल पांच बजे हमारे साथ ही यहाँ आ जाना।"

"धन्यवाद।" कहती हुई रजनी चल पड़ी।

"ठहरो रजनी। इतनी जल्दी क्यों कर रही हो। इस समय बसों में तो भीड़ होगी। जहाँ कहो हम गाड़ी से छोड़ देंगे।"

"कृपा है आपकी।" कहती हुई वह कमरे से बाहर आ गई।

धर्मार्थी जी ने मन में सोचा—कहाँ तक बचोगी देवी जी। आखिर आना तो हमारी ही गली में है। प्रत्यक्ष में वह बोले—

"अरे ठहरो भी रजनी! बड़ी रूक्षता है तुम्हारे व्यवहार में।"

रजनी ने कमरे से बाहर रुककर उत्तर दिया—

'क्षमा करना मैं अभी व्यवहार कुशलता में दक्ष नहीं हूँ।"

इस कथन के पश्चात् रजनी वहाँ न रुकी। धर्मार्थी जी कुछ देर वहीं खड़े हुए विचार मग्न रहे। फिर वह कुछ निश्चय सा कर, गाड़ी स्टार्ट कर, वहाँ से चल पड़े। जब वह ओडियन बस स्टैंड पर पहुँचे तो उन्होंने रजनी को वहाँ खड़ा देख गाड़ी रोक ली। उन्होंने रजनी को संकेत से बुलाया और वह गाड़ी के पास आ गई।

"कहिए क्या आज्ञा है?" रजनी ने धीरे से पूछा।

"यहाँ भीड़ में क्यों खड़ी हो? गाड़ी में बैठ जाओ।"

"आप कष्ट न करे। मैं चली जाऊँगी।"

धर्मार्थी जी अपना सा मुँह लेकर कार स्टार्ट कर वहाँ से चल पड़े। रजनी इतनी देर में ही बस की पंक्ति में सबसे पीछे रह गई। वह फिर इसी विषय में सोचने लगी—

"भली लाइन में खड़ी थी। न जाने कहाँ से आ गया यह मनचला मधुकर, जो सूखे सुमन से सौरभ की माँग कर रहा है, यह भी नहीं जानता कि दियासलाई की तिल्ली से पत्थर नहीं पिघलता। कहीं ऐसा तो न हो, यह अद्भुत कृपालु धर्मार्थी मुझे जीवन की पंक्ति से भी इसी प्रकार अलग न कर दे।"

रजनी फिर ओडियन मे मद्रास होटल के लिए चल पड़ी। उसने सत्ताइस नम्बर बस से रोहतक रोड जाने का निश्चय किया। जब वह कनाट प्लेस के पार्क को पार कर रही थी, उसे दस दिन पूर्व की घटना स्मरण हो उठी—"यह वही पार्क है जहां प्रेमोन्माद की अनेक शुभ-घड़ियों ने जन्म लिया है और आज यह सब उजाड़ सा दिखाई दे रहा है उस समय यहाँ की प्रत्येक वस्तु नृत्य करती थी। और आज जैसे थक कर सब कुछ सो गया है।

रजनी फिर तीव्र गति से पार्क को पार करने लगी। उसने मद्रास होटल पहुँच कर बस की लम्बी पंक्ति देखी। वह पंक्ति में खड़ी हो गई। लगभग आठ बजे बस आई और रजनी को बस में स्थान मिल गया। वह पौने नौ बजे राधा के पास पहुँची। राधा ने उसको सर्व-प्रथम राजेश का एक पत्र दिया। रजनी पत्र को पाते ही खाना-पीना सब कुछ भूल गई। उसने पत्र को कई बार पढ़ा। उसमें केवल कल राजेश के दिल्ली पहुँचने की सूचना थी। रजनी को कुछ शंका अवश्य हुई, किन्तु मिलन के उन्माद में वह सब कुछ भूल गई। उस रात रजनी हर्षातिरेक के कारण सो भी नहीं पाई।

८

दूसरे दिन रजनी राधा के साथ मिल में नहीं गई। राधा ने भी विशेष हट न की। वह जानती थी इन्द्रासन को भी इस समय रज़नी छोड़ सकती है। राधा जब चलने लगी, रजनी ने इतना ही कहा —

"धर्मार्थी जी से मेरी ओर से प्रार्थना कर देना, मैं कल आऊँगी।"

राधा के चले जाने पर रजनी स्टेशन जाने की तैयारी करने लगी। यह यूँ तो इस समय आशा-निराशा के झूले में झूल रही थी। फिर भी उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। कई दिन से चला आ रहा उसका सिरदर्द दुम दबाकर भाग गया था। शरीर में नवस्फूर्ति का संचार था। उसकी आँखों में अनुराग की रेखा उभर आई थी। भुजाएँ आलिंगन के लिए उतावली थीं। पूर्णिमा के चाँद से जैसे निशा का अन्धकार विलीन हो जाय रजनी की सम्पूर्ण निराशा, चिन्ता और संवेदना इसी प्रकार समाप्त हो गई। उसका मन मेघमाला का मयूर बन गया।

रजनी की वेषभूषा दर्शनीय है। शुभ्र वसना रजनी के भाल पर बिन्दी और माँग में सिन्दूर है। पाँवों में सादी सी चप्पल हैं। गाड़ी साढ़े बारह बजे आयेगी और रजनी एक घण्टा पूर्व ही स्टेशन पहुँच गई। प्रतीक्षा की घड़ी जितनी असह्य है उतनी ही मधुर थी। रजनी ने जाते ही प्लेटफार्म टिकट ले लिया। वह फिर यात्रियों की चहल-पहल देखने लगी। वह कभी स्टेशन की ओर कभी अपनी घड़ी को

बार-बार देखती रही। उसे लग रहा था—जैसे घड़ियाँ आज कुछ धीमी गति से चल रही हैं।

रजनी ने निश्चय किया—आज जी भर कर उपालम्भ दूँगी। वह इसके लिए भाषा की खोज करने लगी। राजेश के समान शिक्षित होकर भी बात करते समय उससे भयभीत सी हुआ करती है। स्वयँ को राजेश के सम्मुख अयोग्य सा सिद्ध करने में उसे कुछ अच्छा भी लगता है आज वह जैसे सब कुछ कहना चाहती है। वह बैंच पर बैठी जब विचार मग्न थी, उसने सुना—

"आज गाड़ी आधा घन्टा लेट है।"

रजनी को कहने वाले पर मन ही मन क्रोध आ गया। उसने स्टेशन मास्टर से पूछा। पता चला,—"गाड़ी ठीक आ रही है।"

ठीक बारह बजे रजनी प्लेटफार्म पर पहुँच गई। वहाँ पर स्नेही जनों के स्वागत करने वालों की भीड़ लगी हुई थी।

कुछ स्त्री-पुरुष पुष्पमालायें भी लिये हुए थे। रजनी को लगा—

"यह सब प्रदर्शन मात्र है। सच्ची माला तो हृदय की भाव-मणियों से गूँथी जाती है। उसने आँखें फाड़कर गाड़ी को देखा वह आती हुई दिखाई न दी। उसे फिर क्रोध सा आ गया। किस पर?—यह वह स्वयँ भी नहीं जानती। वह उस ओर देखती ही रही। उसी समय सिगनल हुआ। स्वागत करने वाले जन समुदाय में कोलाहल मच गया। सबने तैयारी पूर्ण की और रजनी ने रेलगाड़ी की पटरी पर आँखें बिछा दीं।

रात्री के वियोगी को जैसे मुर्गे की बाँग या मुल्ला की अजान सुख की संदेश वाहिका बनती है। रजनी के लिए गाड़ी की सीटी वही सुख का सन्देश लेकर आई। गाड़ी के रुकते ही रजनी हजार आँखों से उसे देखने लगी। वह द्रुत गति से एक बार तो सारी गाड़ी के समानान्तर रेखा सी खींचती चली गई। भीड़ में राजेश को न पाकर अन्त में वह बाहर जाने वाले द्वार पर खड़ी हो गई। वह राजेश को देखते ही पुकार पड़ी—

"प्रिय राजेश !"

भीड़ से अलग होकर राजेश भी पुकार उठा—

"प्रिय रजनी !"

दोनों कुछ देर के लिये अवाक् से हो गये। जैसे एक दूसरे की आकृति को पढ़ रहे हों। दोनों फिर बाहर आ गये। रजनी ने एक टैक्सी को आवाज दी। उसने निश्चय किया—नई दिल्ली के किसी होटल में चाय पीते हुए ही खुलकर बातें करेंगे।"

टैक्सी में बैठते ही बात-चीत की श्रृंखला जुड़ गई।

"घर पर तो सब ठीक हैं न।"

"सब सकुशल हैं। राजेश ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।"

रजनी ने कुछ मुख पर पढ़ा, और कुछ धीमे स्वर से अनुमान लगाया। दाल में कुछ काला है।" वह फिर धीमे स्वर में ही बोली—

"आप कुछ बदले से दिखाई दे रहे हैं।"

"क्या कह रही हो रजनी ! बदलने पर मेरे यहाँ आने का प्रश्न ही नहीं उठता। इतने दिनों में बदलने वाले निश्चय भी कोई निश्चय होते हैं।"

"तो फिर क्या हो गया है आपके उल्लास और उन्माद को ?"

"हुआ कुछ नहीं, सब वैसे ही है। टैक्सी से उतरने दो, सब बता दूँगा."

"क्या कोई विशेष बात है ?"

"विशेष यही कि मैं तुम से क्षमा माँगने आया हूँ।"

रजनी ने ज्वालामुखी के विस्फोट का संकेत पा लिया। वह स्वयँ को संभाल कर बोली—

"वह कौन सी भूल है आपकी, जिसके लिये दासी से क्षमा माँग रहे हो."

"यही कि माता-पिता की प्रसन्नता के लिए मुझे सामाजिक विवाह करना ही पड़ेगा रजनी। तुम्हारी सहमति चाहिए।"

पुष्पित लतिका पर जैसे तुषारापात हो जाय। सागर को तैरकर पार करने वाला तट को छू कर जैसे डूब जाय। यही दशा राजेश के इस कथन से रजनी की हुई। एक मिनट मौन रहकर वह बोली—

"समर्थ को जब सब कुछ करने का अधिकार है, तो फिर वह असमर्थ से समर्थन क्यों चाहता है।"

टैक्सी ओडियन पर पहुँच गई। राजेश उत्तर दिये बिना ही टैक्सी से ही उतर गया। उसने टैक्सी ड्राइवर को पैसे देकर रजनी का हाथ पकड़कर नीचे उतारा। दोनों फिर उसी ओर चल दिए, जहाँ उनकी भावनायें लम्बे समय की तुला में तुलती आ रही थीं। राजेश ने पार्क में बैठते हुए उत्तर दिया—

समर्थ की सामर्थ्य का निर्माता जहाँ असमर्थ हो, वहाँ समर्थन के बिना कार्य चल ही नहीं सकता। समझ गईं न।"

"अब तो कह दो मेरी शंकायें सत्य थीं।"

रजनी की आँखें अतीत के समान गीली हो गईं।

"अरे! तुम रो रही हो। अभी तो मैं तुम्हारे ही पास हूँ। तुम्हारी सहमती के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता। जिस विवाह की मैं बातें कर रहा हूँ, वह तो एक सामाजिक प्रदर्शन मात्र है। अधीर न हो।"

"विवाह का सम्बन्ध तो सामाजिक प्रदर्शन से है। अब यह और बताओ, आने वाली बहन का सम्बन्ध किससे होगा? यथार्थ पर आदर्श की कलई न करो राजेश। आपकी विवशता का दूसरा अर्थ ही विवाह की स्वीकृति है।

"तुम मुझे क्षमा न करोगी रजनी।"

"देखो राजेश! अनेक बार एक ही बात की पुनरावृत्ति न करो। नारी का तो जीवन ही पुरुष के लिये कन्दुक-क्रीड़ा के समान है। इस में भी विशेषकर विधवा नारी का। वह तो हृदन की ऐसी क्षार है, जिसको एक ओर पवित्र कहकर सब अपने अंगों में लगाना चाहते हैं। और फिर स्नान कर धो डालना चाहते हैं, गोपन क्रियायें न पाप हैं

और न ही पुण्य। आप जानते हैं, मेरे और आपके पर्दे के पीछे वाले जीवन के इस दुनियाँ ने दर्शन ही नहीं किये। इसीलिये यह दुनियाँ हमें दंडित भी नही कर सकती। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, उसका कोई महत्त्व ही नहीं है। मेरा तो अस्तित्त्व ही आपके मनियारे की काँच की चूड़ियों के समान है। आप एक डंडा लगा दीजिए समाप्त हो जायेगा। उगता सूर्य नहीं देखता कि उसकी प्रखर किरणों से कितने ओस के बिन्दु धराशायी हो गए हैं। क्षमा तो आप मुझे ही कर दें। कितनी भूल है मेरी। नियति की प्रतिकूलता पाकर भी मैं मानव की सहानुभूति की अधिकारिणी बन जीवन जुटाने लग गई।

राजेश! रजनी की बातों को चेतना शून्य सा बैठा हुआ सुनता रहा। उसकी वाणी को जैसे लकुआ मार गया हो। बहुत कुछ विचार के पश्चात् वह बोला—

"विश्वास करो रजनी! मेरा मन, हृदय और आत्मा आजीवन तुम्हारे ही रहेंगे।"

"मन, हृदय और आत्मा की शान्ति के लिए तो कई पथ चुने जा सकते हैं राजेश! यदि कुछ नही तो भगवान की ओर ही इन्हें लगाया जा सकता है। मुझे तो आप यह बतायें, भोग की भावना का अवलम्बन किसको बनाऊँ। मन, हृदय और आत्मा की शान्ति के ये थोथे आदर्श मेरी दृष्टि में केवल एक भुलावा है आप जानते ही हैं, मुझे इन सबसे पहले आपके शरीर की भूख अधिक है और विवाह के पश्चात् इस पर अधिकार होगा आने वाली बहन का। इसके साथ ही यह न भूलो, यदि आपका मन मेरे पास रहा, तो उस बेचारी को कितना कष्ट होगा, जिसके सुहाग का मैंने प्रथम स्पर्श करने की अनाधिकार चेष्टा की है।"

इस कथन के साथ ही रजनी की आँखें भीगी और गला भर आया।

"आँसुओं के अमरकोष को रिक्त न करो रजनी।" राजेश बोला।

"आँसू रोकने और लाने की वस्तु नहीं है मेरे देवता। यह आँखें तो अब आपको साक्षात् नहीं तो स्वप्न में जीवन भर ही रोती हुई दिखाई देंगी। यहाँ तक आते हुए मैंने अनेक ठोकर खाईं। मैं सदैव साहस बटोरकर संभली और चल पड़ी। किन्तु यह ठोकर ऐसी है, जिसने मेरी सम्पूर्ण गति को ही छीन लिया है। अब एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती। जहां तक पीछे हटने का प्रश्न है वह मेरी दृष्टि में केवल कायरता है।"

"तुम्हारे कथनों का अन्तिम निचोड़ यही है कि मैं माता-पिता की इच्छा को अन्तिम रूप में ठुकरा दूँ। चलो फिर यही होगा।"

"यह आपकी सबसे बड़ी भूल होगी। मैं जानती हूँ भविष्य में आपकी दुनियाँ मुझे आपके निकट नहीं आने देगी। और निकटता के बिना मुझे शान्ति नहीं है। इसलिए विवाह करने और न करने से स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर मैं माता-पिता के कोप का भाजन ही आपको क्यों बनाऊँ। आप इस स्थिति में विवाह करें, यही उत्तम है।"

"एक ओर व्यंग और उपालम्भों की बौछार और दूसरी ओर विवाह न करने के निश्चय का विरोध—आखिर तुम चाहती क्या हो? सचमुच मैं तो चौराहे के उस सिपाही के समान बन गया हूँ, जो देखता चारों ओर है और चल किसी ओर भी नहीं पाता।"

"सिपाही का कर्तव्य केवल दूसरों को मार्ग दिखाना है राजेश कृपया आप मुझे ही बतायें—किस ओर जाऊँ?"

"और यदि इस दुनियाँ में मैं ही न रहूँ, तो फिर मार्ग कौन बतायेगा? उलझे जीवन को सुलझाने का एक उपाय आत्म हत्या भी तो है।"

"कायरों जैसा आचरण करने से पूर्व मुझे विष दे देना राजेश! मैंने पुरुष को सर्वस्व दिया है। किसी स्त्री को नहीं। स्मरण रखो—अपनी होनें वाली बहन को सौभाग्यवती होने का प्रथम आशीर्वाद मेरा ही होगा। आप विवाह करें, और मुझे केवल अपनी सहानुभूति की ही

अधिकारिणी रहने दें। आपकी काया की छाया रजनी जीवन भर आपके साथ रहेगी। हाँ दिवस न होने से दुनियाँ उसे देख नहीं पायेगी।"

इस कथन को सुन राजेश का हाथ रजनी के पगों पर टिक गया उसके मुख से निकल पड़ा—

"देवी! तुम कितनी महान् हो।"

"कितना अच्छा हो, आप मुझे सदैव ही महान् समझें।"

राजेश गद्गद् हो गया। बोला—

"तुम कुछ भी कहो, मैं विवाह नहीं करूँगा।"

"आप जानते हैं, हमारी संस्कृति में पुनर्जन्म की कल्पना की गई है।"

"यह भी कोई पूछने की बात है। कौन नहीं जानता।"

"तो फिर मुझे पुनर्जन्म में मिलने के लिए इस जन्म में भगवान से प्रार्थना ही करने दो। प्रेम तो दो जन्म की साधना है राजेश।"

"तुम भी तो जानती हो, हमारे यहाँ बहुपत्नी प्रथा चली आ रही है।"

"यह सब भविष्य पर छोड़ दो राजेश।"

कहते हुए रजनी ने हाथ की अंगूठी निकाल राजेश को दे दा।

'यह मेरी होने वाली बहन के लिए प्रेम की भेंट है।"

इस समय राजेश प्रयत्न करके भी आँसुओं को न रोक पाया—रूँधें कंठ से वह चीख पड़ा—"यह तुम क्या कर रही हो रजनी।"

"और आप यह क्या कर रहे हो? पुरुष होकर भी नारि जैसा आचरण।"

"मैं क्या कर रहा हूँ, यह अपने हृदय से पूछ लो।"

"मैंने पूछ लिया है, अब हृदय को पाषाण बनाना ही होगा।

"चलो फिर, अब यहाँ से उठें। छह बज गये हैं। रंग-बिरंगे रसिक जोड़ों के आगमन का भी समय हो गया है।"

कहते हुए राजेश खड़ा हो गया। रजनी भी मन मार कर खड़ी हुई और फिर दोनों बातें करते हुए मद्रास होटल की ओर चल पड़े। मार्ग में राजेश ने पूछा—

"यहाँ तुम्हारे ठहरने का प्रबन्ध कैसा है ?"

"सब ठीक है, जो नहीं है, वह हो जाएगा।"

रजनी ने राधा के व्यवहार और मिल में नौकरी की सारी बात राजेश को बता दी। धर्मार्थी के व्यवहार के विषय में कुछ नहीं कहा। वह जानती है—कार्य-क्षेत्र में नारी का दुर्बल मनोवृत्ति वाले पुरुषों से पाला अवश्य पड़ता है। अपना मन वश में हो तो सब ही जगह गंगा बहती है। व्यर्थ में राजेश का सिर दर्द क्यों करूँ।

बस द्वारा जब रजनी और राजेश राधा के घर पहुँचे वह वही पर थी। उसने राजेश को हाथ जोड़ प्रणाम किया। प्रणाम का उत्तर दे राजेश कुर्सी पर बैठ गया। रजनी चाय बनाने लगी और राधा राजेश से बातें करने में लग गई। चाय तैयार हुई और सबने एक साथ पी। चाय पीकर राजेश किसी मित्र के पास ठहरने चला गया।

९

धर्म के नाम पर भारत में धन एकत्र करना आँधी के आमों जैसा है। सेठ करोड़ी मल ने यहाँ मन्दिर निर्माण की जो योजना बनाई है, उसके लिए धन इसी प्रकार एकत्र किया जा रहा है। सेठ के उद्योग-केन्द्रों में श्रमिकों से चन्दा लिया जा रहा है मजदूरों का बहुमत उदारता से दान दे रहा है। जिसने विरोध किया, उसकी आवाज नकारखाने की तूती बन गई। क्यों न बने। धर्म के कामों में सब का ही तो सह-

योग होना चाहिए। छोटे पैसे से हजार तक जिससे जो मिला, वही लिया गया है। सारी व्यवस्था धर्मार्थी के हाथों में है।

देश के बड़े-बड़े दानी सेठ उदारता से दान दे रहे हैं। सब का विचार है—धर्म किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। नाम चाहे सेठ करोड़ी मल का ही हो, शान्ति तो सबको ही मिलनी चाहिए। धन एकत्र करने के सारे स्रोत खोज लिए गए है। अब केवल सरकारी कर्मचारियों का सहयोग चाहिए। धर्मार्थी जी कुछ अधिकारियों से मिल चुके हैं, सहयोग का वचन तो उन्हें सब देते हैं किन्तु सहयोग कोई नहीं देता। अभी तक स्थान की व्यवस्था भी नहीं हो पाई है। धमार्थी जी सदैव संध्या को सेठ जी से मिलते है। किन्तु वह मन्दिर की निर्माण-गति को धीमी देख, आज सेठ जी से विशेष बात चीत करने के लिए प्रातः नौ बजे ही उनके पास आ गये। धर्मार्थी जी को देखते ही सेठ जी ने प्रश्न किया—

"आज इस समय कैसे आये हो तुम ?"

"यूँ ही कुछ बातचीत करनी थी।"

"कहो क्या बात है ?" सेठ जी आराम कुर्सी पर टिक गये।

"बड़े अधिकारी तो काम ही नहीं करते। टालते रहते हैं अभी तक मन्दिर के लिए स्थान की व्यवस्था भी नहीं हो पाई है।"

"तुम काम लेना ही नहीं जानते। बड़े अधिकारी काम करते हैं चाट-पानी से, या फिर बड़े नेताओं के दबाव से। बताओ तुमने इन दोनों में से कौन सा उपाय किया है ?"

"नेताओं से मिलना तो और भी कठिन कार्य है।"

"नेता कौन है इनमें ? कल हमारे यहाँ चन्दा मांगने के लिए सौ चक्कर लगाते थे। और आज बन गए हैं नेता। भूखे को तो पेट भर रोटी मिलते ही गर्मी आ जाती है।"

सेठ जी ने धर्मार्थी से कागज कलम लेकर तीन पर्चे लिखे। फिर वह पर्चों को धर्मार्थी के हाथ में थमाते हुए बोले—

"इन तीनों में से किसी एक को अपना बना लो। एक को अपना

कर सारे काम बनाये जा सकते हैं ।"

तीनों पर्चों को हाथ में थमाते हुए धर्मार्थी जी बोले—

"चन्दे के लिए तो नेतागण आज भी हमें दुधारु गाय समझते हैं ।"

"दुधारू नहीं, कामधेनु कहो, कामधेनु । जब मन में आया दूध निकालने के लिए चल पड़े । हमारी बिल्ली और हम ही को म्याऊँ । हमारा ही खाते है और हम ही को गुर्राते हैं । कभी आय कर में वृद्धि, कभी दान की प्रार्थना । दुनाली चलाते हैं दुनाली । फिर भी क्या करें । काम तो इन्हीं दुष्टों से पड़ना है अब । हमें भी इनसे जितना हो सके लाभ उठाना ही चाहिए ।"

"मेरे विचार से तो अंग्रेज ही अच्छे थे सेठ जी ।"

"अच्छे नहीं, बहुत अच्छे । उन्होंने अनेक कर लगा कर सेठों की कमर तो नहीं तोड़ी । कभी कुछ लिया तो सम्मान भी दिया । नाम के साथ आदर सूचक 'सर' लगा कर वह आदमी की पहचान करते थे । इन कमबख्तों से तो ये भी नहीं होता । ये तो वीरों, कलाकारों और पहलवानों का आदर जानते हैं किसी को कर्मवीर तो किसी को कलावीर बनाना इन्हें खूब आता है । दानवीर जैसे इनके शत्रु हैं । सेना में देखो—किसी को वीरचक्र तो किसी को कर्मवीर चक्र और कोई परमवीर चक्र देकर बिठा दिया है । यदि हम धन न दें तो सारी नानी याद आ जाये । आज तो खाने को सिंह है, और कमाने को बेचारी बकरी ।"

"बिलकुल ठीक है सेठ जी । गुरु गुड़ थे और चेले शक्कर हो गए हैं । सचमुच ये तो अंग्रेजों के भी ताऊ हैं ।"

"छोड़ो इस सिर दर्द को । तुम मन्दिर की व्यवस्था करो । हमारा तो उससे भी नाम चल जाएगा ।"

सेठ जी उसी समय उठकर अन्दर चले गए । उनके उठते ही धर्मार्थी भी वहाँ से सीधे मिल पहुँच गए । जब वह साढ़े दस बजे मिल पहुँचे, रजनी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी । वह उदास थी और इस समय उदासी ही उसका आभूषण बनी हुई थी । रजनी ने हाथ जोड़ धर्मार्थी को प्रणाम किया । धर्मार्थी जी एक गहरी दृष्टि से रजनी को

देख, सीधे कमरे में चले गए। रजनी कुछ देर द्वार पर खड़ी रही और फिर साहस बटोर कर वह भी कमरे में चली गई। धर्मार्थी जी ने रजनी को कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा—

"आप कल नहीं आई। हमने सोचा आपका विचार कार्य करने का नहीं है, इसीलिए और प्रबन्ध कर लिया है।"

रजनी चुपचाप प्रणाम कर वहाँ से चल पड़ी। धर्मार्थी जी शान्त बैठे रहे। जब वह कमरे से वाहर निकल गई तो धर्मार्थी जी ने घण्टी बजाई। चपरासी उपस्थित हुआ। वह उससे बोले—

"जो बहन जी अभी बाहर गई है, उनको बुलाओ।"

"चपरासी ने दौड़कर रजनी को रोका। वह बोला—

"आपको अन्दर साहब बुला रहे हैं।"

रजनी लौटकर फिर अन्दर चली गई।

"अरे! आप तो एकदम चली ही गई। बैठिए।"

"आपके आदेश का पालन किया था मैंने।"

"आपकी प्रकृति बड़ी ही विचित्र है।"

"आप समझते हैं ऐसा। अन्यथा मुझ में तो कोई विचित्रता नहीं। आपने बुलाया तो मैं तुरन्त आ गई।'

"तो क्या आपको कार्य नहीं चाहिए।"

"मेरे यहाँ आने का तो केवल उद्देश्य ही यह है।"

"तुमने अभी पृथ्वी देखी है, अ काश नहीं।"

"मैंने जो कुछ देखा है, उसको छोड और कुछ नहीं चाहिए।"

"हमारा अभिप्राय आर्थिक जीवन से है।"

"देखिए महोदय! मैं अर्थ के लिए जीना नहीं चाहती। मुझे तो केवल जीने के लिए अर्थ चाहिए। इसीलिए यहाँ आई हूँ।"

"हमें तो आप सेवा का अवसर ही नहीं देना चाहतीं।"

"सेवा मुझे करनी है आपको नहीं। अवसर दीजिए।"

"सेवा का अवसर तो एक साधारण सी बात है। आप चाहें तो

हम प्रत्येक अवसर दे सकते है। दुःख यही है आप अवसर का बिल्कुल भी सदुपयोग नहीं कर रही हैं।"

"जो आशा लेकर आई हूँ, मुझे उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए।"

"कहीं आप छली तो नहीं गई हो रजनी।"

"'दूसरों को छलने वाला पहले स्वयँ को छलता है, महोदय!"

"यह थोथा आदर्श है रजनी।"

"पतनोन्मुख यथार्थ से कहीं अच्छा है यह थोथा आदर्श।"

धर्मार्थी जी को लगा—यहाँ बात बनने वाली नहीं। फिर भी इस को यहाँ रखने में क्या बुराई है। तपन से तो लोहा भी पिघल जाता है। यह तो आखिर नारी है। निरन्तर निकटता से नारी समीप आये बिना नहीं रहती। कुछ देर मौन-मनन सा कर वह बोले—

"आप शिक्षित है। जीवन के विषय में, आपका अपना निश्चय है। मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। आप यहाँ कार्य करें। मैं आप को कार्यविधि से अवगत कराता रहूँगा। आप मुझ से अवकाश मिलने पर मिलती भी रहा करें। क्वार्टर आपको मिल ही गया है।"

'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं अपने कार्य का सुचारू रूप से पालन करूँगी। आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहें।"

वह फिर खड़ी हो गई। धर्मार्थी जी ने उसे खड़ा होते ही फिर बिठा दिया। उन्होंने निश्चय किया—उपकार के भार से दबी इस चिड़िया को एक बार दाना डाल कर और देखूँ। हो सकता है जाल में फँस ही जाए। वह बोले—

"आपने अपना जीवन परिचय बिलकुल नहीं दिया।"

"क्या करेंगे जानकर? जितनी आवश्यकता है उतना आप जानते ही हैं और यदि नहीं जानते तो सुनो—मेरा जीवन पत्थर के उस गोड़े के समान है जो आपत्तियों की सरिता के साथ बहता हुआ यहाँ तक आ गया है।"

इस कथन को सुनकर धर्मार्थी जी मन ही मन गद्‌गद् हो गये।

उनको लगा—आपत्तियों की मारी नारी की अनुकूलता पापड़ तोड़ने और केला काटने से भी सरल है। वह बोले—

"आपत्तियाँ कुछ आती हैं और कुछ लाई भी जाती हैं। मुझे तो दया आती है उस बच्चे पर जो त्यौहार के दिन ही रूठ जाय। आश्चर्य तो यही है आप जानकर भी अनजान बनी हुई है।"

"इस समय तो मैं आपकी इतनी ही कृपा की आभारी होना चाहती हूँ।" कहती हुई रजनी खड़ी हो गई।

"ठहरो रजनी! कुछ और बातें करनी हैं।"

रजनी ने समझ लिया—धर्मार्थी जी वाणी विलास के बहुत भूखे हैं। चलो फिर इसमें मेरी क्या हानि है। जिस कार्य में अपनी हानि न हो और दूसरे को लाभ हो सके, वह पाप की संज्ञा नहीं पा सकता। वह विचार कर पुनः बैठ गई।

"कहिए। क्या कहना है आपको?"

"कहना तो बहुत कुछ है रजनी! दुःख तो यही है आप सुनने को तत्पर ही नहीं है। जिसको सुनकर भी तुम अनसुनी कर दो, उसके कहने से भी क्या लाभ?"

"आप अनेक बार तोड़-मरोड़ कर एक ही प्रश्न उठा रहे हैं। थोड़ा सोचकर देखिए, मुझमें और आप में कितनी विषमता है। आप पर्वत हैं तो मैं रज कण। फिर बताइये मैं आपके किस अभाव का अवलम्बन बन सकती हूँ।"

"रज कण तो सारी सृष्टि का निर्माता है रजनी।"

"तर्क में मैं आपको परास्त कर ही नही सकती।"

"तो जिस प्रकार कर सकती हो, उसी प्रकार करो।"

"यह तभी सम्भव है जब आप मुझे बड़े भाई का स्नेह दें और प्रतिदान में, मैं भी श्रद्धा की सरिता उमाडा दूँ।"

इस कथन को सुनकर धर्मार्थी जी हतवाक्य हो गए। चेतना का झपत लगते ही, उनकी जैसे आँखें खुल गई हों। कुछ देर तक शान्त रह कर वे कुछ संभल कर बोले—

"समाज के इन थोथे सम्बन्धों पर मुझे विश्वास नहीं है रजनी। इस युग के युवक और युवतियों ने इस सम्बन्ध को कितना कुलषित कर दिया है, यह शायद आप जानती ही नहीं हैं।"

"मेरी एक माँग पूरी करेंगे आप ?"

"बोलो क्या चाहिए ?"

"मुझे यह अधिकार दे दीजिए कि मैं जिस दृष्टि से भी चाहूँ, आप को देख सकूं।"

आन्तरिक क्रोध का दमन कर वह बोले—

"अब कार्य आरम्भ करो। कल फिर मिलेंगे।"

इस कथन के साथ ही प्रणाम कर रजनी बाहर आ गई।

१०

अन्त में राजेश की आहुति का समय आ ही गया। प्यार के अत्याचार की अन्तिम विजय हुई। स्नेह के कोमल मकड़ी जाल में फँसा राजेश मक्खी के समान उछला, तड़पा, लाभ कुछ भी न हुआ। वह सुलझने के प्रयास में उलझता ही गया। विवाह की आरम्भिक व्यवस्था पूर्ण हो गई है। सवेरे के आठ बजे हैं। बारात जाने में अभी एक घन्टा शेष है। राजेश की ससुराल उसके गाँव रायपुर से केवल तीन मील है बारात को बारह बजे से पूर्व ही वहाँ पहुँचना है। इसीलिए प्रत्येक कार्य में शीघ्रता की जा रही है। रमानाथ जी के सारे मेहमान बैठक में विराजमान हैं। आस-पास के गाँवों के परिचित व्यक्ति भी बारात के साथ जाने को एकत्र हो गये हैं। बारात में लगभग ढाई सौ व्यक्ति हैं। अधिकतर बारात रथों में जायेगी। आस-पास के सारे रथ ही बारात में जा रहे हैं।

बाजे के साथ राजेश को ग्राम के चारों ओर घुमाया गया। ग्राम की युवास्त्रियों ने राजेश की घोड़ी के पीछे गीत गाये। वृद्धा भी हाँफती दौड़ती उनका साथ देती रही। सबका प्रिय गीत है—ससुराल घर जइयो मेरा लाल बना।"

कुछ युवतियों ने राजेश के ऊपर चावल पुष्प और पैसों की वर्षा की। प्रत्येक प्राचीन रीति रिवाज का सुचारु रूप से पालन किया गया है। राजेश की अम्मा एक पनघट के कुएँ पर बैठी। राजेश से कह-लाया गया—"घर चलो माँ, तुम्हारे लिए बहू लाऊँगा।"

राजेश को यह सब एक प्रदर्शन सा दिखाई दे रहा है। सब प्रसन्न हैं केवल राजेश ही उदासी की साक्षात् प्रतिमा बना हुआ है। उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही है –' क्या विश्वासघात से भी बड़ा कोई पाप है। जिस पथ पर चलने का पगों में बल न था, उस पर बढ़े ही क्यों ? अबला की आह वह चिंगारी है, जो भड़क कर अत्याचारी को हवन की क्षार बनाए बिना नहीं छोड़ती।" वह आत्मा को उत्तर देता है—

"मैंने रजनी की स्वीकृति ले ली है, मैं निर्दोष हूँ।"

बारात रायपुर से दस बजे चली और बारह बजे तक पहुँच गई। दोपहर का बाग में भोजन हुआ और संध्या तक वहीं विश्राम किया गया। संध्या को चढ़त के समय सारी बारात बन सँवर कर रथ, तांगों और कारों में बैठ गई। बाजे की धूमधाम और आतिशबाजियों की चटापट के साथ बारात की शोभा में चार चाँद लग गये। बारात से गाँव की तीनों चौपाल भर गई। संध्या के भोजन के तुरन्त बाद फेरों की शुभ घड़ी आई। वृद्धजन समुदाय के साथ राजेश पत्नी के घर गया। जब वह विवाह की वेदी के सम्मुख बैठ गया तो अन्दर से सिकुड़ी सिमटी उसकी पत्नी राजेश्वरी को लाया गया।

विवाह की सुदृढ़ शृंखला में वर-वधु को बाँधने में पण्डितों को लगभग दो घन्टे लगे। नारी-पुरुष के इस स्थाई सम्बन्ध की प्रथम शुभ घड़ी पर राजेश मूर्ति बना बैठा रहा। युवक स्वाभावानुकूल उसने

राजेश्वरी के साथ कोई छेड़-छाड न की । पडित जो कहते गये, वह करता रहा। भावों को उत्तेजित करने वाले कई गीत गाये गये, किन्तु राजेश जैसे कर्ण-बधिर हो। उसे पता ही न था कि, यहाँ क्या हो रहा है। उसका तन यहाँ था, तो मन रजनी के पास। वह इस समय सुखद कल्पनाओं को भूल केवल दुखद आशंकाओं पर ही विचार कर रहा था।

अन्त में फेरों की सम्पूर्ण क्रियायें समाप्त हो गई।

शर्मा जी ने राजेश्वरी के विवाह में दिल खोलकर दहेज दिया। बारात के लिये भोजन की उत्तम व्यवस्था थी। सब उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं। रमानाथ जी का विवाह से पूर्ण सन्तुष्ट दिखाई दे रहे हैं। अपने विवाह के पश्चात्, उन्होंने यही एक ऐसी घड़ी देखी है जिसको वह अपने जीवन की सबसे बड़ी कामना मानते थे।

गाँव की युवा लड़कियों को शर्मा जी ने विवाह से पहले ही एकत्र कर आदेश दे दिया था—"हमारे यहाँ जो लड़का आ रहा है, वह दिल्ली का पढ़ा-लिखा है। अधिक पढ़े-लिखे लड़के विवाह में गालियों को अच्छा नहीं मानते। इसीलिये कोई लड़की ऐसी वैसी गाली न दे। यह रिवाज अब पुराने हो गये हैं। ऐसा न हो कि लड़का नाराज हो जाये।"

लड़कियों के संयम का बाँध विदाई के समय टूट गया। जब राजेश को टीके पर लाया गया, चारों ओर से गालियों की बौछार आरम्भ हो गई। राजेश की अम्मा का नाम लेकर न जाने कितना कुछ कहा गया। कुछ युवतियों के तो मन ही मचलते रह गये। कितना सुन्दर है राजेश्वरी का पति। कहीं यह हमारा होता।" बेचारी सोचती ही रह गईं।

टीके की समाप्ति पर एक सुन्दर फूलों से सजा हुआ रथ शर्मा जी के द्वार पर आ गया। जब विदाई की सम्पूर्ण क्रियायें पूर्ण हो गई, तो बहू को रथ में बिठाया गया। जब रथ नव-वधु को लेकर चला तो रमानाथ का मन प्रसन्नता से बल्लियों उछलने लगा। उन्होंने रथ के ऊपर पचास रुपये के पैसों की बौछार कर दी।

सम्पूर्ण बारात, वधु को विदाकर गाँव से बाहर कुछ देर के लिये रुकी। यहीं पर रमानाथ जी ने अपने एक युवा मित्र वैद्य से कहा—"राजेश को बहू वाले रथ में ही बिठा देना।"

राजेश उस रथ में नही बैठा। वह अपने कुछ मित्रों सहित कार में ही गाँव लौट गया और दो बजे तक सारी बारात भी गाँव रामपुर आ गई। फिर क्या था। सारे गाँव की स्त्रियों का दल वधु का मुँह देखने के लिये उमड़ पड़ा। रामप्यारी इस समय फूली न समा रही थी। अन्त में गठबन्धन के साथ बहू को उतार लिया गया।

जिस समय बहू ने अपने नव-द्वार में प्रवेश किया, रमानाथ जी वहीं खड़े थे। राजेश्वरी कुछ झुककर चल रही थी। वह पुकार पड़े—"झुक-कर क्यों चल रही हो बेटी। मेरा बेटा कोई बौना थोड़े ही है।"

यह सुन एक वृद्धा बोल पड़ी —

"तुम जाओ जी। नई बहू झुककर ही चलती है।"

रमानाथ मुस्कराते हुए वहाँ से मेहमानों के पास चले गये। राजेश भी कार्य निवृत्त हो बैठक की एक कोठरी में आकर लेट गया।

"बहू तो अच्छी है रामप्यारी।" कलावती ने कहा।

धापो बोल पड़ी—"हमारा लड़का राजेश क्या कम अच्छा है।"

"भगवान् की मिलाई जोड़ी है।" चमेली ने दोनों का समन्वय किया।

रामप्यारी डर रही थी -- कहीं मेरी जोड़ी को नजर न लग जाये। राजेश्वरी घूँघट निकाले बैठी थी। वह न जाने कितनी सुखद कल्पनाओं में खोई हुई थी। विपरीत उसके राजेश को लग रहा था—जैसे वह आकाश को छूकर पाताल से गिर गया है। उसके अरमान निर्जन में में पड़ी उस कब्र के समान हैं जहाँ कभी भी दीपक नहीं जलेगा। वह सोच रहा था—

"विचित्र है यह दुनियाँ जो चाँद को छुपाकर चकोर से कहती है—सचेत रहना। मीन को जल से पृथक् कर कहती है— जीवित रहो।

रजनी अब कहाँ होगी ? क्या कर रही होगी ? स्मरण करते ही राजेश की आँखों में आँसू छलक आये । उसी समय उसके पिता ने पुकारा ।

"वहाँ क्या कर रहे हो राजेश ? यहाँ आ जाओ ।"

वह फिर घर चले गये, और एकान्त में अपनी पत्नी से बोले—

"बहू को समझा देना । बुद्धू न बनी रहे ।"

"मैं सब जानती हूँ । मुझे क्यों बता रहे हो ।"

"यूँ तो तुम खेली-खाई हो ।"

"लड़के का विवाह करके अब बुड्ढ़े बन जाओ ।"

"जानती हो, बुड्ढ़े और बच्चे का मन एक जैसा ही होती है ।"

"ये बेकार की बात फिर कर लेना अब राजेश को घर भेज दो । भूखा होगा । इधर बहू भी उसके पीछे ही खाना खायेगी ।"

"भई वाह । हमारी बातों को बेकार बता रही हो । हमारी बातें तो अभी वैसी ही चलेंगी । अपनी ढपली और अपना राग ।"

"मैंने सुन लिया सिर क्यों खा रहे हो । राजेश को भेज दो ।"

"लो मैं जा रहा हूँ ।" कहकर हँसते हुए रमानाथ चले गये ।

उनके जाते ही रामप्यारी बहू के पास आकर बोली—

"देखो बहू ! मेरा बेटा पढ़ा-लिखा है और दिल्ली की हवा देख चुका है । तुम लजीली-शर्मीली-न बनी रहना । देखती हूँ तुम कितनी सम्भलकर चलती हो । बस मुट्ठी में बन्द कर लो इसको ।

उसी समय राजेश वहाँ आया, और रामप्यारी बाहर को खिसक गई । लज्जा के आवरण में लिपटी राजेश्वरी सोच रही थी—

"एक बार घूँघट उठा कर तो देख लूँ ।" उसने ऐसा नहीं किया । केवल अपने भाल को राजेश के पगों पर टिका दिया ।"

राजेश खड़ा-खड़ा सोच रहा था—

"न जाने कितनी अभिलाषा लेकर आई है यह युवती यहाँ तक । कर्त्तव्य कहता है निर्वाह करो । भावना समर्थ नहीं करती । मन न जाने क्या चाहता है ? शरीर आत्मा के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा है । इन सबसे पृथक्, इन्द्रियाँ भोग के लिये ही उतावली हैं ।"

राजेश्वरी उसी समय उठी और डलिया से एक लड्डू उठाकर राजेश के मुँह की ओर बढ़ाया। इस समय उसका घूँघट आधा खुला हुआ था। राजेश का मुँह अनायास खुल गया। लड्डू को खाकर वह बोला—

"अब तुम भोजन कर लेना।"

वह फिर एकान्त चिन्तन के लिये नदी के किनारे चला गया। सरिता के अविराम प्रवाह को देख वह सोचने लगा—

"कितनी उतावली है यह सरिता, सागर को पाने के लिये। नहीं जानती, इस दुष्ट ने कितनी ही सरिताओं के जल को खारा बना दिया है। कितना कठोर हो जाता है समर्पण को ग्रहण करने वाला।"

रात के नौ बजे जब राजेश लौट कर आया, उसकी प्रिय मंडली ने उसे घेर लिया। हास्य और विनोद की फुलझड़ियां छूटी—

एक मित्र बोला—"आज तो पाँचों घी में हैं।"

दूसरे ने कहा— 'मिठाई भी लेते जाना भाभी जी को।"

तीसरे ने चुटकी भरते हुए—"मन में लड्डू फूट रहे होंगे मित्र।"

चौथे ने निर्णय दिया—देर न करो भाभी जी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

राजेश को हास्य रस इन पंडितों की मंडली मूर्ख मंडली-सी दिखाई दे रही थी। वह सोच रहा था—

"कितने भोले हैं ये ग्रामीण युवक। इस विषय में इतना ही तो जानते हैं। ठीक भी है, इन्होंने कौन-सा फ्रायड को पढ़ा है।

उसी समय राजेश के परिवार की एक भाभी ने कहा—

"लाला राजेश, घर आ जाओ।"

खिलखिलाती मित्रमंडली को छोड़ राजेश फिर घर चला गया।

वही भाभी बोली—"यहाँ गर्मी बहुत है, आपकी चारपाई छत पर है।"

राजेश बोला—"मैं तो बैठक में सोना चाहता हूँ भाभी।"

"मन मन भाये, मुँडिया हिलाये।" कहती हुई भाभी वहाँ से चली गई।

और फिर राजेश भी चुपचाप छत पर चला गया। वहीं पर राजेश्वरी पलंग के पास आसन पर बैठी थी। राजेश के पलंग पर बैठते ही उसने दोनों हाथों से उसके चरण छुए।

सुहाग की रात्री में धुँधली चाँदनी, सन्नाटा और तारिकाओं की अज्ञात छाया ने मिलकर राजेश्वरी के पक्ष का ही समर्थन किया।

११

धर्म के सुदृढ़ जाल को अब धर्मार्थी जी ने सारे क्वार्टरों में लगा दिया है। घर-घर में भजन-कीर्तन की महिमा का बखान होता है। ढोलक और बाजे का प्रबन्ध कर दिया गया है। धर्मार्थी जी प्रत्येक मजदूर के घर छोटे-बड़े अवसरों पर अवश्य जाते हैं। उनके प्रति श्रमिकों की श्रद्धा बढ़ती जा रही है। आज भी किसी पुरदिये मजदूर के घर में सत्य नारायण की कथा है। धर्मार्थी जी जब दस बजे मिल में आये, सीधे मजदूर के घर गये। उनको देखते ही वहाँ उपस्थित स्त्री-पुरुष चुप-चाप खड़े हो गये। सबके मुख ऐसे ही खिल उठे जैसे सत्य नारायण जी के उन्हें साक्षात् दर्शन हो गये हों। सबको एक दृष्टि से देख धर्मार्थी जी अन्त में अपने लिये सुरक्षित आसन पर विराजमान हो गये।

कथा का श्री गरोश पहले ही हो चुका था। कुछ ही देर में कथा समाप्त हुई, और सबने चरणामृत लिया। फिर सब धर्मार्थी जी की ओर देखने लगे। सब चाहते थे, धर्मार्थी जी कुछ बोलें। वास्तव में यह कथा धर्मार्थी जी को घर बुलाने का एक साधन थी। कथा के समय जो उपस्थिति थी, अब उसकी दस गुनी होती है। एक मजदूर ने धर्मार्थी जी

से प्रवचन के लिये आग्रह किया। धर्मार्थी जी ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर भाषण आरम्भ कर दिया—

"भाइयो और बहनों। इस मिल में मेरे हजारों छोटे भाई कार्य करते हैं। बड़ा होने के नाते मेरा धर्म है कि प्रत्येक की कठिनाई पर ध्यान दूँ। इसीलिये मेरी प्रार्थना है, आपको जब भी कोई कठिनाई हो आप सीधे मेरे पास चला आया करें। आधी रात को मैं आपकी बात सुनूँगा। आप जिस भगवान के भक्त हैं मैं भी उसी का सेवक हूँ। इसीलिये मुझे आपकी सेवा करने में अतीव हर्ष होता है।

मुझे उस समय बड़ा दुःख होता है, जब मैं अपने पुरबिये भाइयों को पंजाबी या पहाड़ियों के साथ देखता हूँ। मैं चाहता हूँ, बुरे आदमियों की आप पर छाया न पड़े। आप जानते हैं इन पंजाबियों को हमने नौकरी दी, क्वार्टर दिये और ये कभी हमारे न हुए। मुझे प्रसन्नता है। आप सदैव मेरे साथ रहते हैं, आप मेरे हैं, मैं आपका हूँ। मैंने आप लोगों के घरों और बच्चों की देखभाल के लिये यहाँ एक बहन जी को भी रख लिया है।

भाषण को संक्षिप्त कर धर्मार्थी जी सबको हाथ जोड़ प्रणाम कर वहाँ से चल पड़े। उनके साथ मजदूरों का जमघट कुछ दूर तक चलता ही रहा। क्वाटरों से बाहर चौड़े मैदान में जब धर्मार्थी मजदूरों के साथ चल रहे थे, जान पड़ता था, जैसे तारिकाओं का दल अन्धेरी रात में चन्द्रमा को घेर कर चल रहा हो। उन्होंने फिर मजदूरों से विदाई ली। और फिर वह सीधे रजनी के क्वार्टर पर पहुँच गये। रजनी उस समय तैयार हो क्वार्टरों में भ्रमण के लिए जाने वाली थी। धर्मार्थी जी को देखते ही उसने हाथ जोड़ प्रणाम किया और बाहर आ गई।

दोनों फिर बातें करते हुए मिल की ओर चल दिए—

"आप आज कथा में नहीं आईं। मैंने आपका परिचय दे दिया है।"

"मेरी कुछ तबियत ठीक नहीं थी। परिचय के लिए धन्यवाद।"

"आप कुछ खोई-खोई सी रहती हैं।"

"यही तो जीवन है श्रीमान् जी।"

"हमने तो आज तक नहीं जाना इस जीवन को।"

"आपका क्षेत्र ही दूसरा है महोदय। आप अर्थ के द्विगणोत्तर सिद्धान्त के पंडित है। और यह अच्छा भी है। इस क्षेत्र से बाहर नहीं जाओ तो अच्छा है। सच मानो, जीवन के इस पक्ष को जानने वाले का जीवन अपने लिए एक ऐसी पहेली बन जाती है, जो कभी सुलझ ही नहीं पाती।"

रजनी के इस कथन से धर्मार्थी जी ने जान लिया — देवीजी ने कोई गहरी चोट खाई है। रजनी के व्यंग की ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया।

दोनों फिर बातें करते हुए कार्यालय में पहुँच गये। धर्मार्थी जी ने कुर्सी पर बैठते हुए रजनी को बैठने का संकेत कर कहा—

"देखो रजनी! तुम्हारे कथनानुसार हमारे क्षेत्र पृथक हैं मेरी इसीलिए प्रार्थना है कि या तो हमारे क्षेत्र में आ जाओ और नहीं तो हमें अपने क्षेत्र में बुला लो।"

"यदि आप ऐसे प्रश्न नहीं करें तो अच्छा है।"

"तुम जानती हो रजनी! पानी को देखकर प्यास बढ़ जाती है।"

"ठीक है आपका कथन! परन्तु पहले आप यह तो सोच लें जो जल आप देख रहे है। वह कितना खारा है।"

"तुम तर्क में बेजोड़ हो रजनी!"

"आपके भ्रम का निवारण मेरा प्रथम धर्म है।"

"और हमारी भावना के विषय में आपका क्या धर्म है।"

"यह तो मैं अपने विषय में ही नहीं जान पाई।"

"मन की बात कुछ निराली ही होती है रजनी।"

"जब आप मन के निरालेपन को जानते हैं तो फिर मेरे मन के प्रवाह को मोड़ने का प्रयत्न ही क्यों कर रहे हैं?"

"इसका यही अर्थ है कि आप मन का दान कर चुकी हैं।"

"यह तो आपको प्रथम परिचय पर ही जान लेना चाहिए था।"

उसी समय टेलीफोन की घण्टी बजी। सेठ जी का फोन था। चोगा उठाते ही आदेश मिला—"तुरन्त मेरे पास चले आओ।"

धर्मार्थी जी उसी समय जी हाँ! जी हाँ! अभी आया, कहते हुए खड़े हो गये। रजनी ने तुरन्त चुटकी ली—

"यही है आपके मन की निराली दुनिया।"

"क्षमा करना रजनी! सेठ जी का फोन है।"

"मन के महत्व को जानने वाले तो भगवान को भी भूल जाते हैं धर्मार्थी जी। अर्थ और सम्मान की तो उन्हें कोई चिन्ता ही नहीं होती।"

धर्मार्थी जी ने चलते समय सुना सब, किन्तु उत्तर कुछ नहीं दिया। वह सीधे कार द्वारा सेठ जी के पास पहुँच गये। रजनी भी भारी पगों से उठी और क्वार्टरों में भ्रमण के लिए चल दी।

धर्मार्थी जी को देखते ही सेठ जी आज्ञा भरे स्वर में बोले—

"कोयले की समस्या सारे ही मिलों में भयंकर रूप धारण कर गई है। तुम दिल्ली में रहते हो। बड़े-बड़े नेताओं से मिलकर परिचय क्यों नहीं बढ़ाते। उस दिन तुम्हें पर्चे लिख कर दिये थे। क्या किया उनका? यदि सबसे नहीं सेवक चन्द से ही मेल-जोल बढ़ा लो। पुराना काँग्रेसी है। पक्का घाघ है। सारे काम बना दिया करेगा।"

"मैं उस दिन आपका पत्र लेकर उससे मिला था। वह मंत्रियों का गुरु है। जाते ही हरिजन फंड के लिये पाँच हजार रुपये की माँग कर बैठा। मैं क्या करता? आपके ऊपर टाल कर चला आया। इस समय तो हम ही चन्दा कर रहे हैं।"

"यही तुम्हारी मूर्खता है। उसी समय पाँच हजार रुपये का चैक काट देना चाहिए था। वह पाँच हजार आज पाँच लाख बनकर आते। काम इसी प्रकार चलते हैं। मुझे देखो। बाप दादाओं ने गाँवों में नमक

मिर्च बेचकर पेट पाला। हम जो कुछ हैं, आज सारा देश जानता है तुम भी समय की नाड़ी पकड़ कर चलो। केवल पढ़ने से काम नहीं चलता। दुनियाँ की चाल सीखनी ही होगी।"

धर्मार्थी जी शिष्य बने चुपचाप सुनते रहे। कुछ देर मौन मनन सा कर वह बोले—

"अब आप चिन्ता न करें। सेवक चन्द को पक्का चेला बना लूँगा। आप के पास किसी कठिनाई को लेकर नहीं आऊँगा!"

"अच्छा अब जाओ।" कहकर सेठ जी पगड़ी उतार कर पलंग पर इसी प्रकार पसर गये जैसे कीचड़ में भैसा। धर्मार्थी जी वहाँ से सीधे सेवक चन्द जी के पास तीमारपुर पहुँच गये। वह उस समय कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे। धर्मार्थी को देखते ही सेवक चन्द ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया और दोनों कमरे में बैठ गये।

"कहिये सेठ जी आज कैसे कष्ट किया।"

"हम सेठ जी नहीं हैं सेवक चन्द जी। हम तो आपके ही भाई हैं आप सुनाइये क्या समाचार हैं?"

"सब ठीक है।" कहते हुए सेवक चन्द जी उठे और नौकर को आवाज दी। नौकर दौड़ा हुआ आया। वह उससे बोले—

"दो गिलास शर्बत लाओ।" नौकर चला गया।

सेवक चन्द जी अब तख्त पर पद्मासन लगाकर बैठ गये। धर्मार्थी जी को शीघ्रता थी। वह बोले—

"मैं कुछ आवश्यक कार्य को लेकर आया हूँ।"

"कहिए! मेरे योग्य क्या सेवा है।

"सारी सेवा का निचोड़ यही है कि आप हमारे और हम आपके दिल और जान से बन जाय।"

"बात तो बताओ। हम तो सदा ही आपके है।"

"बात यही है कि मंत्रियों से हमारे कामों में आप हमें सहयोग दें।"

"अवश्य। अपने तो सब ही कान पकड़े चेले हैं। जो अधिकारी नहीं सुनते, उनके कान हम बड़ों से खिचवा देते हैं।"

धर्माथी जी ने अपने सम्पूर्ण कार्यों का ब्योरे वार परिचय दे दिया।

सब कुछ सुनकर सेवक चन्द बोले—

ये तो सब बायें हाथ का खेल है। आप चिन्ता न करें, थोड़ी दौड़ धूप करनी होगी। दाना डालते जायेंगे और चिड़िया फँसती जायेगी।

"आप चिन्ता न करें। कुछ दिनों में आपके लिए किसी प्रकार भी एक गाड़ी का प्रबन्ध अवश्य करेंगे। हम जानते हैं—हाथ को हाथ धोता है। जब आप हमारे हैं तो हम भी आपके हैं।

"तेल तो तिलों में से ही निकलता है धर्मार्थी जी।"

उसी समय शर्बत के दो गिलास आ गये। दोनों ने जब शर्बत पी लिया तो सेवक चन्द जी बोले—

"अब आप किधर जायेंगे ?"

"जहाँ आप कहें। आपको छोड़कर मिल चला जाऊँगा।"

"चलिये फिर मुझे नई दिल्ली छोड़ते जाना।"

कार द्वारा धर्माथी जी जब सेवक चन्द को नई दिल्ली छोड़ मिल पहुँचे तो पाँच बज चुके थे। उन्होंने आधा घन्टे तक आवश्यक फाइलों को देखा। कुछ पत्रों पर हस्ताक्षर लिए। वह आज कुछ थके हुए से थे। कार्यालय से निकल वह क्वार्टरों में भ्रमण के लिए चल दिये।

जब वह रजनी के क्वार्टर के पास पहुँच उनके पाँव ठिठक गये। उन्होंने पास से जाते हुए एक मजदूर से रजनी को बुलवाया। वह न चाहने पर भी बाहर आ गई।

रजनी को साथ लेकर धर्मार्थी जी ने क्वार्टरों का एक चक्कर लगाया। जिस समय रजनी उनके साथ चल रही थी। क्वार्टरों की स्त्रियाँ आपस में चर्चा कर रही थीं। पढ़ लिखकर स्त्रियाँ कितनी बेशर्म होती जा रही हैं। यह देखो—सिर खोल कर कैसी जा रही है। शर्म नहीं आती इसको। क्या लगता है यह इसका। आँखें किस प्रकार मटकाती है। डूबके मर जाय ऐसी लड़की।

एक चक्कर लगाकर धर्मार्थी जी रजनी से विदा हो, फिर वहाँ से चले गये।

रजनी न जाने आज क्यों विशेष उदास थी।

१२

सेठ करोड़ीमल के कपड़ा मिल में ग्राम रायपुर के कुछ जुलाहे जाति के मजदूर कार्य करते हैं। सर्वप्रथम गाँव से सूका भाग कर गया था। उसने मिल में नौकरी कर कई युवकों का हाथ पकड़ा। अब उसकी एक टोली सी बन गई है। सूका मिल के क्वार्टर में सबके साथ रहता है। छुट्टियों में सारे मजदूर गाँव अवश्य आते हैं। उनको सुविधा यह है कि गाँव आते समय टिकट नहीं लेना पड़ता। लुक छिप कर गाड़ी में बिना टिकट ही यात्रा कर लेते हैं। बहुत हुआ तो शाहदरे तक का टिकट ले लिया। आते समय पैसे अवश्य देने पड़ते हैं।

उस दिन रविवार था। मजदूरों की यह अलबेली टोली गाँव आई हुई थी। प्रसन्न मन सबने सवेरे ही अपनी ड्रेसिंग की और फिर गाँव में एक चक्कर लगाना आरम्भ कर दिया। सबके मुँह में बीड़ी है। बालों से तेल टपक रहा है। पीले बनियान मोटी मलमल के कुर्तों से दिखाई दे रहे हैं। जेबों में रंगीन रूमाल है, जो आधे दिखाई दे रहे हैं। खुले पायजामें, लाल जुराब और काले जूतों पर उनको विशेष गर्व है। क्यों न हो ? सूकर को पैंसठ और शेष चार साथियों को साठ-साठ रुपये जो मिलते हैं। गाँव में तो घास खोद कर ही पेट पालते थे। दिल्ली में नौकर हैं, इसलिए जहाँ जाते हैं, उनका सम्मान होता है।

यह टोली भ्रमण करती हुई राजेश की बैठक की ओर निकल गई। उस समय राजेश मूढ़ा डाले बैठक के चबूतरे पर बैठा था। सबने राजेश को प्रणाम किया। राजेश ने प्रणाम का उत्तर देकर उनसे कहा—

"आओ भाई। कहो क्या समाचार हैं तुम्हारी दिल्ली के ?"

"सब ठीक है बाबूजी। आप कब से दिल्ली नहीं गये ?" सूका ने राजेश के प्रश्न का उत्तर देकर एक प्रश्न किया। और फिर सब चबूतरे पर बैठ गये। राजेश ने चारपाई पर बैठने की हठ की, परन्तु वह न माने। चबूतरे पर ही जम गये।"

"मुझे तो महीनों हो गये हैं दिल्ली गये।" राजेश ने उत्तर दिया।

"आप तो दिल्ली में ही बड़े बाबू बन जायें।"

ये शब्द सूका के थे। वह इस समय बहुत सँभल कर बोल रहा था। उसे पता है राजेश गाँव में सबसे अधिक पढ़े लिखे हैं। उनका घर भी बड़े घरों में से एक है। सूका यह भी दिखाना चाहता है कि दिल्ली में नौकरी करने से वह पढ़े लिखो से भी बातें कर सकता है।

"समय आने पर दिल्ली भी रहेंगे सूका भाई।"

"हम तो चाहते है आप हमारे मिल के अफसर बन जाएँ।"

'अफसर' शब्द का उच्चारण सुनकर राजेश को मन ही मन हँसी आई। वह सोचने लगा—इस अशुद्ध उच्चारण के पीछे कितनी भोली भावना का वेग विद्यमान है। सचमुच पढ़े लिखों के पास भाव नहीं केवल शब्दों का जाल है। निःसन्देह मैं भी उन्हीं में से एक हूँ।

"आप लोग करोड़ीमल के कपड़ा मिल में कार्य करते हैं न ?"

"जी हाँ, वहीं पर करते है।"

"मिल के मैनेजर कौन हैं ?"

"पहले तो 'स्टाक' साहब थे। और अब एक बहुत अच्छे आदमी धर्मार्थी जी हैं। अब तो वही करते है बड़े काम।"

"स्टाक नहीं भाई स्कोट साहब होंगे।"

"जी हाँ। वह आधे अंग्रेज थे और आधे हिन्दुस्तानी।"

सूका ने विशेष जानकारी देकर झेंप सी उतारी।

"और यह धर्मार्थी क्या नाम है ?"

"नाम तो कुछ और है उनका। वह धर्म के कार्यक्रम में अधिक लगे रहते हैं, इसीलिए सब उन्हें धर्मार्थी कहते हैं।"

"कैसे आदमी हैं धर्मार्थी जी ?"

"बहुत अच्छे हैं बाबूजी। मजदूरों के साथ भाई-चारे का बर्ताव करते हैं सबकी बात सुनते हैं। मजदूरों को कार तक में बिठा लेते हैं। कोई कभी घर बुलाये तो आ जाते हैं।"

"तुम्हारे पास कुल कितने क्वार्टर हैं ?"

"हम तो आठ आदमी एक ही क्वार्टर में रहते हैं।"

"कितना बड़ा क्वार्टर है तुम्हारा ?"

"एक कमरा है बाबूजी। उसी में जमीन पर पड़ जाते हैं।"

"कम से कम दो कमरे तो आप लोगों को रखने ही चाहिएँ।"

"यह तो मुश्किल है बाबूजी। हमारे साथ चार तो अभी कच्ची नौकरी के ही हैं। उनको तीस-तीस रुपए मिलते हैं। उनमें खाने का ही काम चलता है। किराया तो दे ही नहीं सकते। दूसरी बात यह है कि दो कमरे हमको मिल भी नहीं सकते।"

"यह कच्ची नौकरी कितने दिन की होती है ?"

"छह महीने तो जरूर ही होते हैं।"

"इन छह महीनों में क्या सीखते हैं मजदूर !"

"सीखना क्या है बाबूजी। धागे में गाँठ लगानी है। वह तो छह सात दिन में आ जाती है। आगे तो 'प्रटिस' करते रहते हैं।

सूका को प्रटिस बोलता देख राजेश को फिर हँसी आई। उसने इस बार उच्चारण की शुद्धि नहीं की। वह बोला—

"कभी अवसर मिला तो आयेंगे तुम्हारे मिल में।"

"आइये, जरूर आइये। हमारे बच्चे यहाँ आपकी देख-भाल में रहते हैं। कभी हमें भी तो सेवा का मौका दीजिए।"

"सबकी देख भाल करने वाला तो भगवान है सूका भाई।"

"बस इन्हीं विचारों के हैं धर्मार्थी जी। अब तो वहाँ भजन कीर्तन कराने के लिए एक बहन जी भी रख दी गई है।"

"बहन जी भी अच्छे विचारों की ही होंगी।"

"हमारे लिए तो अच्छी ही हैं बेचारी। वैसे क्वार्टरों में तो उल्टी सीधी बातें हुआ ही करती हैं।"

"क्या मतलब ? मैं समझा नहीं।"

"बात कुछ नहीं है बाबूजी। मजदूरों की औरतें जब बहन जी को धर्मार्थी जी के साथ देखती हैं, यूँ ही बेकार बातें करती हैं।"

"यह तो दुनियाँ है भाई। किसी का मुँह थोड़े ही पकड़ा जाता है।"

सूका के एक साथी ने जेब से बीड़ी का बंडल और दियासलाई निकालकर तीन बीड़ी एक साथ सुलगाई। फिर उसने दो बीड़ी दो साथियों के हाथों में थमाकर धुएँ का गुब्बारा छोड़ते हुए कहा—

"अब उठोगे भी या नहीं। बाबूजी का पीछा भी छोड़ो।"

एक साथी बोला—"बाबूजी विवाह की मिठाई भी तो लेनी है। अब तो गुड़ खाकर ही यहाँ से उठेंगे।"

"गुड़ की क्या कमी है भाई। जितना चाहो खाओ। घर चलना होगा।"

उसी समय वहाँ रमानाथ जी आ गये। उनको देख राजेश मूढ़े से खड़ा हो गया। सूका और उसके साथियों ने हाथ जोड़ प्रणाम किया। वह फिर वहाँ बैठे नहीं। प्रणाम का उत्तर देकर सीधे घर चले गए। उसी समय सूका की टोली भी वहाँ से चल पड़ी। राजेश भी घर चला गया। रमानाथ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह खाना साथ ही खाते हैं। राजेश उनके साथ खाना खाकर फिर बैठक पर आ गया। उसके जाते ही रमानाथ अपनी पत्नी से बोले—

"बड़ा दुबला होता जा रहा है राजेश तो।"

"तो फिर मैं क्या करूँ ? खाने पीने में तो कोई कमी है नहीं।"

"मुझे तो लगता है इसको बहू अच्छी नहीं लगी।"

"और यह भी तो हो सकता है, इसे बहू याद आती हो।"

"बात तुम्हारी भी ठीक हो सकती है तजुर्बेकार हो न।"

"बेकार की बातें छोड़ दो। बस अब इसके गौने की तैयारी करो।"

"पहले कोई रोजगार तो मिल जाए।"

"कमाने के लिए क्या इसकी कोई उम्र निकल गई है। हमारे सामने ही कुछ मौज उड़ा लेगा। फिर तो तेली का बैल बन ही जाना है।"

"बात तो ठीक है। फिर भी बच्चे को अपने सामने खाता-कमाता देखना प्रत्येक माँ-बाप का पहला धर्म है, बिना कमाये तो खजाने भी खाली हो जाते हैं।"

"तुमने ही कौन से उत्तीके बजाये हैं। हमने तो आज तक यही देखा है, जिस जमीन ने हमें दिया है, वह इसको भी तो देगी।

"चलो फिर तुम्हारी बात ही मान ली। अब इसका गौना जल्दी ही करेंगे। तुम्हारे हाथ की रोटी अब इसे अच्छी नहीं लगती। बहू के हाथ की खाकर ही ठीक होगा। हमें याद है, यह बीमारी हमें भी कभी हुई थी।"

"अपनी बात भूल जाओ। अब बेटे की बात सोचो।"

"मैंने तुमसे कितनी बार कहा है, हम अपनी नहीं भूल सकते।"

"नहीं भूलते तो न भूलो। मेरा सिर क्यों खा रहे हो। जा के बैलों को देखो। राजेश को खेतों की ओर भेज दो। यहाँ पड़ा-पड़ा कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। कुछ मन बँट जायेगा।"

"यह जवानी ऐसी ही होती है श्रीमती जी। इस समय आदमी अपने से ही अनेक प्रश्न करता है और आप ही उत्तर देता रहता है। सोते में जागना और जागने में भी सोना जवानी की पहचान है। इस उम्र में तो चलते-चलते स्वप्न आ जाते हैं।"

"हमें क्या पता। यह तो तुम जानो या तुम्हारा बेटा।"

"भूल गई तीस वर्ष पहली बातें, जब कहा करती थीं—मेरा तो आपके बिना जी नहीं लगता। अब कहती हो जवानी क्या है?"

"तब तो मैं आपको खुश करने के लिए कह दिया करती थी।"

"और अब खुश करना ही नहीं चाहतीं। यही तो है जवानी और आज में अन्तर। अब समझी जवानी क्या है?"

"समझ गई। पीछा भी छोड़ा तो।"

"अभी नहीं। पहले एक बार खुश करने के लिए वही तीस वर्ष पहली बात कह दो। उसी समय पीछा छूटेगा।"

"सिर को तो देखो, सारा सफेद हो गया है। बनते हो जवान।"

"सिर को तो छोड़ो। दिल तो जवानी जैसा ही काला है।"

"बैठे रहो। मैं तो अपना काम करती हूँ।"

रामप्यारी उठकर अपने घर के कामों में लग गई।

"अच्छा, एक गिलास पानी पिला दो। हम जा रहे हैं।"

रामप्यारी ने गिलास में पानी लाकर दिया। रमानाथ जी ने गिलास थामते हुए उसके हाथ में नाखून गड़ा दिया। वह झल्ला पड़ी—

"क्या हो गया है आपको? जवानों के भी बाप बन गये।"

"इसमें भी कोई शक है जवान बेटे के बाप तो हैं ही हम।"

"गिलास मुझे दो, और सीधे बैठक में चले जाओ।"

रमानाथ जी गिलास को रामप्यारी के हाथ में थमाकर हँसते हुए चल दिये। जब वह बैठक में पहुँचे, राजेश आँखों पर सीधा हाथ रखे लेटा हुआ था। वह उससे बोले—

"लेट क्यों रहे हो बेटा? थोड़ा जंगल की ओर ही घूम आओ।"

"शाम को जाऊँगा पिताजी।"

"देखो राजेश! मुझे तुम्हारी यह दशा अच्छी नहीं लगती। अच्छा खाओ, पहनो, और थोड़ा व्यायाम करो। बी० ए० का नतीजा आते ही मेरा विचार तुम्हें पुलिस में भर्ती कराने का है।"

इस कथन को सुनते ही राजेश उठा और चुपचाप जंगल को चला गया। जब वह नदी के तट पर पहुंचा तो अनायास ही उसके पाँव वहाँ रुक गये। वह तट पर बैठ सोचने लगा—

"मैंने रजनी के प्रति जो अपराध किया है, उसका मुझे कठोर से कठोर दंड मिलना चाहिए। दुःख तो यही है वह दंड भी नहीं देगी।"

उसने देखा—"प्रत्येक लहर तट पा रही रही है। उसे लगा—"अब मेरी भाव उर्मिदों को तट नहीं मिलेगा।" वह फिर चुपचाप वहाँ से घर आ गया।

१३

सेवक चन्द जी का धर्मार्थी जी के समान जो प्रसिद्ध नाम है वह है सेवक भाई। राजधानी में वह इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। क्यों न हों। आखिर वह हरिजन सेवा जो करते हैं। वह स्वयं कुछ और नाम से अपनी ख्याति चाहते थे। किन्तु जब इस नाम से प्रसिद्धि मिल गई। तो उन्होंने इसी प्रयोगवाद को स्वीकार कर लिया। हरिजन सेवा में उनकी रुचि आरम्भ से ही रही है। जीवन के आरम्भिक दस वर्षों में वह अध्यापक रहे। उस समय उन्हें डेढ़ सौ रुपये मिलते थे। वह कभी एक पैसा नहीं बचा पाये। इस समय वह अवैतनिक कार्य करते है। फिर भी भगवान की उन पर कृपा है उनको विश्वास है,—"यह सब हरिजन सेवा का ही फल है जिसको मैं पा रहा हूँ।"

सेवक भाई का एक लड़का है जो इंगलैंड में पढ़ रहा है। एक लड़की थी, जिसका विवाह बम्बई के किसी प्रसिद्ध उद्योगपति से कर दिया है। विवाह में उन्होंने दिल खोलकर धन लुटाया किन्तु कमी कुछ न हुई। वह आज भी उतने ही सुखी हैं। निजामुद्दीन क्षेत्र में उनकी एक कोठी है। दौड़-धूप करने के लिये उनके पास एक कार है। घर में दो नौकर हैं। उनके जीवन में प्रारम्भिक जीवन से आमूल परिवर्तन नहीं हो पाये। प्रथम उनकी वेष-भूषा अब और भी साधारण है। दूसरे उन्होंने प्रतिदिन कताई के कार्य-क्रम को आज भी नहीं छोड़ा। शनिवार और रविवार को तो वह कताई का विशेष आयोजन करते हैं।

राजधानी की अनेक सामाजिक संस्थाओं से सेवक भाई का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है किसी के सदस्य तो किसी के सम्पत्ति-दाता और कुछ के वह संचालक भी हैं। वह कार्य और भी करते हैं किन्तु उनका अधिक समय हरिजन सेवा में ही लगता है। हरिजन बच्चों के लिये कई पाठशालायें खोली हैं। एक पाठशाला में तो लगभग तीन सौ बच्चे हैं। देश और विदेश से इन बच्चों के लिये अनेक उपहार आते रहते हैं। जूते कम्बल पाउडर का दूध आदि कितनी ही वस्तुएँ सेवक भाई के पास आती हैं। बच्चों के लिए, वह चन्दा दिन-रात करते हैं। किन्तु कार्य भार अधिक होने से उसका हिसाब वह नहीं रख पाते। रखें भी क्यों। अवैतनिक हरिजन सेवक हैं। अपने व्यक्तित्व के बल पर दान लाते हैं, उनको किसी को दिखाना थोड़े ही है।

हरिजन बच्चों के लिए सरकार से छात्रवृत्ति भी पर्याप्त मिलती है। उसकी प्राप्ति और अन्य सरकारी सहायता प्राप्त करने में उनका विशेष समय नहीं लगता। सब उनसे परिचित हो जाते हैं काम हो जाता है हरिजन पाठशाला की अध्यापिकाओं को वह पचास रुपये मासिक देते हैं। हस्ताक्षर वह उतने पर ही कराते हैं। जो वास्तव में मिलना चाहिए। अध्यापिकाओं से विनम्रता पूर्वक प्रार्थना कर लेते हैं। यह बचा हुआ पैसा इन बच्चों की सहायता में लग जायेगा। बेचारे आपको दुआ दें तो। अभी विद्यालय टैंटों में चल रहा है। वह उसका एक भवन खड़ा करना चाहते हैं। इसके लिए भी दान प्राप्ति का कार्य-क्रम चलता रहता है।

पाठशाला के टैंटों के पास ही सेवक भाई का एक अलग टैंट है। वह जब किसी से मिलते हैं, उसी में मिलते हैं। वहाँ कुर्सी कोई नहीं केवल एक तख्त और चटाई रहती है। उनके साधारण रहन-सहन की सब मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं कुछ ऐसे भी हैं। जो उन्हें ढोंगी कह-कर व्यर्थ में अपना सिर दर्द करते हैं। कभी किसी ने विशेष व्यंग किया तो वह हँसकर टाल देते हैं। उनका विश्वास है सेवा के पथ में बाधाएँ अवश्य आती हैं हमें कार्य करते जाना चाहिए।

संध्या के साढ़े पाँच बजे हैं। सेठ जी उसी कमरे में बैठे हैं, जिसमें वह प्रायः आगन्तुक व्यक्तियों से मिलते हैं उसी समय सेवक भाई आ धमके। वह पसीने में सरोबर थे। किन्तु जब कमरे में प्रवेश किया, तो लगा, जैसे वह नैनीताल की प्रातः पा गये हों। सेठ जी की सम्पूर्ण कोठी वातानुकूलित है। फिर भी वह गर्मियों में प्रायः कश्मीर चले जाते हैं। इस वर्ष भी वह सपरिवार चले गये थे। इस समय एक दो दिन के लिए वह किसी आवश्यक कार्य से आये हुए हैं। सेवक भाई को देखते ही, सेठजी बोले—

"आओ सेवक भाई ? कहो क्या समाचार हैं ?"

"सब कृपा है सेठजी आपकी। आप सुनाइये।"

"हम क्या सुनायें सेवक भाई। सरकार ने नाक में दम कर रखा है। देश के लिये दिन-रात काम करते हैं और इस पर भी सबकी आँखों में हम ही खटकते हैं।

"भले आदमियों को यह दुनियाँ जीने ही नहीं देती सेठजी। हमें देखिये। दिन-रात हरिजन सेवा करते हैं और इस पर भी कोई न कोई मूर्ख हमारे ऊपर कीचड़ उछाले बिना नहीं रहता।"

"ठीक है सेवक भाई। दुनियाँ बहुत बदल गई है।"

"हमने तो सोच लिया है। दुनियाँ की बातों पर ध्यान न देकर मानव सेवा करते जाओ। यदि इस जन्म में नहीं तो परलोक में शान्ति अवश्य मिलेगी। मानव सेवा से बड़ा हमारी दृष्टि में कोई कार्य ही नहीं है।"

"परलोक से तो अब दुनियाँ का विश्वास ही उठता जा रहा है सेवक भाई। हमें देखिये, सब शोषक कहकर पुकारते हैं। यह कोई नहीं जानता, दिया है तो पा रहे हैं। और अब दे रहे हैं, तो आगे पायेंगे। आप देखते ही हैं मैं साथ में कितना दान करता हूँ।"

धर्मार्थी जी ने अवसर की अनुकूलता से लाभ उठाया—

"दुष्ट नास्तिकों की बात छोड़िये सेठ जी! आप तो इस युग के

कर्ण हैं। आपके द्वार से कोई खाली नहीं जाता। आज तो मैं भी एक प्रार्थना लेकर आया हूँ।"

"आप और प्रार्थना! कैसी बातें कर रहे हैं आप? आधी रात जो सेवा हो हमें बताइये। हम पूरी करेंगे।"

"और तो कुछ नहीं, बस हरिजन बच्चों की पाठशाला के लिए एक बिल्डिंग बनाने का निश्चय कर चुका हूँ। मैंने प्रतिज्ञा कर ली है जूते उसी समय पहनूँगा, जब बिल्डिंग बन जायेगी।"

"तो क्या बाल भी तभी कटाओगे?"

"जी हाँ! ये दोनों ही प्रतिज्ञायें की है?"

"तो फिर कितने रुपए चाहिएँ इसके लिए?"

"यह तो आपकी कृपा पर निर्भर है।"

"जितनी आवश्यकता हो धर्मार्थी से जब चाहो ले लेना। हम उस को कह देंगे। आप भी हमारे ऊपर कृपा दृष्टि रखें।"

"आप चिन्ता न करें। जो भी सरकारी सहायता सम्बन्धी कार्य हो, मुझे सूचित कर दिया करें।"

"हमने जो महा मन्दिर निर्माण कार्य आरम्भ किया है उसके विषय में तो आपको ज्ञात ही है।"

"आपको पता नहीं है शायद। स्थान की व्यवस्था तो मैंने ही कराई है। समय मिलने पर तो हम वहाँ जाते भी रहते हैं।

"इस मन्दिर के निर्माण की सूझ के विषय में क्या विचार हैं आपके?"

"यह भी कोई पूछने की बात है। इससे तो एक ओर यश मिलेगा और दूसरी ओर ख्याति। बड़ी ही उत्तम सूझ है आपकी।"

दोनों की बातचीत के समय ही वहाँ धर्मार्थी जी आ गये। आज वह कुछ झुंझलाये हुए से थे। उन्होंने आज रजनी को कार्यालय में बुलाकर कुछ ऐसा वाक् प्रहार किया, जिससे रजनी के संयम का बाँध टूट गया। रजनी ने भी प्रत्युत्तर में कटूक्तियों की बौछार कर दी।

क्रोधान्ध धर्मार्थी जी मन में कुछ निश्चय सा कर सीधे मिल से आये थे। उन्होंने आते ही हाथ जोड़ प्रणाम किया, और फिर चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गये।

सेवक भाई ने धर्मार्थी जी के मुख को पढ़कर कहा -

"क्या बात है ? आज कुछ उदास दिखाई दे रही हो।"

दोनों की बातचीत की श्रृंखला जुड़ते ही सेठ जी खड़े हुए, और धर्मार्थी से कहा —

"सेवक भाई की जो माँग है, उसे पूरा करो !

वह फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही अन्दर चले गये। उनके जाते ही सेवक भाई धर्मार्थी जी से बोले---

"अब तो आप विवाह कर लें।"

"छोड़िये इस सीरयस विषय को।"

"क्या कह रहे हैं आप। विवाह से भी सरस कोई विषय हो सकता है नारी के बिना तो आदमी अन्धा लँगड़ा है धर्मार्थी जी।"

"होता होगा सेवक भाई। हमें तो इसका अनुभव नहीं है।"

"वस्तु को पाकर ही तो अनुभव हो सकता है।"

"ठीक है आप की बात। किन्तु मेरे विचार से अनुभव नहीं हो तो अच्छा है जीवन में और भी तो बहुत से अनुभव हैं।"

"इस अनुभव के बिना तो जीवन ही निरर्थक है मेरे भाई।"

"मूल बात यह है सेवक भाई, मुझे बन्धनमय जीवन अच्छा ही नहीं लगता। मेरी दृष्टि में विवाह से बड़ा बन्धन ही नहीं है।

"हमारे विचार से तो मुक्त जीवन चल ही नहीं सकता। मनुष्य की तो बात छोड़िये ! पशु पक्षी भी बन्धन में बँधते पाये जाते हैं।

"बात आपकी ठीक है। फिर भी मेरा निश्चय है कि मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। कर्त्तव्यपालन के लिये भावनाओं का दमन आवश्यक है।"

"मेरे विचार से तो विरक्ति और विरक्ति से आसक्ति का जन्म

होता है श्रीमान् जी। अब तक आपने ब्रह्मचर्य का पालन किया और अब गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहिए। जीवन के तीसरे सोपान में फिर विरक्ति को अपना लेना। हमें देखो ! अब गृहस्थ जीवन से विरक्त हो सेवा पथ को अपना लिया है।"

"एक बात बतायें तो आप।"

"अवश्य ! पूछिये।"

"आपने हरिजन सेवा का यह व्रत कब लिया था ?"

"मेरी तो यौवन काल से ही इस ओर रुचि थी।"

"तो फिर समझ लीजिये, मैंने भी यौवन काल में ही मानव सेवा का व्रत ले लिया है। मेरा परिवार तो बहुत बड़ा है।"

मानव सेवा से बड़ा कोई कार्य ही नहीं है। मैं तो विवाहित जीवन में भी इस सेवा के कार्य को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाये रहा।

"बात आपकी ठीक है किन्तु निश्चय सबके अलग अलग होते हैं।"

"चलिये फिर जैसी आपकी इच्छा। अब हमारा कार्य करो।"

"कल मिल में आ सकेंगे आप ?"

"क्यों नहीं ! आप बुलायें तो जरूर आयेंगे।"

"तो फिर कल ही होगा आपका काम।"

"सेठ जी तो अब मिल न पायेंगे।"

"मेरे विचार से नहीं ! अपनी इच्छा से वह चाहें जब आ जायें किन्तु उन्हें बुलाना सम्भव नहीं है।"

"कोई बात नहीं। फिर कभी मिल लेंगे।

सेवक भाई खड़े हुए और चल पड़े।

मैं भी चल रहा हूँ। ऐसी क्या जल्दी है।

दोनों ने फिर अपनी-अपनी गाड़ी स्टार्ट की और अपने-अपने लक्ष्य की ओर चले गये।

धर्मार्थी जी का मन इस समय भी कुछ खिन्न था।

१४

कुछ दिन पूर्व राजेश ने रजनी को जो पत्र लिखा था, उसमें साथ रहने का संकेत था। आज उसी पत्र का उत्तर आया है। रजनी ने लिखा है—

आशाओं के खंडहर देख कर भी आज मैं जीवित हूँ। मेरे जीवन दीप को तूफान न बुझा सका यह भी ठीक है और अब दीपक टिम-टिमाता हुआ जल रहा है। जानते हो क्यों? लो सुनो! अब इसमें तेल नहीं है। दीपक दियासलाई से नहीं जलता है। तेल के अभाव में दियासलाई तो बत्ती को ही जला देगी। प्रकाश का तो वहाँ प्रश्न ही नहीं उठता।"

पत्र को पढ़कर राजेश का मस्तिष्क झल्ला गया। उसे निश्चय हो गया—रजनी अब बदल चुकी है वह अब दूर रहना चाहती है। विवाह से पूर्व क्या कहा था उसने? सचमुच नारी वह लता है जो वायु के झोंकों के साथ लचकती रहती है। राजेश ने निश्चय किया—

"दिल्ली जाकर एक बार उसकी दुनिया को अवश्य देखे। उसने पत्र को कई बार पढ़ा। कहीं पत्र का भाव जानने में भूल तो नहीं की है। पत्र को पढ़ते हुए उसकी भावनायें भड़कती ही गईं। न जाने उसे क्या सूझी। साढ़े दस बजे होंगे। माता को सूचित कर वह सीधा दिल्ली चल दिया। एक बजे दिल्ली पहुँच वह सीधा मिल गया। सूका और उसके साथी उस समय रात की ड्यूटी होने से सोये हुए थे। एक मैली सी

फटी दरी पर सब अचेत से पड़े थे। खटमलों का उन पर निरन्तर आक्रमण हो रहा था। और वे सब निर्भीक सिंह के समान इस आक्रमण की चिन्ता न करते हुए खर्राटे भर रहे थे।

राजेश कुछ देर उन्हें खड़ा देखता रहा। सूका और उसके दो साथी के मुख खुले थे, जिनमें मक्खियों के आवागमन का क्रम चल रहा था। सब की यह दशा देख राजेश का हृदय उमड़ आया। वह सोचने लगा —"यह भी एक जीवन है।"

जब वह खड़ा हुआ कुछ सोच रहा था, एक पड़ोसी ने उसे देख लिया। उसने एक चारपाई डालकर राजेश को बिठाया और फिर सूका को जगा दिया। वह आँख मलता हुआ उठा, और राजेश को देखकर उल्लास भरे स्वर में पुकार पड़ा—

"आओ बाबू जी आओ। बड़े भाग्य हैं हमारे जो आप आये। कहो गाँव में सब राजी खुशी तो हैं।"

"बैठो भाई सूखा! खड़े क्यों हो?"

"मैं अभी आता हूँ।" कहता हुआ सूका जेब में कुछ पैसे डाल कर बाजार चला गया। कुछ देर में उसने पाव भर की दही की लस्सी का गिलास लाकर राजेश के हाथ में थमा दिया। राजेश ने मना भी किया किन्तु सूखा के आग्रह को न टाल सका। लस्सी पीकर राजेश बोला—

"क्या रात की ड्यूटी है सूका भाई?"

"जी हाँ, बाबू जी।"

"तो फिर तुम सो जाओ। मैं चलता हूँ। शाम को फिर मिलेंगे।"

"अब क्या सोयेंगे बाबू जी। अब तो सब ही उठने वाले हैं। शाम का खाना बनाकर कुछ देर आराम करेंगे, और फिर रात की ड्यूटी पर जायेंगे। इस समय तो हम रोज ही उठ जाते हैं।"

"आप लोगों का काम बड़ी मेहनत का है भाई सूका।"

"मेहनत के बिना पैसे कौन देता है बाबू जी।"

सूका ने धरती पर बैठकर बीड़ी सुलगाई। वह फिर, राजेश से बोला—

"आपके लिए सिगरेट लाऊँ क्या ?"

"मैं सिगरेट नहीं पीता।" राजेश ने जानकर असत्य बोला।

सूका ने फिर सबको जगा दिया। सब उठते गये और बीड़ी सुलगाते गये। सब की आँखें लाल थीं। आलस्य से शरीर टूट रहा था। सिर के बालों और वस्त्रों में रुई चिपकी हुई थी। सबने अचेत होकर राजेश को प्रणाम कर राजी खुशी पूछी। सबसे पीछे कन्हैया उठा, और उठते ही अंगीठी सुलगाने लग गया। सूका अब राजेश के पास निश्चिन्त होकर बैठ गया। राजेश उससे बोला—

"गाँव से तो यहाँ आप लोग बहुत अच्छे हैं, यहाँ तो रात-दिन झगड़े ही होते रहते हैं, बिना बात ही लाठियाँ चल जाती हैं।"

"यह तो यहाँ बहुत होता है बाबू जी। कभी पुरबियों से पहाड़ी और कभी पहाड़ियों से पंजाबी टकराते ही रहते हैं। अगर मिल के पहलवान झगड़ों के समय बीच में न आवें तो यहाँ पर गाँव से भी ज्यादा सिर फुटाई होती रहे।"

"यहाँ तो लड़ाई का कोई कारण ही नहीं है।"

सूका ने धीरे से राजेश के बिलकुल पास आकर कहा—

"यहाँ आपसी झगड़ों को तो मिल वाले ही कराते हैं बाबूजी। पहले आग लगा देते हैं, और पीछे बुझाने आते हैं।"

"इतने धीरे से क्यों कह रहे हो इस बात को ?"

"यहाँ दीवारों के भी कान होते हैं बाबू जी। सब बात बड़ों पर पहुँच जाती है। इसीलिए हम झगड़ों से दूर अपने काम से काम रखते हैं।"

राजेश ने इस कथन से ही समझ लिया। मिल वालों की यह संगठन भंग करने की योजनायें हैं। प्रत्यक्ष में उसने कहा—

"झगड़ों में पड़ना ही नहीं चाहिए आप लोगों को।"

"छोड़ो इन बेकार की बातों को। अब यह बताओ कि आप सब्जी क्या खायेंगे ?"

"कुछ नहीं भाई ! मैं तो अब चला जाऊँगा।"

"खाना खाये बिना आप जा ही नहीं सकते।" कन्हैया ने हठ की।

"नहीं मानते तो मूंग की दाल बना लो।"

खाना पाँच बजे तक बना। सूका इतनी देर राजेश के पास ही बैठा रहा। सबसे पहले राजेश ने खाना खाया। वह फिर वहाँ से चल दिया। उसके साथ सूखा और कन्हैया भी चल पड़े। जब वह क्वार्टरों से निकल मिल के द्वार के सामने से बस स्टैन्ड को जा रहे थे उन्होंने देखा—

मिल के द्वार पर बने पार्क में रजनी और धर्मार्थी जी कुछ बातें कर रहे थे। न चाहने पर भी रजनी को प्रतिदिन छह बजे धर्मार्थी जी के पास आना पड़ता है। धर्मार्थी जी को अब रजनी प्रत्येक दृष्टि से अच्छी लगने लगी है। इसीलिए छह बजे रजनी का आना अनिवार्य कर दिया गया है, दोनों पार्क में खड़े थे। रजनी दृष्टि को अधिकतर झुकाये हुए ही बातें कर रही थी। जब वह दृष्टि उठाती धर्मार्थी जी आँखों में आँख गड़ाये बिना नहीं रहते।

सूका को गाँव की बात का स्मरण हो उठा। उसने कहा—

"देखो बाबू जी ! यह है धर्मार्थी और बहन जी।"

राजेश की छाती पर साँप सा लेट गया। एक निमिष के लिये उसकी आँखों के सम्मुख अन्धकार सा छा गया। उसके पाँव लड़खड़ा गये। कठिनाई से स्वयं को सन्तुलित कर वह बोला—

"ये बहन जी क्या करती हैं यहाँ पर ?"

'भगवान ही जानें बाबूजी। जब देखो, यहीं खड़ी रहती हैं।"

"अच्छा अब आप लोग जाँय। हो सका तो कल फिर मिलूँगा।"

दोनों फिर हाथ जोड़ प्रणाम कर लौट आये। राजेश ने उनसे विदा हो स्कूटर लिया और वह सीधा राधा से मिलने चल दिया। वह स्कूटर में बैठा सोच रहा था—रजनी तन और मन की भूख से अब तृप्त हो चुकी है। उसे धन चाहिए। ठीक भी है। यह आर्थिक युग

है। पैसा जीवन की प्रथम आवश्यकता है। यह न हो, तो तन और मन दोनों ही की मृत्यु हो जाती है। अब प्रश्न यह है कि जिस धर्मार्थी से रजनी प्रणय लीला कर रही है, क्या वह इसे अपनायेगा। नहीं, कभी नहीं। पैसे वाले प्रेम का अभिनय कर सकते हैं। क्या जानें बेचारे प्रेम को। इनका तो सिद्धान्त है आम का रस चूसो, और गुठली को फेंक दो। यह भी इसके साथ यही सब करेगा। और फिर यह कहीं की भी न रहेगी।

राजेश जब राधा के पास पहुँचा, वह घर पर ही थी। उसने राजेश को देखते ही हाथ जोड़ प्रणाम किया, और खड़ी हो गई। राजेश बोला—

"कहो राधा क्या समाचार है ?"

"बैठिये। चाय तैयार है। पहले चाय पियो, फिर समाचार भी बताऊँगी। क्या बात है ? कुछ उदास दिखाई दे रही हो।"

कुर्सी पर बैठते हुए राजेश बोला—

'चाय मैं पीता नहीं। पानी अवश्य पी लूंगा।"

राधा ने माता जी को तुरन्त बोतल लेने के लिये भेज दिया। वह स्वयं एक ठंडा गिलास पानी लेकर अन्दर से आई। पानी को राजेश के हाथ में देते हुए, उसने वक्ष में अपेक्षाकृत उभार भरते हुए कहा—

"कहाँ से आ रहे हैं आप इस समय ?"

"पहले तुम यह बताओ कि तुम्हारी सखी के क्या समाचार हैं।"

"सब ठीक है उनको मैंने मिल में नौकरी दिला दी है।"

"अब वह यहाँ नहीं रहती ?"

"उनको वहीं पर क्वार्टर मिल गया है।"

"तुम भी तो वहीं कार्य करती हो। तुम्हें क्वार्टर क्यों नहीं मिला ?"

"मैंने इस विषय में कभी सोचा ही नहीं है।"

"और कोई नवीन समाचार है क्या ?"

"सब ठीक है। चलिये रजनी से मिला जाये। परन्तु..."

राधा को वाक्य चबाया देख राजेश बोला—

"रुक क्यों गईं राधा। बोलो क्या बात है ?"

"बात कुछ नहीं। हो सकता है इस समय वह कहीं भ्रमण के लिये चली गई हो। इसीलिए सवेरे मिलना उचित होगा।

"तो आज कल वह भ्रमण के लिये भी जाती है।"

"परिवर्तन तो सृष्टि का अमिट विधान है श्रीमान् जी।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ। प्रश्न तो यह है कि यह परिवर्तन आखिर क्यों ?"

"इस विषय में मैं आपको कुछ भी बताने में असमर्थ हूँ।"

"तुम्हारे इस कथन का भी एक अर्थ है राधा। केवल शंका समाधान कर दो। ऐसा न हो, कहीं मैं कल्पित निश्चय को सत्य मान भ्रम में पड़ जाऊँ।"

"मुझे लगता है रजनी जीवन के मोड़ पर पहुँच गई है।"

"अब यह बताओ कि मोड़ कैसा है।"

"यह जानना केवल आपका धर्म है।"

राजेश की शंका का जैसे समाधान हो गया हो। वह बोला—

"मैं समझ गया। रजनी ऊँचा उड़ना चाहती है। वह भूल गई है यदि ऊँची उड़ान से गिर गई, हाथ पांव टूटे बिना न रहेंगे।"

"उड़ने वाले को इसका पहले पता होता ही नहीं है।"

"ठीक है तुम्हारी बात। फिर भी हमें दूसरों के अनुभव से लाभ उठाना ही चाहिए। इस प्रकार तो हम पग-पग पर भूल करते चले जायेंगे।"

"बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

"सत्य बात में बुरा मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। कहो।"

"सिर छिपाने के लिये, कोई सहारा तो होना ही चाहिए।"

"बात तुम्हारी भी ठीक है। फिर भी मेरे विचार से वह इस समय सहारा नहीं, बल्कि वैभव चाहती है।"

"और मेरे विचार से वह अन्धी होकर लाठी की खोज कर रही है।"

"तुम्हारी भूल है राधा ! रजनी अन्धी नहीं है। मैंने जो विवाह किया है वह उसकी स्वीकृति पर ही किया है।" मुझे दुख है उसने मुझे इतने दिनों में भी नहीं पहचाना।"

"आपने भी तो एक दिन किसी को पहचानने में भूल की थी।"

राजेश इस कथन का अर्थ तुरन्त समझ गया। राधा ने यह सब अपने विषय में कहा है। उसके इस अवसरानुकूल तीर से वह घायल सा हो गया। वह फिर उठा और चल पड़ा राधा बोली—

"न आपने बोतल पी, और न खाना ही खाया। आज यहीं ठहरिये।"

"नहीं राधा। कष्ट के लिए क्षमा। अब मैं चला।"

और फिर वह वहाँ से अपने मित्र के पास चला गया।

१५

सत्य को यदि सुगन्ध मानें, तो असत्य को दुर्गन्ध कहना ही होगा। दोनों प्रयत्न करके भी नहीं छुपाये जा सकते। धर्मार्थी जी ने अपने असत्य की दुर्गन्ध को लाख बार सुगन्ध सिद्ध करने का यत्न किया फिर भी वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए बिना न रही। साधारण पढ़े लिखे पंजाबी मजदूरों ने मिल में अपना एक गुप्त संगठन बना लिया। उनकी कई गुप्त बैठक भी हो चुकी हैं प्रत्येक बैठक में वह विचार करते हैं।

आखिर ये मोटे पेट वाले पूँजीपति हमारी कमाई को कब तक खाते

रहेंगे ? ढोंगी धर्मार्थी का ढोंग कब तक चलता रहेगा ? हमारी कमाई और हम पर हकूमत, यह सब कब तक चलेगा ? मजदूरों के पास इन प्रश्नों का उत्तर कुछ नहीं है। प्रतिक्रिया की सामर्थ्य वे बटोर नहीं पाते। प्रत्येक बैठक में कोई भी निर्णय किये बिना वे उठ जाते हैं। वे जानते हैं धर्मार्थी जी की हमारी गतिविधियों पर दृष्टि है। अवसर मिलते ही हमें निगल जायेंगे। अजगर का मुँह बहुत बड़ा होता है। धर्मार्थी वही अजगर है जो साँप के साथ पक्षियों को निगल सकता है। इसीलिए उसके ऊपर उड़ान करने का साहस वह नहीं कर पा रहे हैं। ठीक ही है म्याऊँ का मुँह कौन पकड़े। प्रत्यक्ष विरोध की किसी में भी सामर्थ्य नहीं है।

धर्मार्थी जी ने इस गुप्त संगठन को भंग करने की कई योजनायें बनाई हैं। पहले उन्होंने बल से दबाने का प्रयास किया। लाभ कुछ न हुआ। मिल के पहलवानों ने कई मजदूरों की धर्मार्थी के संकेत पर पिटाई की है मजदूरों में इससे आग सी भड़क गई है। पुरबिये और पंजाबी भी धर्मार्थी की योजना से परस्पर टकरा चुके हैं इससे भी संगठन और दृढ़ हुआ। कुछ पुरबिये भी समझने लगे हैं आखिर पंजाबी भी तो हमारे भाई हैं। अब केवल पहाड़ी मजदूरों का दल धर्मार्थी के साथ है धर्मार्थी जी जानते हैं पहाड़ी स्वामिभक्त अधिक होते हैं। इसी-लिए वह अब उनको ही छाती से लगाये हुए हैं। धीरे-धीरे इनमें भी कुछ नये विचार पनपने लगे हैं।

बल प्रहार से धर्मार्थी जी अपने लक्ष्य में सफल नहीं हुए। अब उन्होंने प्रेम प्रदर्शन आरम्भ कर दिया है। अब वह मजदूरों के क्वार्टरों में आते हैं, और कहावत सिद्ध करते हैं—

"मान न मान मैं तेरा मेहमान।" लाभ इससे भी कुछ नहीं हुआ। मजदूर अब धर्मार्थी जी की प्रत्येक क्रिया को ही ढोंग समझने लगे हैं।

आज सेठ जी का पैंसठवाँ जन्मदिन है इस शुभ अवसर पर मिल में कई आयोजन किए गये हैं। प्रत्येक मजदूर को लगभग आधा सेर मिठाई दी जाएगी। मिल में कुछ चुने हुए कारीगरों को लगभग

सौ साइकिलें पुरस्कार में दी जायेंगी। प्रत्येक कारीगर को मिठाई वाली तश्तरी और साथ में एक गिलास भी दिया जायेगा। मिल के स्थायी रंग-मंच पर मणीपुर की नृत्य मंडली का नृत्य होगा। नृत्य प्रदर्शन के समय दो घन्टे मिल की छुट्टी होगी।

धर्मार्थी जी को अपने गुप्तचरों द्वारा पता चला है नृत्य प्रदर्शन के समय कुछ मजदूर गड़बड़ करने की योजना बना रहे हैं। वे कहते हैं— हमारे परिश्रम की कमाई को इस प्रकार क्यों उड़ाया जा रहा है। दो घन्टे में ये दो नर्तकी हजारों रुपये ले जायेंगी। हमको नृत्य से पहले रोटी चाहिए। पेट भर भोजन नहीं। रहने को स्थान नहीं। एक कमरे में दस-दस मजदूर भेड़ों के समान भरे रहते हैं। यह भी कोई जीवन है।

धर्मार्थी जी ने दो बजे निश्चय किया, मजदूरों के क्वार्टरों में भ्रमण करके देखा जाय, ये कितने पानी में हैं ? यदि गड़बड़ करने वालों का जोर हुआ तो अधिक पुलिस की व्यवस्था करा ली जायेगी। दो बजे होंगे। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। धर्मार्थी जी इसकी कोई चिन्ता न करते हुए भ्रमण करने चल दिये। क्वार्टरों का एक चक्कर लगाने पर भी वे कोई अनुमान न लगा सके। पसीने में सरोबर जब धर्मार्थी जी रजनी की कुटीर के सामने से निकले, रजनी खड़ी हुई उन्हें देख रही थी। धर्मार्थी जी का आज उस ओर ध्यान ही नहीं गया। वास्तव में वे मणिपुर की नर्तकियों को देखने के लिये उतावले हो रहे थे।

रजनी धर्मार्थी जी के विषय में सोचने लगी— कितना विचित्र है यह व्यक्ति। स्वार्थ के पीछे अन्धा होकर दौड़ता है। बाहर से जितना कोमल और निर्मल है अन्दर से उतना ही कठोर और समल। कितना अच्छा हो भगवान इसे सद्बुद्धि दान कर दे।

धर्मार्थी जी जब क्वार्टरों से बाहर मिल के द्वार के सामने आये, उनके साथ मजदूरों का एक जमघट हो गया। कुछ मजदूरों को इस समय छुट्टी मिली थी। वे सब वहीं खड़े हो गये। कुछ उनके साथ

भ्रमण के समय गये ही थे। अवसर की अनुकूलता का लाभ उठाकर धर्मार्थी जी ने यूँ ही खड़े-खड़े कहना आरम्भ कर दिया।

आप सब भाइयों को पता ही है। आज पूज्यनीय सेठ जी का जन्म दिन है हम सब उनके परिवार के सदस्य हैं इसीलिये हमारा धर्म है। इस शुभ अवसर पर उनके लिये प्रार्थना करें। वे हजार वर्ष जीवित रहें। उनकी छत्रछाया में हम फूलें और फलें। मैं चाहता हूँ आज जो भाई मुझ से किसी कारण से नाराज भी हैं अपनी नाराजगी भुला दें। ऐसे शुभ अवसर तो होते ही प्रेमभाव बढ़ाने के लिए हैं। हम सब आपस में भाई हैं। एक साथ रहते हैं। हजार बार लड़ेंगे, और फिर विशेष अवसर पर एक हो जायें तो। बस, मुझे और कुछ नहीं कहना है। आप मेरी बात पर ध्यान दें और इस शुभ कार्य में मेरा हाथ बटायें। मैं चाहता हूँ कोई गड़बड़ न होने पाये।

मजदूरों से पृथक होकर धर्मार्थी जी नर्तकियों के पास गये। उन्होंने देखा, दोनों नर्तकी सुन्दर सुगठित शरीर को पहलवानों की भाँति तोड़ मरोड़ रही हैं। वास्तव में वह कुछ पूर्वाभ्यास कर रही थीं। मिल के द्वार के ऊपर जो कमरे हैं, नर्तकी उन्हीं में से एक कमरे में ठहरी हैं। उनको निकट से देख धर्मार्थी के मन महाराज मचल पड़े। हम तो बस इनको ही देखते रहना चाहते हैं। कठिनाई से मन पर विजय पाकर धर्मार्थी जी वहाँ से फिर रंग मंच की ओर चले गये। वहाँ की व्यवस्था को ठीक कराकर उन्होंने मिठाई वितरण व्यवस्था को देखा। चार बजे तक जब सारी व्यवस्था पूर्ण हो गई तो सेठ जी के स्वागत की तैयारी की गई। उनके आने का समय पाँच बजे का है।

सेठ जी सवा पाँच बजे तक दल बल सहित वहाँ पहुँचेगें। उनकी जय जय कार हुई और फिर वह नृत्य प्रदर्शन देखने सबसे आगे वाली कुर्सियों पर जम गये। उनके पीछे कुछ उन्हीं की मित्र मंडली बैठी। इनसे पीछे मिल के कुछ बड़े अधिकारी थे। बाबू लोगों के बैंच इनके पीछे थे। और सबसे पीछे हरी घास पर मजदूरों का झुंड बैठा हुआ था।

नृत्य प्रदर्शन आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम कृष्ण लीला की एकांकी प्रस्तुत की गई। इसके पश्चात् कत्थक और फिर भरत नाट्य कला का प्रदर्शन हुआ। सेठ जी आधा घन्टे के लिये आये थे। वह यहाँ कुछ ऐसे खोये कि उन्हें समय का पता ही न चला। पीछे जो मजदूर बैठे थे, वह पहले तो खड़े हुए। फिर धीरे-धीरे उन में एक खलबली-सी मच गई। हल्ला गुल्ला हुआ और फिर धक्का मुक्की आरम्भ हो गई। वह इतनी बढ़ी कि नृत्य मंडली को रंग मंच से उठकर भागना पड़ा। सारे मंच पर मजदूरों का अधिकार हो गया। पुलिस के सिपाही और मिल के पहलवानों ने सम्पूर्ण शक्ति से प्रहार किया। लाभ कुछ न हुआ। उन्होंने फिर सेठजी और उनके परिवार की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ कर दी।

लगभग आधे घन्टे में कठिनाई से शान्ति हो पाई। झगड़े में कुछ पुलिस के सिपाहियों को चोटें आ गई। मजदूर कितने घायल हुए इस का कुछ पता ही न चल सका। धर्मार्थी जी के सिर में भी एक पत्थर लगा। सेठ जी अवश्य सुरक्षित रहे। शान्ति स्थापित होने पर सेठजी पुलिस के घेरे में कार तक आये, और सीधे कोठी को चल दिए। उनका आज का उल्लास अवसाद में बदल गया था। धर्मार्थी जी के तो दुख का आज ठिकाना ही न था। वे चिन्तित थे—"अब सेठजी क्या कहेंगे। मेरी अयोग्यता का उन्हें जीता जागता प्रमाण मिल गया है।

धर्मार्थी जी पुलिस की सुरक्षा में नृत्यकारों की मंडली को अपने साथ, अपनी कोठी पर ले गये। वहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था पहले ही हो चुकी थी। अब कुछ झगड़े का भी बहाना मिल गया। नर्तकी चुपचाप उनके साथ चली गई। कोठी पर पहुँचते ही सबसे पहले पीने का दौर चला। इस दौर में धर्मार्थी जी ने उनका साथ नहीं दिया। वे न पीते हैं और न ही खाते हैं। एक नर्तकी के विवश करने पर उन्होंने एक पैग अवश्य ले लिया था। इसी प्रकार बहुत बाध्य करने पर उन्होंने पहली बार आज एक अंडे का सेवन किया। वास्तव में उनकी

भूख तो नर्तकियों को देखकर ही भाग गई थी।

बारह बजे तक दोनों नर्तकी नशे में चूर हो गईं। वे इस समय मद्यपान की चेष्टाओं के कारण नृत्य न करते हुए भी नृत्य सा करती दिखाई दे रही थीं। उनकी इस दशा को देख धर्मार्थी जी न जाने कौन सी कल्पनाओं में खोए हुए थे। साढ़े बारह बजे तक कुछ छेड़-छाड़ का क्रम चलता रहा। जिस समय नर्तकी छत पर सोने गई, एक बज चुका था। धर्मार्थी जी और नर्तकियों के साथी कोठी के पार्क में ही सो गये। जब सब गहरी नींद में डूब गये, धर्मार्थी जी पलंग से खड़े हो गये, उन्हें 'नींद' नहीं आई। वे फिर अपनी कोठी की छत पर चले गये। नर्तकियाँ इस समय निद्रा में अचेत थीं।

धर्मार्थी जी ने नर्तकियों की चारपाइयों के चारों ओर तेली के बैल के समान एक चक्कर लगाया। अति निकट से उनको देख धर्मार्थी उनकी रजनी से मन ही मन तुलना करने लगा। उसे जान पड़ा—

सुन्दरता वही है जो अति निकटता से दृष्टि का शृंगार करे। रजनी में यही बात है। इन नर्तकियों में वह बात नहीं है। सौन्दर्य का प्रदर्शन करते हुए, ये कितनों को आकर्षित करती हैं। लज्जा का आवरण इन्होंने उतार कर फेंक दिया है रजनी का लज्जा कोष अभी सुरक्षित है उसकी सखी राधा उससे कम सुन्दर नहीं। फिर भी उसकी और रजनी की तुलना में दृष्टि उठाने की इच्छा नहीं होती। प्राप्त वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, उसका मूल्य गिर जाता है। विपरीत इसके अप्रप्त के प्रति आकर्षण बढ़ता चला जाता है।

धर्मार्थी जी कोठी की छत पर पाँच बजे तक विचारों में डूबे खड़े रहे। आज नींद उनके निकट भी न रही थी। इसी समय मन्दिर में घंटियों और मस्जिद में आवाज की गूँज सुनाई दी। धर्मार्थी जी का ध्यान भंग हुआ। वे सोचने लगे—धर्म प्रचारकों ने कितनी सुन्दर व्यवस्था की है। मन्दिर की घंटियाँ और मस्जिद की अज़ान का एक ही उद्देश्य है दैनिक कार्य-क्रम में रत होने से पूर्व थोड़ा बनाने वाले भगवान का

भी तो ध्यान कर लो। देने वाला इस जीवन को अवश्य लेगा।

भोग के पगों में संयम की बेड़ियाँ डालकर राजेश छत से नीचे आ गया। उसने निश्चय किया—मैं अब धर्मार्थी ही बनकर दिखाऊँगा। इस निश्चय के साथ ही उसे नींद आ गई।

वह जब सोकर उठा दस बज चुके थे।

१६

उस दिन आकाश मेघ मंडित था। वायु में कुछ शीतलता थी। दिन में कई बार बूँदें भी पड़ चुकी थीं। सृष्टि को ऋतु परिवर्तन का पूर्ण विश्वास हो गया था। महीनों से तपी हुई राजधानी की जनता के मुख पर नया उल्लास था। झुलसने वाली लुओं से जैसे निवृत्ति मिल गई हो। संध्या के आठ बजे होंगे। राजेश उस समय नई दिल्ली रीगल के पास खड़ा था। उसको दिल्ली आये पन्द्रह दिन हो गये हैं। बी० ए० परीक्षा का परिणाम आते ही वह नौकरी की खोज में आ गया है। इस अवधि में उसने प्रतिदिन समाचार पत्रों में विज्ञापनों को पढ़ा है। जहाँ उचित समझा प्रार्थना-पत्र भी भेजा है। कई रिक्त स्थानों के लिये तो प्रार्थना-पत्र के साथ वह एक, दो और चार रुपये तक भी भेज चुका है। उत्तर उसके पास कहीं से भी कुछ नहीं आया।

अन्य दिनों की अपेक्षा आज राजेश कुछ अधिक उदास है। ऋतु परिवर्तन का सरस सन्देश उसे कुछ दुखदायी सा दिखाई दे रहा है। यहाँ वह जब भी आया रजनी साथ होती थी। और आज उसके अभाव में लगता है जैसे यहाँ कोई भी नहीं है। वह जैसे निर्जन में खड़ा है। एक ओर रोजगार की चिन्ता और दूसरी ओर रजनी के अभाव ने राजेश को न जाने कितना कुछ सोचने को विवश कर दिया है। कभी

वह सोचता है—माता-पिता ने मुझे कितनी आशायें लेकर पढ़ाया था। आज भी कितना दुलार है उनका मुझ पर। मैं हूँ कि जीवन की ऐसी दलदल में फँस गया हूँ, जहाँ से निकल ही नहीं पा रहा हूँ। मेरा जीवन बिखर गया है। इसका दोषी मैं, स्वयँ हूँ। मैने साधना के समय भोग का पथ चुना इसी का दंड मुझे अब मिल रहा है।

दिल्ली आते समय राजेश के पास तीन सौ रुपये थे। अब केवल सौ रुपये बचे हैं। खाना वह होटलों में खाता है। रात्री को मित्रों के पास सो जाता है। राधा से वह अवसर मिलने पर मिलता रहता है। राधा ने कई बार संकेत किया है—"आप यहीं ठहरें तो अच्छा है।" राजेश को लगता है दलदल से निकल मरुस्थल में पग बढ़ाकर क्या करूँगा। धन्यवाद कहकर राजेश राधा की प्रार्थना को ठुकरा देता है। इतना होने पर भी राजेश के मन में रजनी के प्रति शंका और राधा की उदारता के प्रति आशा निरन्तर बढ़ती जा रही है। यथा समय वह न चाहने पर भी दोनों की तुलना सी करने लग जाता है।

अर्थोपार्जन का कोई मार्ग न पाने के कारण राजेश समाज की अर्थ व्यवस्था के विषय में भी कई बार सोचने लगता है। वास्तव में यह समाज चोर ठगों और बदमाशों का एक संगठन मात्र है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की जेब काटने के लिए अवसर की खोज करता रहता है। सबके हाथ में ब्लेड है। जिसको अवसर मिला, वही विजयी है। मकड़ी और मक्खियों के इस सामाजिक संगठन में मकड़ियाँ अपने व्यवसायिक जालों को फैलाकर बेचारी मक्खियों को फँसा रही है। उच्चाधिकारी अपनों को हाथ पकड़ कर ऊपर उठा रहे हैं। व्यवसायी धन के बल पर वस्तुओं का संग्रह कर मँहगाई को बढ़ा रहे हैं। कुछ खाद्य पदार्थो में मिलावट कर तिजोरियाँ भर रहे हैं। मेरा बस चले तो आग लगा दूँ इस समाज को, और फिर इसकी क्षार को भी गंगा की भेंट चढ़ा दूँ।

उस समय भी राजेश समाज की आर्थिक व्यवस्था के विषय में ही चिन्तित था। इन्द्रदेव की कृपा हुई और उसने इस सृष्टि की प्रार्थना पर वृष्टि आरम्भ कर दी। राजेश को क्रोध आ गया। विचित्र है इन्द्र

देवता, जिन्होंने मेघ माला को वर्षा का आदेश दिया है। उनको तो वज्राघात करना चाहिए था। राजेश को लगा—जैसे इन्द्र देवता भी सत्ताधारियों के ही सहायक है। ठीक भी है, उन्होंने अपने पद की सुरक्षा के लिए क्या कुछ नहीं किया। वह इस संचालित व्यवस्था में तिल बराबर भी परिवर्तन नहीं चाहते।

विचारों की गहनता के कारण राजेश ने बूंदों की कोई चिन्ता न की। उसके वस्त्र गीले हो गए। वह फिर वहाँ से चोरों की चाल चलता हुआ मद्रास होटल आ गया। उसका कोई निश्चय नहीं था। उसे कुछ इस स्थान और सत्ताइस नम्बर बस से प्यार सा हो गया था। विवाह से पूर्व जब वह रजनी से क्षमा माँगने आया था, इसी स्थान से इसी नम्बर की बस से उसके साथ रोहतक रोड गया था। यही आकषरण उसे यहाँ खीच लाया। और फिर सत्ताइस नम्बर की बस आने पर वह उसमें अनायास ही चढ़ गया। जब वह रोहतक रोड पहुँचा साढ़े नौ बज चुके थे।

इस समय राजेश न जाने क्यों राधा के पास नहीं गया? कुछ देर रोहतक रोड पर खड़ा रह कर उसने कुछ निश्चय सा किया। उसने फिर एक ताँगा पकड़ा और एक रुपए में उसे तैयार कर सीधा मिल चला गया। ताँगे से उतर कर राजेश ने पनवाड़ी की दूकान पर सिगरेट पी एक डिब्बी से। सिगरेट सुलगा कर जब वह क्वार्टरों की ओर बढ़ा, उसके पाँव कुछ भारीपन अनुभव करने लगे। उसने सूका के क्वार्टर की ओर चार कदम बढ़ाये। वह न चल सका, जैसे उसके पाँवों में बेड़ियाँ पड़ गई हों। वह फिर रजनी के क्वार्टर की ओर बढ़ने लगा। इस समय उसके पाँव और भी भारी हो गये. शिक्षा काल में दौड़ में प्रथम आने वाले राजेश को लग रहा था—जैसे उसके पाँव आज उसके भार को भी नहीं संभाल रहे हैं। इस समय वह पचास गज की दूरी को कच्छवा गति से पन्द्रह मिनट में पूर्ण कर पाया।

रजनी का द्वार बन्द था। बूंदों के कारण वह छत से कमरे में आ गई थी। राजेश ने द्वार पर खड़ा होकर धीरे से देखा—कमरे में बत्ती

जल रही थी। वर्षा की बूँदे इस समय और भी तेज हो गईं। राजेश के वस्त्र सरोबर हो गये। फिर भी उसका साहस नहीं हो रहा है कि द्वार पर थपकी लगाये। कुछ देर तक शंका जन्य घृणा और अतीत की मधुर स्मृतियों का द्वंद चलता रहा। निराशामय भविष्य को उज्जवल बनाने के लिये जैसे कोई जुआरी सब कुछ हार कर भी ऋण लेकर पुनः जुआ खेलने का साहस करे, राजेश की स्थिति यही थी। अन्त में उसने सम्पूर्ण साहस बटोर द्वार पर थपकी लगा दी।

मेघ गर्जन के कारण रजनी द्वार की थपकी को न सुन पाई। राजेश को लगा जैसे इन्द्रदेव आज पूर्णतया प्रतिकूल हैं। उसने प्रकृति से लड़ने का निश्चय कर द्वार पर जोर से धक्का लगाया। इस बार रजनी ने सुन लिया। वह भयभीत हो गई। शंकित हो वह सोचने लगी—कहीं धर्मार्थी की धूर्तता के नग्न नृत्य का समय तो नहीं आ गया है। जब वह सोच रही थी, राजेश ने दूसरा धक्का लगाते हुए कहा—

"रजनी।"

रजनी को राजेश की आवाज़ पहचानने में एक पल भी न लगा। उसने द्वार खोल दिये। द्वार खोल वह धीरे से पीछे हटती हुई बोली—"आइये! इस समय कहाँ से आ रहे हो?"

राजेश ने द्वार में प्रवेश कर कहा कुछ नहीं। वह कुछ देर रजनी को नीचे से ऊपर तक देखता रहा। रजनी भी चुपचाप सिर झुकाकर खड़ी हो गई। एक दो बार दृष्टि भी टकराई। दोनों फिर भी शान्त रहे। कहें भी क्या? दोनों के पास एक दूसरे को देने के लिये इतने उपालम्भ हैं, जिनके लिए एक युग चाहिए। रजनी के हाथ भी इस समय राजेश के पगों की ओर न बढ़ पाये। वह न जाने कौन सी कल्पनाओं और आशंकाओं में खोकर, प्रथम वाक्य के पश्चात् मूर्तिवत बन गई।

पुरुष और नारी के किसी भी संघर्ष में जैसे अन्तिम पराजय नारी की ही हो। रजनी के मुख से पुनः फूट पड़ा—

"बैठिये। इस प्रकार खड़े-खड़े क्या देख रहे हो?"

"मैं क्या देख रहा हूँ? आज तुम यह नहीं जानती?"

"बहुत बातें ऐसी भी हैं, जहाँ जानकर भी अनजान बनना पड़ता है।"

"आँखें खोलकर चलो रजनी! कहीं ऐसा न हो, टकरा जाओ।"

"पहले तौलिया लेकर हाथ पाँव पौंछ लीजिए। फिर आराम से बैठकर जो कुछ कहना है कहो। खड़े क्यों हो?"

"इस मुख को तो अब भीगा ही रहने दो रजनी।"

"और यह मुख अब भीग नहीं सकता। आँसुओं का स्रोत अब सूख चुका है। केवल आहें ही शेष रह गईं हैं।"

"मनोनुकूल साथी पाकर भी आहों की बात समझ में नहीं आई।"

"यही तो विडम्बना है। साथी मिलकर भी न मिल पाया।"

"आर्थिक दुनियाँ के सर्वोपरि संचालक की संगिनी होकर भी और क्या चाहती हो, तुम विलक्षण नारी?"

रजनी के ऊपर जैसे वज्राघात हो गया हो। कठिनाई से स्वयँ को संभाल कर बोली—

"आप किसी भ्रम के जाल में तो नहीं फँस गये हैं?"

"कानों सुनी भ्रम हो सकती है। आँखों देखी नहीं।"

"आप दिल्ली कब आये? और इस समय कहाँ ठहरे हैं?"

"यह जानना अब तुम्हारा अधिकार नहीं है।"

"अधिकार न सही। कर्त्तव्य ही समझ लो।"

"कर्त्तव्य और अधिकार को स्वीकार करने वाला साथी तो अब पा चुकी हो। फिर क्या चाहती हो?"

इस बार रजनी संभल न पाई। वह दोनों हाथों से सिर को पकड़ कर नीचे बैठ गई। उसकी आँखों के सम्मुख अँधेरा सा छा गया। वह कुछ देर बैठी ही रही। फिर संभल कर वह बोली—

"धराशायी व्यक्ति की ग्रीवा पर पदाघात करने वाला व्यक्ति यदि किसी सन्तोष का अधिकारी है, तो फिर आप जो चाहें वही कहें।"

"क्रिया से पूर्व विचार आवश्यक है रजनी।"

"और जहाँ विचार के पश्चात् की हुई क्रिया का अपेक्षित फल मानव को न मिले, वहाँ क्या आवश्यक है राजेश ?"

"तब तुम ने इसीलिये यह नवीन पथ चुना है ?"

"आप कल्पित निश्चय को सत्य मानने की भूल कर रहे हैं।"

"भ्रम कहकर मेरे सत्य की उपेक्षा न करो रजनी। मैं केवल तुम्हें अन्तिम चेतना देने ही यहाँ आया हूँ।"

"आपके दोषारोपण का प्रतिवादी मेरा शब्द नहीं बल्कि भविष्य होगा राजेश। अब आप तौलिया लेकर हाथ पाँव पोंछ लो। मेरी धोती कपड़ा बदलने के लिये ले लो। मैं हीटर जलाकर चाय बनाती हूँ। फिर जो कहना है दिल खोलकर कहना।"

रजनी ने हाथ पकड़कर राजेश को चारपाई पर बैठने के लिए विवश किया, और राजेश अपनी हठ पर दृढ़ रहा। वह बोला—

"मैं तुम्हें अब कोई भी कष्ट देना नहीं चाहता।"

"यह कष्ट नहीं केवल आतिथ्य सत्कार है।"

"ऐसे अतिथि सत्कार करने वालों का दिल्ली में अभाव नहीं है।"

"और राधा भी उन्हीं में से एक है, यह भी तो कहो।"

"जिस राधा पर तुम व्यंग करना चाहती हो, वह तुम से कई दृष्टि से महान है रजनी। जानती हो, वह अपने माता-पिता का वृद्धावस्था में किस प्रकार निर्वाह कर रही है ?"

"दूसरी ओर आप भी माता-पिता के आज्ञाकारी सेवक हो। यही है न आपके ओर उसके विचारों का सामंजस्य। खूब गुजरेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।"

रजनी ने सारा विष वमन कर दिया। प्रतिवाद में राजेश ने भी कोई कसर उठा न रखी। वह बोला—

"देखो रजनी। तुम मिल मालिक की पत्नी नहीं, बल्कि मिल मैनेजर की गुप्त प्रेयसी हो। अधिक गर्व न करो।"

सत्य में धैर्य होता है, रजनी इस कथन से विचलित न हुई। वह

जानती है—भ्रम का निवारण साधारण कार्य नहीं है। वह बोली—

"भावी जीवन में कहने के लिये कुछ शेष न छोड़ना राजेश।"

"भविष्य में जब कहने वाला ही न होगा, तो फिर कहेगा ही कौन।"

इस कथन को सुनकर रजनी सहम गई। उसने चाय प्याले में डाल राजेश के हाथ की ओर बढ़ाते हुए कहा—

"शंका जन्य क्रोध यदि आपको कायरता सूचक आचरण करने के लिये विवश कर सकता है तो यह मेरा दुर्भाग्य है। लो चाय पियो, और शान्ति से कपड़े बदल लो।"

"कोठी में विश्राम और कार में भ्रमण करने जा रही हो, और कहती हो मेरा दुर्भाग्य है।"

"मैं क्या करने जा रही हूँ, यह समय ही बतायेगा।"

रजनी के विवश करने पर भी राजेश ने चाय की प्याली को हाथ नहीं लगाया। वह वहाँ से चल पड़ा रजनी ने उसी समय उसका हाथ पकड़ लिया। राजेश ने जैसे ही झटका मारकर हाथ छुड़ाया। रजनी के दूसरे हाथ से चाय की प्याली व प्लेट नीचे गिर गई। रजनी के पाँव पर चाय गिरने से उसको असीम जलन तो हुई परन्तु इस ओर उसने इस समय ध्यान ही नहीं दिया। वह अधीरता भरे स्वर में बोली—

"न जाओ राजेश। इतना तो मान लो।"

"जब तुमने मुझे हृदय से ही निकाल दिया है तो तुम्हारे द्वार से भी मुझे शीघ्र ही निकल जाना चाहिए। कुछ भी करने से पूर्व तुम्हें चेता देना मेरा धर्म था। मैंने उसका पालन कर दिया।"

"क्या मैं पूछ सकती हूँ, आप क्या करने जा रहे हैं।"

"इसको तुम्हें भविष्य बतायेगा।"

इस समय रजनी प्रयत्न करके भी आँसुओं को न रोक पाई। डबडबाई आँखों और भर्राई हुई वाणी में वह बोली—

"क्या मेरी छोटी बहन को भी मुझे नहीं दिखायेंगे?"

"देखो रजनी। अब केवल दूर से देखती रहो। प्रेम पहिये की जड़ों को अब दीमक चाट गई है। अनुराग के तन्तु को अब घृणा की कतरनी ने काट दिया है। इसलिए अब मैं जा रहा हूँ।"

राजेश फिर चल पड़ा। रजनी डबडबाई आँखों से उसे देखती ही रह गई। उसको लगा—जैसे अतीत का चन्दन अपने सौरभ को खोकर आया, और नागों की फूत्कार से मुझे अचेत कर छोड़ गया। रजनी ने द्वार पर खड़े हुए राजेश को उस समय तक देखा जब तक वह दृष्टि से ओझल न हो गया।

और फिर वह द्वार बन्द कर सिसकियाँ भरने लगी।

१७

राधा कई दिन से रजनी से नहीं मिली। उसको विश्वास हो गया कि धर्मार्थी जी की दृष्टि से रजनी ने ही मुझे गिराया है। धर्मार्थी जी से वह प्यार नहीं करती, फिर भी मिल के सर्वोपरि अधिकारी हैं, उनसे व्यवहार में कटुता नहीं आनी चाहिए। राधा ने एक दो बार रजनी पर व्यंग भी किया। इसीलिये रजनी ने भी अब उससे मिलना-जुलना छोड़ दिया। उसको समय भी नहीं मिलता। मिल के क्वार्टरों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान में ही उसका सारा समय बीत जाता है। मजदूरों स्त्री-बच्चों की स्वच्छता पर वह विशेष ध्यान देती है। स्त्रियों के आपसी झगड़ों के बीच में भी पड़ जाती है। यथा समय मजदूरों की कठिनाइयों पर भी विचार करती है। उसका अब क्वार्टरों में समुचित आदर होने लगा है। जहाँ जाती है सब उसके लिए आँखें बिछा देते हैं।

प्रातः काल जब रजनी क्वार्टरों में भ्रमण के लिये तैयार हुई, उसके पास चार मजदूर आ गये। बात यह हुई, कुछ मजदूरों को उस दिन के झगड़े में पुलिस ने पकड़ लिया था। कुछ को चोटें आईं। जो पकड़े गये उनको कुछ यातनायें देकर छोड़ दिया गया, उन्होंने छूटते ही, पुनः संगठन को सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये। उन्हीं प्रयत्नों के अन्तर्गत यह भी निश्चय किया, कि मजदूरों की पढ़ाई का कोई प्रबन्ध होना चाहिए। उसी विषय में मजदूरों के चार प्रतिनिधि इस समय रजनी से सम्मति लेने आये हैं। इन्हीं में एक सूका भी है। चारों ने हाथ जोड़कर रजनी को प्रणाम किया। प्रणाम का उत्तर देकर रजनी बोली—

"आओ भाई। कहो कैसे आये हो?"

सूका ने टूटी-फूटी भाषा में अपने उद्देश्य को प्रस्तुत किया—

"देखो बहिन जी? हम चाहते हैं, हमारे लिए कोई पढ़ाई का इन्तजाम हो जाय। नाच, गाने और नाटक हमारे लिए बेकार हैं।

"यह तो बड़ी अच्छी बात है इसके लिए तो आप जब चाहें मैं आप लोगो के साथ चल सकती हूँ।"

"तब तो बहुत अच्छा हो बहिन जी।" शब्द सूका के थे।

"आप लोग चाय पियेंगे क्या?"

"नहीं बहन जी! हम चाय पीते ही नहीं।" चारों बोले।

"तो फिर मेरे साथ चलो। मैं धर्मार्थी जी से मिला देती हूँ।"

"जैसा आप ठीक समझें। चलिये।" सूका बोला।

रजनी तैयार तो थी ही। उनको साथ ले चल पड़ी। धर्मार्थी जी उस समय कार्यालय में उपस्थित थे। चपरासी से पूछ वह सीधी अन्दर चली गई। चारों मजदूर द्वार पर ही खड़े रहे।

रजनी प्रणाम कर कुर्सी पर हाथ टिका कर खड़ी हो गई। धर्मार्थी जी स्वर में मिठास भरकर बोले—

... कहो रजनी? कैसे कष्ट किया इस समय आने का?

"मजदूरों की ओर से एक प्रार्थना लेकर आई हूँ। यदि अवसर हो

तो निवेदन करूँ।"

"मजदूरों को भी साथ लाना चाहिए था आपको।"

"साथ ही लाई हूँ। चार मजदूर बाहर खड़े हैं।"

"तो फिर उनको भी अन्दर बुला लो।"

रजनी बाहर आई और चारों को अन्दर ले गई। चारों प्रणाम कर हाथों को बाँध शान्त खड़े हो गये। धर्मार्थी जी बोले—

"कहो भाइयो! क्या चाहते हो?"

चारों सिर झुकाकर शान्त खड़े रहे। वह एक शब्द भी न बोल पाये। उनको मौन देख रजनी ने उनकी माँग प्रस्तुत की।

"यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैं तो चाहता हूँ, मिल का प्रत्येक कर्मचारी ही शिक्षित हो। दो चार रोज में कोई अध्यापक रख देंगे वह इनको शाम और सवेरे कुछ समय पढ़ा दिया करेगा।"

"अध्यापक की नियुक्ति तो आप ही करेंगे।" रजनी बोली।

"यदि आपकी दृष्टि में कोई अच्छा अध्यापक हो तो बता देना।"

"क्या इसके लिए कोई शुल्क भी होगा?" रजनी ने समाधान किया.

"मैं समझता हूँ, दो रुपये प्रति मजदूर पर्याप्त होगा।"

"मेरे विचार से मजदूर दे नहीं पायेंगे।"

"अरे यदि निःशुल्क कर दिया जाये तो ये पढ़ ही नहीं पायेंगे। कुछ न कुछ तो होना ही चाहिए। शेप व्यवस्था हम कर देगें।"

रजनी ने मन में सोचा—यदि प्रातः और संध्या को सौ मजदूर हो गये, तो इस प्रकार दो सौ रुपये हो जायेंगे। डेढ सौ रुपये में जितने चाहें, अध्यापक मिल सकते हैं। फिर ये सज्जन किस प्रकार की व्यवस्था करेंगे। केवल स्थान का प्रश्न ही शेष रह जाता है। कुछ विचार कर वह बोली—

"मेरे विचार से शिक्षा शुल्क एक रुपया पर्याप्त है।"

"चलो फिर जैसी आपकी इच्छा। आप कोई सौ रुपए मासिक तक का अध्यापक खोज लें।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद।" कहती हुई रजनी मजदूरों सहित चल पड़ी।"

"अरे! आप भी चल पड़ीं। आपसे तो कुछ बातें करनी हैं, इन भाइयों को जाने दो। इनकी माँग तो अब पूरी हो गई।"

कर्मचारी चले गए और विवश रजनी को रुकना पड़ा वह बोली—

"कहिए क्या सेवा है मेरे योग्य?"

"हमें तो आज पता चला है कि आपके पास हृदय भी है।"

"मुझे आप अभी तक न समझे हैं, और न कभी समझ पायेंगे।"

"तो क्या आप रहस्यवाद की साक्षात् प्रतिमा हैं?"

"आप मेरे विषय में कुछ भी निश्चय करने में स्वतन्त्र हैं।"

"क्या सत्य कह रही हो रजनी?"

"यह भी आप स्वयँ ही निश्चय कर लें।"

"परन्तु मेरा निश्चय तो आपका समर्थन चाहता है।"

"क्या आपने कभी सोचा है कि मेरा भी कोई निश्चय हो सकता है।"

"मुझे यही तो दुःख है रजनी! न आप अपना निश्चय बताती हैं, और न ही मेरे निश्चय का समर्थन करती हैं।"

"असमर्थ की प्रार्थना पर पहले विचार होना चाहिए श्रीमान् जी।"

"मेरा तो प्रथम निश्चय ही यह है कि असमर्थ को समर्थ बना दूं।"

"प्यासे को पानी चाहिए, भोजन नहीं।"

"तो फिर पहले तुम ही बताओ, क्या चाहती हो?"

"कहीं ऐसा न हो, मेरी चाह, केवल आह बनकर ही रह जाये।"

"वचनबद्ध न करो रजनी! कुछ मुँह से कहो तो।"

इस समय धमार्थी जी कुर्सी से खड़े हो गए। वह रजनी के निकट आकर खड़े हो, उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। पीठ से उनका हाथ रजनी के सिर पर चला गया। दूसरे हाथ को उन्होंने रजनी के कंठ में डालकर उसके मुँह को ऊपर उठाया। कुर्सी पर बैठी रजनी के मुख को

ऊपर उठते ही धर्मार्थी जी ने उसकी आँखों में आँखें डाल दी। रजनी ने आँखें बन्द कर ली। वह धीमे स्वर में बोली—

"मैं चाहती हूँ मेरे बड़े भाई का स्नेह भरा यह हाथ सदैव ही मेरे सिर पर रहे। और मैं सदैव उनके दीर्घायु होने की कामना करती रहूँ।"

"यह तुम क्या कह रही हो रजनी ?" धर्मार्थी जी कुर्सी पर बैठ गये।"

"आपने अवसर दिया, तो मैंने माँग प्रस्तुत कर दी।"

"तुमने तो हमारे अरमानों की ही होली बना दी है सुन्दरी।"

"जो स्वयँ जल रहा है, उससे जल की आशा ही व्यर्थ है।"

"देखो रजनी ! मुझे तुमसे यह आशा न थी। मेरी भावना को अब किसी ओर नहीं मोड़ा जा सकता। इसीलिए उत्तम है, तुम यहाँ से दूर अम्बाले विधवा आश्रम में चली जाओ। वह आश्रम हमारे सहयोग से चलता है। तुम उसकी देखभाल करना। इसके लिए तुम्हें वहाँ भी यही वेतन मिलता रहेगा। निकटता जब विकट बन जाये, तो उस का उपचार ही दूरी है। एक दो दिन में जाने का प्रबन्ध कर लो।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" कहती हुई रजनी खड़ी हो गई।

धर्मार्थी जी ने इस बार उसे नहीं रोका। वहाँ से वह सीधी सूका के क्वार्टर पर गई। वहाँ पर कुछ मजदूर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह उनसे जाते ही बोली—

"अब आप लोग शीघ्र पढ़ाई आरम्भ कर दें।"

"यह तो धर्मार्थी जी ही जाने बहन जी।" सूका बोला।

"अपने कार्य को आप ही करना सीखो भाई। अपनी सहायता जो आप नहीं करते, उनकी दुनियाँ में कोई सहायता नहीं करता।"

"तो फिर आप ही बताएँ, हम पढ़ाने वाला कहाँ से लायें ?"

'शाम को सात बजे आप लोग रोहतक रोड चले जाना। वहाँ पर राधा बहन जी रहती हैं। उनके द्वारा आप एक अध्यापक से मिलना। उनका नाम राजेश है बहुत भले आदमी हैं वे।"

रजनी ने पता लिखकर दे दिया। -सूका ने कागज जेब में रख कर कहा—"आप भी साथ चलतीं तो अच्छा होता।"

"ठीक है भाई। फिर भी कुछ ऐसी बात है जिसके कारण मैं जा नहीं सकती। यहाँ आप लोगों को ही जाना होगा।"

"जैसी आपकी इच्छा। हम जरूर जायेंगे।"

रजनी ने श्रमिकों की आकृति को पढ़ा और वह सोचने लगी—

निर्धनता कितना बड़ा अभिशाप है मानव जीवन के लिए। सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निगलते इसे देर नहीं लगती। इसके साथ ही यदि मानव अशिक्षित भी हो तो समझ लो मरने में दो लात और लग गई। यही है इन श्रमिकों के जीवन की यथार्थता। परोपकार के हवन में सर्वस्व की आहुति देने वाले यह भोले मजदूर जैसे अन्धे हैं। हाथ पकड़े बिना चल ही नहीं सकते। मार्ग का इन्हें पता नहीं। पाँवों में बल नहीं। फिर भला कैसे चलें?

कुछ देर विचार मग्न सी रह कर रजनी ने उनको जाने का आदेश दिया और फिर वह वहाँ से चली आई। क्वार्टर पर पहुँच रजनी ने द्वार बन्द कर लिए। वह फिर सोचने लगी—

"मैं समझ नहीं पाती, आखिर मुझे बनाने वाले ने मुझे क्यों बनाया है? क्या मेरा जन्म इधर-उधर भटकने के लिए ही हुआ है? मैंने विषम पथ चुना, कुछ भी न पाया। कुछ निश्चयों पर दृढ़ रह आगे बढ़ी अशान्ति मिली और मिल रही है। फिर भला मैं क्यों जीवित हूँ। व्यर्थ में पृथ्वी के भार को बढ़ा रही हूँ। विधाता मुझे बुलाता क्यों नहीं? सबको खोकर एक को पाया और अब वह भी बन गया पराया। क्या कहूँ मैं राजेश के लिए? चंचल भ्रमर कहूँ या कस्तूरी वाला वह मृग जिसे अपना भी ज्ञान नहीं है। भ्रमर मैं कभी नहीं कह सकती। मेरी आत्मा उन्हें अभी तक भी अपने से दूर नहीं कर पाई है।"

रजनी से न जाने किस अज्ञात शक्ति ने कहा—"परीक्षा की इस घड़ी में अधीर न हो रजनी! जो तेरा है, तेरे पास एक दिन आयेगा।

वह क्षमा भी माँगेगा। उस समय के उल्लास पर आज की संवेदना को न्योछावर कर दो रजनी।"

रजनी ने अम्बाले जाने का अन्तिम निश्चय कर लिया। राजेश ने उस दिन कहा था—"दूर से देखती रहो।"

अब मैं उन्हें दिखा दूँगी कि दूरी वास्तव में क्या है? सत्य और असत्य के निर्णय के लिए कभी-कभी अपनी प्रिय वस्तु से दूर भी होना चाहिए। देखती हूँ, दूर जाकर उनकी स्मृतियाँ मुझे कितनी व्याकुल बनाती है।

बिखरे हुए मनोबल को संचित कर अन्त में रजनी ने यही निश्चय किया—मैं जाऊँगी और साहस से जिऊँगी।

और फिर वह खाना बनाने में लग गई।

१८

रविवार होने से आज राधा घर पर ही है। उसके माता-पिता दैनिक कार्यों से निवृत हो बाजार चले गये हैं। सवेरे के दस बजे होंगे। समय बिताने के लिए राधा पत्र लिखने बैठ गई। देश और विदेश में उसके बहुत से पत्र मित्र हैं। अवकाश के समय उनको पत्र लिखना राधा के मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है। जब वह पत्र लिख रही थी अकस्मात राजेश वहाँ आ गया। राधा ने सदैव के समान खड़ी हो कर प्रणाम किया और फिर चाय बनाने लग गई। राजेश बरामदे में कुर्सी पर बैठ गया। वह बोला—

"कहाँ गये हैं पिताजी और माता जी।"

"आज संडे है न। शॉपिंग के लिए बाजार गये हैं।"

"और तुम यहाँ अकेली क्या कर रही थीं ?"

"किसी के आगमन की प्रतीक्षा। सो वह आ गये।"

"और यह पत्र किसको लिख रही थीं ?"

"वहीं आकर बताऊँगी। चाय तो बना लाऊँ।"

चाय तैयार कर राधा रसोई से बाहर आई और प्याली में डाल कर राजेश के सम्मुख पड़ी छोटी सी टेबिल पर रख दी। वह बोली —

"लो अब गर्म चाय पियो और फिर कुछ प्रश्न करो। मैं उत्तर दूँगी।"

"चाय की तो कोई इच्छा ही नहीं है अब।"

"इच्छा आपकी सब ही जीवित रहनी चाहिएँ।"

दूसरी कुर्सी टेबिल के सम्मुख डाल राधा सामने बैठ कर बोली—

"लो मैं पिलाऊँ आपको अपने हाथ से।"

"आज के पिलाने वाले ही कल के रूलाने वाले बनते हैं राधा।"

"आप प्रत्येक स्त्री को एक ही कैटेगरी में नहीं रख सकते।"

"ठीक है राधा! फिर भी मेरे विचार से नारी पहले नारी है और पीछे कुछ और। महानता के अन्तिम सोपान पर खड़ी हुई नारी का भी पाँव कब फिसल जाय, कोई नहीं जानता।"

"यह आपका निजी अनुभव है।"

"निजी अनुभव ही तो सबसे बड़ा सत्य है राधा।"

यदि आप अवसर दें तो मैं आपके अनुभव को असत्य सिद्ध करके दिखा सकती हूँ।"

"अहो भाग्य! किन्तु विश्वास नहीं होता।"

"दूध का जला छाछ को भी फूँक लगाता है यही आप कर रहे हैं।"

राजेश ने मन ही मन सोचा— दूध और छाछ राधा ने कितना सत्य कहा है। सचमुच रजनी दूध है तो राधा छाछ। रंग एक है परन्तु गुण पृथक्-पृथक्। फिर भी जहाँ दूध नहीं, वहाँ छाछ ही सही। पेय तो दोनों ही हैं। छाछ माँगने पर भी मिल जाती है। दूध मिलना असम्भव है। कुछ देर विचार मग्न रहकर बोला—

"क्या आप विवाह नहीं करेंगी ?"

"तो क्या आप यही सोच रहे थे। मैंने तो सोचा आप रजनी को खोजने चले गये हैं। विवाह करने का तो अब प्रश्न ही समाप्त हो गया है।"

"विवाह न करने का निश्चय क्यों किया है आपने ?"

"यह भी कोई पूछने की बात है। स्वावलम्बन की प्राप्ति पर विवाह की क्या आवश्यकता है राजेश ! व्यर्थ में ही देश की जनसंख्या को बढ़ा कर नेताओं के लिये सिरदर्द बनाना मैं नहीं चाहती।"

"और भी कोई लाभ बताओ, विवाह न करने का।"

"आप मुझ से अधिक जानते हैं राजेश। नारी का सौन्दर्य स्थिर रहता है। कार्यक्षेत्र में कोई बाधा नही पड़ती। दहेज की प्रथा का भी इससे सुधार होता है। और इन सब बातों से बड़ी बात है नारी में स्वावलम्बन की जागृति।"

"अब यह बताओ। अविवाहित युवती प्रकृति की पुकार का कैसे दमन कर सकती है। यौवन तो आखिर यौवन ही है। महान से महान ऋषियों के जिस भावना ने पाँव उखाड़ दिये, उसको चलचित्रों की इस दुनियाँ में किस प्रकार दबाया जा सकता है ?"

"आप तो ऐसे पूछ रहे हैं जैसे मैं इसी विषय की पंडित हूँ।"

"देखो राधा ! हमें किसी भी निर्णय के दोनों पक्षों पर ही विचार करना चाहिये। अविवाहित रहकर संयम भंग कर जहाँ युवती या युवक गुप्त व्यभिचार को बढ़ावा दें, उससे अच्छा है विवाहित जीवन। विवाह के पश्चात् मनुष्य कुछ बन्धन अनुभव करता है।"

"अब यह बताओ तुमने यह पत्र मित्र क्यों बनायें हैं ?"

"बस यूँ ही। खाली समय बिताने के लिये। मेरा कोई नहीं। मुझे यह अभाव जब बहुत व्याकुल बनाता है तो पत्र लिखकर यूँ ही कुछ शान्ति सी पा लेती हूँ। यदि वास्तव में कोई हो तो पत्र लिखने, या मित्र बनाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।"

"किसी को पाने के लिये कभी-कभी स्वयं को खोना भी पड़ता है जानती हो राधा। अपने पत्रों से नहीं, व्यवहार और बलिदान से बनाये जाते हैं। ये मित्र तो मदिरा की एक प्याली के समान है जो कुछ देर के लिये ही आदमी को हवा को घोड़े पर चढ़ा सकते हैं।"

राधा कुछ कहना ही चाहती थी कि अकस्मात् वहाँ चार मिल कर्मचारी आ गये। उनमें सूका भी था। संध्या को वह आ न सके थे। सूका की ड्यूटी थी। इसीलिए वह अब आये। राधा को लगा जैसे रंग में भंग हो गया है। राजेश उन्हें देखकर बोला—

"आओ भाई सूका। क्या समाचार है? तुम्हें हमारा यहाँ पता किसने दिया?"

"हम तो कुछ और बात लेकर आए थे यहाँ। अच्छा हुआ आपके भी दर्शन हो गए।" सूका ने श्रद्धा भरे स्वर में उत्तर दिया।

चारों फिर चारपाई डालकर उस पर बैठ गए।

"बताओ फिर क्या बात लेकर आए हैं आप लोग?"

सूका ने जेब से बीड़ी का बंडल और माचिस साथी को निकालकर दी, और फिर राजेश को सारी कहानी सुना दी। रजनी की इस अपनत्त्व भावना को पाकर राजेश और राधा दोनों ही विचार मग्न हो गए। हाँ विचार प्रवाह दोनों का भिन्न था। राजेश रजनी के उपकार से जैसे दब रहा हो और राधा के मन में जैसे ईर्ष्या की चिंगारी भड़क उठी हो। रजनी जैसे दूर से भी उसके लक्ष्य की बाधक बन गई हो। राजेश उठा और चार गिलास लहस्सी बनवा लाया। बहुत हठ करने पर उन्होंने लहस्सी को पिया। उसी समय राधा बोली —

"क्या ये सब आपके पूर्व परिचित हैं?"

"हमारे गाँव के ही तो रहने वाले हैं।"

राजेश फिर सूका से बोला—

"अच्छा भाई मैं शाम को मिल आऊँगा।"

चारों फिर प्रणाम कर प्रसन्न चित्त वहाँ से चल दिए। उनके जाते

ही राधा ने बात-चीत की शृंखला जोड़ी—

"बड़ी शुभ सूचना है यह तो। लगता है आज का दिन आपकी सर्व सिद्धि का योग लेकर आया है।"

"बात तो ठीक है राधा। फिर भी विचारणीय विषय यह है कि इस समय मुझे रजनी के उपकार का आभारी होना पड़ रहा है।"

"छोड़ो भी इन बातों को। मुझे तो लगता है आप भी रजनी के समान ही जीवन के मोड़ पर आ गये हैं।"

"मोड़ पर ही तो सम्भलने की आवश्यकता है राधा।"

"देखो राजेश। मेरे विचार से तो हमें प्रथम प्रयास अपनी आने वाली, परिस्थितियों पर विजयी होने का करना चाहिए। और जहाँ यह विजय सम्भव न हो, वहाँ हमें परिस्थितियों के अनुकूल ढल जाना चाहिए। इसीलिए आप सस्ती भावुकता को छोड़ कर इस समय इस अवसर को हाथ से न जाने दो। धीरे-धीरे कोई और स्थान खोज लिया जायेगा। अभी आप मेरे पास रहें, और बहन जी को भी ले आयें। मैं उन्हें बिलकुल मोडर्न बना दूँगी।"

"मोडर्न से तुम्हारा क्या तात्पर्य है राधा?"

"यही कि आप के विचारों के अनुसार ढाल दूँगी।"

"जो ढलकर भी न ढल सकी, तो बताओ अब किससे क्या आशा करूँ। तुम देख रही हो, मैं इस समय संगम पर खड़ा हूँ, और फिर भी प्यासा हूँ।"

राधा समझ गई—अभी गाड़ी लाइन पर नहीं चढ़ी है। वह उठी, और हीटर जलाकर ठंडी चाय को गर्म करने लग गई। राजेश ने उसके मुख को पढ़ लिया। वह बोला—

"देखो राधा! प्यार के पथ में प्रथम हार पाकर मनुष्य फिर प्यार नहीं, केवल व्यवहार कर सकता है। अच्छा नहीं किया रजनी ने।"

"ताली दोनों हाथों से बजती है राजेश। लो चाय पियो।"

चाय की प्याली को राधा के हाथ से लेकर राजेश ने चाय की

चुस्की ली और अपने अन्तः करण में झाँक कर देखा। उसे लगा—जैसे सचमुच ही उसने रजनी के साथ अच्छा नहीं किया। वह फिर विषय को बदल कर बोला—

"तो क्या तुम भी मुझ से दूर रहना चाहती हो ?"

"यह आपने कैसे जाना ? क्या आप अन्तर्यामी हैं।"

"इस कार्य को अपनाते हुए रहने की भी तो समस्या सामने आयेगी।"

"अभी आप यहाँ रहें। फिर हो सकता है मिल में क्वार्टर मिल जाये।"

"मिल में तो क्वार्टर लड़कियों को ही मिल सकते है।"

राधा इस व्यंग मिश्रित हास्य को समझ गई। वह बोली—

"लड़की तो मैं भी हूँ, और मिल में ही रहती हूँ। मुझे तो आज तक क्वार्टर नहीं मिल पाया।"

"क्वार्टर लेने के लिए रजनी की शिष्या बन जाओ।"

"जब आप अपनी शिष्या नहीं बना सकते, तो फिर और किसी से क्या आशा करूँ। रजनी तो मेरी परछाईं से कोसों दूर भागती है। शिष्या तो क्या बनायेगी।"

"मुझे लगता है, रजनी कुछ मूर्ख है।"

"वह मूर्ख नहीं है राजेश। सत्य यह है कि वह दूसरों को मूर्ख बनाने के लिए मूर्खता का प्रदर्शन करती है।"

"किसी सीमा तक तुम्हारा कथन भी सत्य है राधा। उसने मुझे इतने दिन मूर्ख बनाया और मैं जान भी न सका।"

"और अब मैं भी आपको वैसा ही मूर्ख बनाना चाहती हूँ।"

"बनाओ राधा, तुम भी बनाओ। एक बात का ध्यान रखना। मूर्ख बनाओ तो वैसा ही बनाना। सचमुच मुझे उस समय की मूर्खता भुलाने पर भी नहीं भूलती। जान पड़ता है आजकल गंगा उलटी बहने लगी है। किसी काल में पुरुष नारी को मूर्ख बनाया करते थे। और

आजकल नारियाँ पुरुषों को एक पल में ही मूर्ख बना लेती हैं।"

राधा सुन्दर है ही। इस समय उसके बाल खुले हुए थे। इस कारण उसकी सुन्दरता को चार चाँद लग गये थे। राजेश को छेड़ सूझी। उसने सीधे हाथ की एक ऊंगली से राधा के कपोल को छूते हुए बिखरे बालों को एक ओर करते हुए कहा—

"इस नाग पाश को तो संभाल लो राधा।"

भाव विभोर सी हो राधा धीरे से बोली—

"कितना अच्छा हो कि··· ···"

"रुक क्यों गई राधा बात पूरी कहो।"

"बस राजेश। मैं यही चाहती हूँ, किसी के हृदय में स्थान पाकर उसे अपना कह सकूँ।"

"कितना अच्छा होता, यदि मैं अविवाहित होता रजनी।"

"अभी आपके मुख से रजनी शब्द नहीं उतर पाया है।"

"ओह ! मैं जाने कहाँ खो गया था ?"

"सवेरे का भूला शाम को घर आने पर भूला नहीं होता राजेश।"

"एक बात बताओगी राधा।"

"एक नहीं दो पूछिये।"

"जहाँ तुम कार्य करती हो, वहाँ कितने पुरुष कार्य करते हैं ?"

"आप इस प्रकार की शंकाओं में न पड़ें। जबान को देखिये, बत्तीस दाँतों से भी अपनी सुरक्षा कर लेती है।"

"देखो राधा ! नारी के दुर्बल मन की दुनियाँ में ऐसी ही हलचल मची रहती है जो तूफान के समय सागर में पाई जाती है। मैं चाहता हूँ भविष्य में तुम कोई ऐसी दुर्बलता न दिखाना जिससे मैं गति खोकर दृष्टि से भी हाथ धो बैठूँ। याद रखो फूल अपनी डाली पर ही हँसता है।"

"दुख तो यही है कि मैं हृदय खोलकर आपके सम्मुख नहीं रख सकती। अच्छा है आप विश्वास कर लें। मेरे पास शब्द भी नहीं हैं जो हृदय को प्रकट कर सकूँ।"

"मुझे शब्द नहीं केवल भाव चाहिए।"

राधा की आँखों में आँसू छलक आये। वह बोली कुछ नहीं। राजेश को विश्वास हो गया। राधा सचमुच सच्चा हृदय रखती है। स्त्री के सबसे बड़े शस्त्र से घायल होकर राजेश बोला—

"यह तुम क्या कर रही हो राधा ?"

"कुछ नहीं ?" राधा ने आँसू पोंछ कर मुख पर मुस्कान को समेटते हुए उत्तर दिया। और फिर उसने राजेश के चरणों को छूकर हाथों को अपने गाल पर टिका दिया। राजेश गद्‌गद् हो गया। जैसे उसने राधा को सर्वस्व रूप में पा लिया हो। वह बोला—

"एक बात और कहनी है राधा।"

"कुछ भविष्य के लिए भी तो छोड़ दो।"

"नहीं ! वह इसी समय की है। अब तुम चटकीले वस्त्र पहनने बन्द कर दो। मुझे स्वाभाविक सौंदर्य से असीम प्यार है।"

"यह सब तो भविष्य में आप पर ही निर्भर है।"

"अच्छा अब यह बताओ आज का क्या कार्यक्रम है ?"

"अब विश्राम करो। हो सका तो शाम को कहीं भ्रमण के लिये चलेंगे।"

"अच्छा अब दो प्याली चाय बनाओ।"

राधा उठी और चाय बनाने लग गई। और राजेश भावी जीवन की सुखद कल्पनाओं में खो गया।

१९

रजनी को दिल्ली से आये आज दूसरा दिन है। अम्बाले आकर उसको एक नया जीवन सा प्राप्त हो गया है। विधवा आश्रम की एक दो को छोड़कर सब ही विधवायें उससे आयु में बड़ी हैं। वह अपने कमरे में सबसे मिल चुकी है। सारी विधवाओं को विश्वास हो गया है अब आश्रम में नई चेतना का सूत्रपात होगा। रजनी के स्वभाव की दूसरे दिन ही सारी विधवायें प्रशंसा करने लगी हैं।

सब कुछ तो ठीक हुआ परन्तु एक बात यहाँ आकर भयंकर रूप धारण कर गई है। रजनी के मन में एक शंका कई मास से चली आ रही थी। यहाँ आकर वह साकार सी होने लगी। उसको कल अम्बाले में आते ही उलटियाँ होने लगी थी। कल उसने समझा—यह यात्रा की थकान के कारण ऐसा हो रहा है। आज जब उसकी उलटियाँ बन्द न हुईं तो उसे लगा कहीं राजेश का पुत्रवती होने का आशीर्वाद तो पूर्ण होने नहीं जा रहा है। वह आज इसी विचार में डूबी कमरे से बाहर न गई। जो विधवा वहाँ आई उससे उदारता से मिली।

उस समय एक बजा होगा। रजनी अपने कमरे में चारपाई पर लेट रही थी। उसी समय एक विधवा युवती ने कमरे में प्रवेश की अनुमति माँगी। रजनी ने चारपाई पर बैठी होकर कहा—

"आओ बहन ! पूछनें की क्या बात है ?"

"कैसी तबियत है आपकी अब ?"

"ठीक है। कुछ मुँह का स्वाद बिगड़ा हुआ है।"

"यदि कष्ट कर सको तो एक प्रार्थना है।"

"बोलो बहन। क्या सेवा है मेरे योग्य ?"

"हमने सिलाई के कमरे में आपके एक साथ दर्शन करने का निश्चय किया है। यूँ तो आप बारी-बारी से सबसे मिल चुकी हैं। हम चाहती हैं सब एक साथ आप के दर्शन करें।"

"किस समय चलना है मुझे ?"

"इसी समय। सब आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"अच्छा चलो। मैं अभी चलती हूँ तुम्हारे साथ।"

"यदि आप न चल सकें तो उन सबको यहीं बुला लूँ।"

"नहीं ! मैं ही चल रही हूँ।"

रजनी साहस कर उठी और युवती के साथ चल दी। सिलाई कक्ष रजनी के कमरे से कुछ दूर था। वह थकी हुई सी जब वहाँ पहुँची तो सारी उपस्थित स्त्रियाँ उसे देखकर खड़ी हो गईं। रजनी बैठने से पहले ही बोली—

"आप सब मुझ से बड़ी हैं, इसीलिये आपको खड़ा नहीं होना चाहिए।"

सब बैठ गईं और उनके साथ ही रजनी भी दरी पर बैठ गई। जो युवती रजनी को बुलाकर लाई थी, उसने सबका संक्षेप में रजनी को परिचय दिया। और फिर वह विनम्र भाव में रजनी से बोली—

"अब हम बहन जी का भी परिचय चाहती हैं।"

"समझ लो मेरा परिचय आप सबसे भिन्न नहीं है।"

"इतना कहने से काम नहीं चलेगा बहन जी।"

"अधिक जान कर क्या करोगी मेरी बहनों। क्या आप सबके पास अपनी दुखदायी गाथा कम है।"

"अपनी कहने और दूसरे की सुनने से कुछ दुःख बट जाता है बहन जी। इसीलिये हमने यह प्रार्थना की है।"

रजनी से न रहा गया। वह भी जैसे कुछ हलका होना चाहती हो। कुछ भरे हुए से कंठ से वह बोली—

"आदरणीय बहनो ! मेरा जीवन आकाश की उस व्यापकता

का परिचायक है, जिसमें न जाने कितनी अनुभूति रूपी तारिकाओं का प्रत्येक क्षण विनाश और निर्माण होता रहता है। पूर्णिमा की एक मधुर रात्री को चाँद अपनी सम्पूर्ण मधुरिमा को लेकर आया और छिप गया। बस अब मेरा जीवनाकाश केवल अमावस्या के अन्धकार से घिरा हुआ है। इससे अधिक और मैं कुछ नहीं कहूँगी।"

रजनी ने उपस्थित स्त्रियों की आकृतियों को पढ़ा। उसे लगा— जैसे कोई भी कुछ नहीं समझ पाई। वह फिर सरल भाषा में विषय को बदल कर कहने लगी—

"देखो बहनो।' मैं भी तुम्हारी ही समान दुख की मारी हुई एक नारी हूँ। अन्तर इतना ही है कि मैंने आपसे कुछ शब्द ज्यादा सीख लिये हैं। इसीलिये मुझे डेढ़ सौ रूपये मिलने लगे हैं। मेरे विचार से तो प्रत्येक स्त्री को और विशेष कर विधवा स्त्री को अपने पैरों पर खड़ा होना जरूर चाहिए। जो विधवा ऐसा नहीं सोच पाती, वह इधर उधर ठोकर खाती फिरती रहती है। रजनी को बोलते हुए चक्कर सा आ गया। उसका जी मचलने लगा। वह फिर चुपचाप दरी पर लेट गई। विधवायें स्तम्भित रह गईं। सब रजनी के चारों ओर भेड़ों जैसा जमघट बनाकर बैठ गईं। उसी समय बुलाकर लाने वाली युवती ने सबको एक ओर हटाकर रजनी को सहारा देकर उठाया। रजनी को गोद में संभाल कर उसने एक स्त्री से कहा—

"एक गिलास शिकजी बनाकर लाओ।"

कुछ क्षण में शिकजी बनकर आई। रजनी पीते ही कुछ सचेत हो गई। युवती ने रजनी को वहाँ से सहारा देकर उठाया और एक और विधवा ने दूसरी ओर से पकड़ा। इस प्रकार वह दोनों रजनी को ही वही क्वार्टर पर धीरे-धीरे ले आईं। रजनी चुपचाप लेट गई। उसके लेटते युवती बोली—

"अब आपकी तबियत कैसी है?"

"अब मै बिल्कुल ठीक हूँ।"

"क्या एक बात पूछ सकती हूँ आपसे?"

"जरूर पूछो बहन ! जिज्ञासा को शान्त करना ही चाहिए।"

"वेशभूषा से तो आप विवाहित दिखाई देती ही हैं। फिर आपने अपने भाषण में अपने चाँद को अपने से दूर क्यों बताया है ?"

"यह जानकर तुम क्या करोगी मेरी बहन ?"

"कर हम क्या सकती हैं बहन जी। हम तो आप ही दूसरे के सहारे दिन बिताती हैं। फिर भी आदमी की दवा आदमी ही होता है। हो सकता है हम कुछ आपके मन को शान्ति दे सकें।"

रजनी जैसे उबल पड़ी हो। उसने फिर अपनी करूण कहानी के महत्वपूर्ण स्थलों का संक्षेप में दोनों विधवाओं को परिचय दे दिया। दोनों शान्त भाव से सुनती रहीं। रजनी भाव मग्न हो शान्त हो गई। युवा विधवा ने जैसे कुछ आप बीती सुनी हो। वह बोली—

"बड़ी ठोकरें खाई हैं आपने तो बहन जी।'

"हाँ बहन। छोटी-बड़ी ठोकरों को देने वाले पथ का नाम ही तो जीवन है।"

"अच्छा हुआ आपने बता दिया। आप न बताती तो हमें आज रात को नींद ही न आती।'

"नींद की बात छोड़ो बहन। दुनिया में एक से अधिक एक दुखिया पड़ा हुआ है। इस प्रकार किस-किस के लिये जागती रहोगी ?"

"बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

"कहो बहन ! बुरा मानकर मैं तुम्हारा क्या करूँगी ?"

"आदमी तो पत्थर होते हैं पत्थर। नारी ही उन्हें मोम बनाती है।"

"देखो बहन ! बात तुम्हारी भी ठीक है। फिर भी मैं इस बात को यूँ कहूँगी, कि पुरुष मोम होता है, और नारी वह तपन जो उसे पिघला देती है। तपन से मोम पिघलता है, पत्थर नहीं।"

"एक बात और पूछ सकती हूँ। क्या ?"

निःसंकोच पूछो बहन ! अब तुम से क्या छुपाना है।

"यह बताओ ! कहीं आपका पाँव तो भारी नहीं है ?"

"मैं समझी नहीं आपकी बात ।"

"मेरा मतलब है कहीं ऐसी वैसी तो बात नहीं है ।"

रजनी कुछ समझ गई। वह अपनी शंका की पुष्टि सी पाकर तुरंत ही विचार मग्न हो गई । कुछ संभलती हुई सी बोली—

"क्या मेरी दशा इस बात का परिचय दे रही है ।"

"हाँ बहन जी ! चिह्न कुछ ऐसे ही हैं ।"

"चलो बहन जो होगा देखा जाएगा । जो किया है उसका फल तो भरना ही होगा । मैंने अन्तिम विदाई के समय उनसे यही आशीर्वाद तो मांगा था । पूर्ण होना ही चाहिए ।"

"अब आप होने वाले बच्चे के पिता का तो कुछ परिचय दे दो ।"

"क्या दूँ उनका परिचय मेरी बहन । यही समझ लो, वह एक सुन्दर और स्वस्थ युवक हैं। माता-पिता के आज्ञाकारी हैं बड़े ही भावुक हैं सज्जनता उनकी सहेली है । इन सब गुणों के साथ ही, वह बिल्ली के पदचिह्नों को देखकर भी शंकित हो जाते हैं । उन्हें लगता है जैसे हाथी गुज़र गया हो ।"

"आपने मोर तो देखा ही होगा ।"

"मैं समझ गई मेरी बहन । तुम यही कहना चाहती हो न कि किसी भी प्राणी में सारे गुण नहीं होते । मोर बहुत सुन्दर है । किन्तु उसके पाँव उसे सदैव रूलाते रहते हैं ।"

"एक बात समझ में नहीं आती बहन जी ! यह सब होता क्यों है । चाँद में भी कलंक लगा हुआ है ।"

"यह सब इसीलिए होता है कि कहीं गुणवान गर्व न कर बैठे ।"

"बुरा न मानो तो एक बात कहूँ बहन जी ।"

"पूछा न करो कह दिया करो ।"

"जो पुरुष नारी पर शंका करता है, वही सच्चा प्रेमी है ।"

"यह आप क्या कह रही हो मेरी बहन ?"

"ठीक कह रही हूँ बहन जी । नारी पर संदेह करने वाला आदमी उसे केवल अपने ही हृदय का हार समझता है । जो स्त्री को खुली छूट दे देता है, वह आप भी स्वतंत्र सांड के समान इधर-उधर खेत खाता फिरता रहता है ।"

"तुम्हारी बात भी ठीक है मेरी भोली बहन । साथ ही वह भी ठीक है, जो पुरुष दो पालों पर पाँव टिकाये रहता है वह नारी को भी ऐसा ही समझता है ।"

दोनों की बातचीत को तीसरी विधवा बड़े ही ध्यान से सुन रही थी । वह कुछ पुराने विचारों की थी । उसे इन बातों की सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था । उसे रजनी से मन ही मन कुछ घृणा सी हो गई । उसे लगा यह अपने आप में खोई हुई लड़की हमारे लिए कुछ भी नहीं कर पायेगी । उसके कान दोनों की बातचीत से दर्द करने लगे और फिर वह उठकर चली गई । उसके जाते ही दोनों की बात-चीत फिर आरम्भ हो गई । युवती बोली—

"क्या नाम है उनका ?"

"राजेश !"

"नाम की तो जोड़ी मिलाई है बहन जी ।"

"जोड़ी तो मिल ही गई थी । दुर्भाग्य को क्या किया जाये ।"

"मुझे तो लगता है वे भ्रम में पड़ गये हैं वैसे निर्दोष हैं ।"

"मैं तो उन्हें दोषी होने पर भी दोष नहीं दूँगी ।"

"अच्छा अब आराम करें । हम खाना बनाती हैं । यह और बता दो, कि आप अब खायेंगी क्या ?"

"अभी और बैठो । खाना साढ़े पाँच बजे बनाना ।

"तो फिर एक बात और बता दो ।"

"अब मैं नहीं बताऊँगी ।"

"तो क्या आप नाराज हो गई हैं ?"

"नाराज नहीं हूँ मैं । अब मुझे आप अपनी आप बीती सुनायें ।"

"मैं कल सुनाऊँगी । आज तो आप की ही सुननी है ।

"मैंने तो जो सुनाना था सुना चुकी। अब आपसे एक बात कहनी है। वह यही कि आप विवाह कर लें।" अभी तो आप की आयु अधिक दिखाई नहीं देती।"

"विवाह क्या दीवारों से कर लें बहन जी। हमको अब कौन अपनायेगा। सब समझते हैं कि हमारा रस तो कोई चूस ही गया है अब गुठली को चूसने से क्या लाभ ?"

रजनी को लगा—युवती है समझदार। वह बोली—

"आप कुछ पढ़ी-लिखी भी तो होंगी ?"

खाक पढ़ा है हमने। आठवीं तक की पढ़ाई भी कोई पढ़ाई होती है। आजकल तो बी. ए. और एम. ए. पास लड़की बेकार फिरती हैं।

"ठीक है बहन ! फिर भी अनपढ़ों से तो अच्छी हो।"

"अच्छी क्या हूँ बहन जी। हाँ कभी अच्छी अवश्य थी।"

युवती के स्वर में आह स्पष्ट झलक रही थी उसको भावों में डूबी देखकर रजनी ने कहना आरम्भ किया—

"मुझे तो लगता है यह समाज ही मूर्खों का है। यह भी तो नहीं जानता कि भूखे को ही खाना खिलाना पुण्य है। यदि विधवाओं को सच्चे दिल से अपना कर मनुष्य उसका आदर करे तो सत्य मानों स्त्री अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकती है, दुःख तो यही है कि युवक इस बात को समझते ही नहीं।"

"चलो बहन जी ! कुछ कट गई और शेष भी रोते पीटते कट ही जायेगी।"

युवती फिर खड़ी होकर बोली—

"आपने यह नहीं बताया कि आप खायेंगी क्या ?"

"मूँग की दाल बना लेना।"

"क्या यह दाल राजेश को भी अच्छी लगती थी।"

युवती का भाव गम्भीरता से विनोद में बदल गया। वह फिर वहाँ से चली गई।

उसके जाते ही रजनी भी मुँह ढांप कर विचार मग्न हो गई।

२०

करोड़ीमल कपड़ा मिल में डेढ़ सौ रुपये मासिक मजदूरों को पढ़ाने के लिए राजेश की नियुक्ति हो गई है। वह गाँव से अपनी पत्नी राजेश्वरी को भी दिल्ली ले आया है। राधा ने अपने मकान के समीप ही एक छोटी सी कोठरी पच्चीस रुपये मासिक पर राजेश को दिला दी है। राजेश प्रातः और संध्या को केवल पाँच घण्टे पढ़ाता है। दिन में वह अधिकतर घर पर ही रहता है। यदि कोई मिल का काम हुआ तो वह दिन में भी कर देता है। महामन्दिर के निर्माण के कारण धर्मार्थी जी का कार्यभार बढ़ गया है। राजेश कुछ उनका भी हाथ बटाता है।

सवेरे के सात बजे होंगे। उस समय राजेश राधा के साथ अपने मकान पर चाय पी रहा था। राधा प्रायः चाय के समय वहाँ आ जाती है। राजेश्वरी चार फुट वर्गाकार वाली रसोई में सिमटी हुई खाना बना रही थी। उसी समय राधा ने धीरे से कहा––

''बहन जी को अभी चाय बनानी तो आई नहीं है।''

राजेश्वरी ने राधा के इस कथन को सुन लिया। वह जलभुन कर राख हो गई। प्रथम उसको बहन जी कहा, राधा को भाभी जी कहना था दूसरे उसको चाय बनाने में अयोग्य सिद्ध किया। राजेश्वरी उसे पी गई। बोली वह कुछ नहीं। जैसे उसने सुना ही न हो।

राजेश ने राधा के कथन का उत्तर दिया––

न अभी कुछ आया है और न ही कभी आयेगा। गाँवों में तो घास

खोदनी सिखाई जाती है। अभी एक खुर्पी हाथ में दे दो। दोपहर तक एक गट्ठर घास लेकर आ जायेगी।

"यदि आप सिखायें तो सीख सब जायेंगी।"

"बुड्ढे तोते कहाँ पढ़ते हैं राधा।"

"तो फिर आप चाय वहाँ पी लिया करें।"

"प्रश्न केवल चाय का ही नहीं है। जीवन की और भी तो बहुत सी आवश्यकतायें हैं जिनका सम्बन्ध नारी से है। उनका क्या करें?"

"जो संभव है उसके लिए तो सरदर्दी होनी ही नहीं चाहिए। कल से आप मेरे साथ घर पर चाय पिया करें।"

"अब तो पियो। कल की कल देखी जायेगी।"

"राधा ने दोनों चोटी कुछ सम्भाल कर वक्ष में उभार सा लाते हुए मुख पर एक हल्की सी मुस्कान को बिखेर कर कहा—

"जीवन तो प्रत्येक पल का एक मूल्य है राजेश! विशेष कर यौवन का प्रत्येक पल तो अमूल्य कहा जायेगा। फिर रो रो कर जीवन क्यों बितायें।"

"हँसी का सम्बन्ध मुख से नहीं, अन्तःकरण की शान्ति से है राधा।"

फिर राधा वहाँ से चली गई। राजेश भी विवाह में मिली हुई साइकिल पर सवार होकर सीधा मिल पहुँच गया। चालीस मजदूर आज उसकी कक्षा में उपस्थित थे। उनमें से अधिकतर मजदूरों को थोड़ा बहुत शब्द ज्ञान पहले से ही है। सब राजेश की बातों को ध्यान से सुनते रहे। राजेश मजदूरों की दयनीय दशा को देखकर पढ़ाते समय सोच रहा था—

विचित्र विडम्बना है जो सबका तन ढाँपते हैं वही आधे नंगे हैं। गेहूँ वाले किसान भी इसी प्रकार जौ, मटर को खाकर पेट भरते हैं। गेहूं वे नगर वालों के लिये भेज देते हैं।"

"राजेश फिर मन की बात को मुख में लाया। वह बोला—

"देखो भाइयो। कभी आपने सोचा है श्रम आप करें और फल दूसरे भोगें। वैसे परोपकारी होना मनुष्य के लिए बहुत अच्छा है। परन्तु ये धनवान तुम्हें परोपकारी नहीं मानते। वे तुम्हें मूर्ख समझते हैं, केवल मूर्ख! तुम्हें उनके स्वार्थ भरे अत्याचार के विरोध में एक मजबूत सा संगठन जरूर बनाना चाहिए।"

जब राजेश पढ़ा रहा था, दो मजदूर उठकर वहाँ से चल दिये। ये दोनों धर्मार्थी जी के आदमी थे। वे भेजे ही इसीलिए गए थे कि राजेश के विचार जान सकें। उन्होंने धर्मार्थी जी के पास जाकर कुछ नमक मिर्च अपनी ओर से लगाया और धर्मार्थी जी के कान भर दिये। धर्मार्थी जी ने तुरन्त एक चपरासी को राजेश को बुलाने को भेज दिया। ठीक ग्यारह बजे राजेश उनके पास पहुँचा। उसने जाते ही प्रणाम किया और फिर कुर्सी पर बैठ गया। धर्मार्जी जी बोले—

"कहिए आपकी कक्षायें कैसी चल रही हैं?"

"आपकी कृपा से ठीक ही चल रही हैं?"

"जमे रहो। यहाँ आपका भविष्य उज्जवल ही रहेगा।"

"यह सब भी आपकी कृपा दृष्टि पर ही है।"

"सम्पत्ति सागर के किनारे तो आ ही गये हैं आप! अब एक दिन अपनी कार्य कुशलता से अन्दर भी घुस ही जाओगे।"

"मैं तो इतने पर भी सन्तुष्ट हूँ श्रीमान जी।"

"सन्तोष जीवन की मृत्यु है बन्धु! इस प्रकार तो आप कोई उन्नति ही नहीं कर पायेंगे।"

"ठीक है आपकी बात! परन्तु मेरे विचार से आज के युग में कोई आदमी उस समय तक बढ़ ही नहीं सकता, जब तक उसका कोई हाथ न पकड़े। जिनको उठाने वाले हैं, वे अवश्य उठते हैं।"

"बात तुम्हारी भी ठीक है। इसके साथ ही यह भी ठीक है, जिस व्यक्ति में प्रतिभा है, वह अवश्य उठते हैं। मुझे देखो! एक अध्यापिका का ही तो बेटा हूँ। आज ईश्वर की कृपा से सम्पूर्ण वैभव सुख, शान्ति का अधिकारी मैं बन गया हूँ।"

"आपकी प्रतिभा के प्रकाश में हो सकता है, मुझे भी अपने जीवन की गति मिल जाये। आज तक तो अन्धकार ही देखा है मैंने।"

"कैसी बातें कर रहे हो बन्धु। इस आयु में तो आदमी आकाश के तारे तोड़ सकता है। आशावादी होकर बढ़ो जीवन में।"

"आपकी कृपा हुई तो ऐसा ही होगा।"

"एक बात कहूँ, यदि ध्यान दो तो।"

"आपकी बात पर ध्यान तो मेरा पहला धर्म है।"

'मैं चाहता हूँ, आप मजदूरों को पढ़ाने की अपेक्षा धर्म-कर्म की बातें अधिक बतायें। इन मजदूरों में हिंसात्मक वृत्ति अधिक होती है। नैतिक दृष्टि से भी ये बहुत दुर्बल होते हैं। इनका सुधार उसी समय हो सकता है, जब ये धर्म-कर्म का पालन करेंगे। पढ़कर इन्हें अब कौन सा किसी आफिस में कार्य करना है।"

राजेश समझ गया—धर्मार्थी जी क्या चाहते हैं। उनको प्रसन्न करने के लिए वह बोला—

"भविष्य में ऐसा ही होगा। आप निश्चिन्त रहें।"

"इसका मतलब यह नहीं है कि मैं मजदूरों का हित नहीं चाहता। आप देखते हैं, मैं मजदूरों को अपना भाई समझता हूँ।"

"यह तो मैं अपनी आँखों से ही देख चुका हूँ।"

"अभी और देखेंगे आप। मैं तो अपने में और इनमें कोई अन्तर ही नहीं समझता। वास्तव में अन्तर है भी कुछ नहीं। ये बेचारे शारीरिक श्रम करते हैं और हम बौद्धिक। हैं दोनों श्रमिक ही।"

राजेश ने मन में सोचा—अपने साधनों के नखों से हजारों का रक्त चूसने वाला यह पंचानन किस प्रकार स्वयँ को दुधारू गाय सिद्ध कर रहा है। इसकी दृष्टि में मैं केवल गाँव का एक मूर्ख युवक ही हूँ। धर्मार्थी जी को प्रसन्न करने के लिए राजेश बोला—

"फलों के भार से वृक्ष झुक ही जाता है श्रीमान् जी! आपकी दशा भी यही है न जाने कितनी भूखी आत्माओं की दुआयें आपके साथ हैं और अब मैं भी उनमें से ही एक हूँ।"

इस कथन को सुनकर धर्मार्थी जी बरसाती मेंढक के समान फूल गये। प्रसन्न हो उन्होंने चपरासी को चाय लाने का आदेश दे दिया। राजेश कुर्सी से खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही धर्मार्थी जी बोले—

"ठहरो बन्धु ? चाय पीकर जाना। कक्षा तो अब समाप्त हो ही गई होगी। फिर जल्दी क्या है ?"

राजेश बैठ गया। धर्मार्थी जी ने कहना आरम्भ किया—

"मैं चाहता हूँ, आप कुछ मेरा हाथ बटायें। मेरे पास कार्य भार बहुत अधिक है आप महामन्दिर के निर्माण की दौड़ धूप संभाल लें।"

"जो आज्ञा। मैं यथा योग्य कार्यभार को संभाल लूँगा।"

राजेश चाय पिये बिना ही फिर वहाँ से चल पड़ा। वह जब घर पहुंचा राजेश्वरी द्वार पर खड़ी थी। राजेश को देखते ही वह प्रसन्न हो, वह रसोई में खाना लेने चली गई। पहले हाथ धुलाये, और फिर थाली को रसोई से कमरे में ले आई। जब राजेश ने खाना आरम्भ किया, राजेश्वरी ने बातचीत आरम्भ कर दी—

"आज तो आपको बहुत देर हो गई। खाना भी ठंडा हो गया है।"

"पहले थोड़ा नमक ले आओ, पीछे बातें कर लेना।"

राजेश्वरी उठी, और हाथ में नमक ले आई। राजेश झल्ला गया—

राजेश्वरी दौड़कर गई और रसोई से कागज लेकर उस पर नमक रख लाई। नमक को राजेश के हाथों में थमाते हुए वह नम्र भाव से बोली—

"आप क्रोध न करें, इससे सिर में दर्द हो जायेगा आपके ?"

"क्रोध किया नहीं जाता, वह तो किसी कारण से आ ही जाता है देवी जी ! पढ़ी नहीं तो खाना भी बनाना नहीं सीखा।"

"आपकी कृपा होगी तो सब सीख जाऊँगी।"

"खाक सीखोगी तुम ! बिना पढ़े तो घास खोदनी ही आती है।"

"मेरे स्वामी जब गाँव में सबसे ज्यादा पढ़े हुए हैं तो फिर मुझे पढ़ने की क्या जरूरत है। मैं तो दासी हूँ तुम्हारी। सेवा करना मेरा धर्म है। इसमें मैं कभी कोई कमी नहीं करूँगी।"

"पहले बोलना तो सीख लो। बड़ों को तुम कहते हैं या आप?" राजेश्वरी फिर चुपचाप भयभीत सी हो सिर झुका कर खड़ी हो गई।

"यहाँ खड़ी क्या मेरे टुकड़े गिन रही हो। जाकर एक गिलास पानी ले आओ।"

राजश्वरी दौड़कर पानी ले आई। पानी को रख वह बोली—

"कुछ ही देर तो आप को देखने के लिए मिलती है। इसमें भी आप देखने नहीं देते। मैं चाहती हूँ मुझे कुछ देर तो आँख भर कर देखने दिया करो।"

"तो क्या घर में ही बैठ जाऊँ? यह दिल्ली है देवी जी दिल्ली। यहाँ तो आदमी मशीन की तरह दौड़ते हैं। इस पर भी गुजारा हो जाय इसमें संदेह है। यहाँ पर स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर कमायें तब कहीं पेट पाला जा सकता है।"

"तो फिर छोड़ दीजिए इस दिल्ली को। हम तो संतोष की रूखी सूखी खाकर गाँव में भी गुजारा कर लेंगे।"

"मुझे उपदेश देना मत सीखाओ। सीखने के लिये तो और बहुत कुछ है।"

इस कथन को सुन राजश्वरी की आँखों में आँसू आ गये। राजेश ने उसको देख लिया। वह फिर भावना का दमन कर बोला—

"नारी चरित्र को छोड़ो। यह थाली उठा लो।"

राजेश्वरी थाली को रसोई में रख कर एक टाट का टुकड़ा ले राजेश की चारपाई के पास आकर बैठ गई। वह बोली—

"लाइये आपका सिर दबा दूँ।"

"पहले झूठे बर्तन तो साफ कर लो। सिर पीछे ही दबाना।"

"मेरा पहला धर्म तो आपकी सेवा ही करना है।"

"और मैं समझता हूँ, तुम ही मेरा सिर दर्द हो।"

"आप ऐसा समझते हैं तो मुझे गाँव छोड़ दो।"

राजश्वरी की आँखें फिर डबडबा आईं। राजेश बोला—

"मैं क्या छोड़ दूँ। तुम अपने आप चली जाओ।"

आँसू पोंछ कर राजश्वरी बोली—

"लाइये फिर मैं आपके पाँव ही दबा दूँ। मुझे तो इतना ही अधिकार बहुत है। सिर दबाने के लिए आप चाहें तो दूसरा विवाह कर लें।"

"दिल्ली में तो तुमसे पाँव दबाने वाली दासियाँ भी चतुर होती हैं मूर्ख।"

"तो फिर मुझे अपनी दासी की दासी समझ कर ही अपने चरणों में स्थान दे दें। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

इस कथन से राजेश कुछ प्रभावित हो गया। वह बोला—

"कुछ सीखो। रोने से काम नहीं चलेगा।"

"आप जो सिखायेंगे सीखूंगी। कुछ दिन तो दीजिये।"

"जो लड़की सवेरे यहाँ चाय पी रही थी, उससे मिला करो। वह तुम्हें सब कुछ सिखा देगी।"

"आपको क्रोध न आये तो एक बात कहूँ?"

"कहो। क्या बात है?"

"मुझे यह लड़की कुछ मनचली सी लगती है।"

"यह तो बड़ी जल्दी जान लिया तुमने।"

"पढ़ी हुई तो नहीं हूँ, पर हूँ तो नारी ही। मैंने उसे पहचान लिया है।"

"और कल को तुम मुझे भी मनचला बताओगी।"

"यह दासी का धर्म ही नहीं है। आपकी प्रसन्नता के लिये तो मैं सब कुछ सहन कर लूँगी।"

"अच्छा, यह बताओ, जब हम इस लड़की के साथ चाय पीते हैं तो तुम्हें कैसा लगता है?"

"बहुत अच्छा लगता है मुझे।"

"उस समय तुम्हें उससे घृणा नहीं होती ?"

"उस समय मैं आपकी प्रसन्नता से प्रसन्न होती हूँ। मेरा तो उस लड़की पर ध्यान ही नहीं जाता।"

राजेश फिर चारपाई पर लेट गया। राजेश्वरी उसके बालों को सहलाने लगी। राजेश को नींद आ गई। वह जब उठा, पाँच बज चुके थे। राजेश्वरी, राजेश के जागते ही उठी और दूध लाकर चाय तैयार कर दी। जब तक राधा वहाँ आई दोनों चाय पी चुके थे।

आज राजेश का मन बहुत हल्का था।

२१

सेठ जी की प्रबल इच्छा है कि धर्मार्थी का विवाह कर दिया जाये। तीस वर्ष की आयु हो गई है कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण है। इस स्थिति में अविवाहित रहना खतरे से खाली नहीं है, सेठ जी जानते हैं—युवा व्यक्ति का अविवाहित होने की स्थिति में पाँव फिसलते देर नहीं लगती। यौवन की भावनायें कितनी भूल करा दे, यह तो ब्रह्मा भी नहीं जानते। जिस पद पर धर्मार्थी कार्य करते हैं, वहाँ तो केवल बुद्धि की आवश्यकता है। हृदय को तो वहाँ पर ले जाने से ही अनर्थ हो सकता है। विवाहित व्यक्ति यदि भूल भी करेगा तो बहुत सँभल कर। सेठ जी ने इसीलिए विवाह करने का अन्तिम निश्चय कर लिया है।

दूसरी ओर धर्मार्थी जी न जाने क्या चाहते हैं। विवाह की तो बातचीत से ही वह कोसों दूर भागते हैं। उन्होंने अपने कई प्रमुख मित्रों से कई बार कहा है—"मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा।" इसलिए भी वह विवाह से कतराते हैं। धर्मार्थी जी को सामाजिक प्रतिष्ठा से बहुत

प्यार है । उनकी धारणा है—मनुष्य चाहे कुछ भी हो, उसकी प्रतिष्ठा भंग नहीं होनी चाहिए। उनको विश्वास है—मनुष्य वही है जो उसे दुनियाँ समझती है। जन वाणी ही ईश्वर का घोष है। इस सबके साथ ही धर्मार्थी जी विवाह को एक बन्धन मानते हैं। वह जानते हैं—विवाहित व्यक्ति के पास युवतियाँ कम ही आती हैं। यदि आती भी हैं तो बहुत निकट नहीं। दूर से ही खेल कूद कर चली जाती हैं। इसलिए विवाह की रस्सी से अभी तक वह गर्दन बचाये हुए हैं।

धर्मार्थी जी ने जब से रजनी को देखा है न जाने वह क्या निश्चय कर बैठे हैं। उनका मन कहता है—या तो रजनी हो, और नहीं तो कोई ऐसी ही युवती होनी चाहिए, जिस युवती की उदासी भी एक आभूषण दिखाई दे, उसकी प्रसन्नता जाने कैसी होगी ? धर्मार्थी जी भूल गये हैं कि सच्ची उदासी ही स्त्री का सर्वोत्तम आभूषण है। वह तो सोचते रहते हैं—जो रजनी साधारण वस्त्रों में इतनी लुभाती है, वह जब श्रृंगार करेगी तो न जाने कितना आकर्षण होगा उसमें।

धर्मार्थी जी ने इस समय अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के अनेक उपाय सोच लिए हैं। प्रत्येक मंगलवार को वह सवा सेर चने क्वार्टरों के बन्दरों को डलवाते हैं। पाँच रुपए के लड्डू भी वह क्वार्टरों में ही बँटवाते हैं। प्रातः काल क्वार्टरों के आस-पास ढाई सेर आटा धर्मार्थी जी चीटियों के बिलों पर डलवाते हैं। प्रत्येक पूर्णिमा को वह गंगा-स्नान के लिए जाते हैं। उनके इन निश्चयों से मिल के सब ही मजदूर पूर्ण परिचित हैं।

उस दिन सोमवारी अमावस्या थी। धर्मार्थी जी गंगा स्नान के लिए तैयार हो कार द्वारा चल पड़े। उन्होंने निश्चय किया—भीख की भीख और भाइयों के दर्शन—एक ओर गंगा स्नान होगा, और दूसरी ओर हरिद्वार से लौटते हुए अम्बाले जाकर रजनी से भी मिला जा सकेगा। जब से रजनी अम्बाले गई है धर्मार्थी जी कुछ खोये-खोये से रहते हैं। और कुछ न सही, वाणी विलास तो हो ही जाता था। रजनी के जाने

से वह भी जाता रहा। वास्तव में धर्मार्थी जी को यह विश्वास ही नहीं था कि रजनी चली जायेगी। उनका तो यह एक दाव था सो उलटा पड़ गया। वह तो समझते थे, इस प्रकार यह घबरा कर हमारी रुचि के अनुकूल समर्पण कर देगी।

गंगा स्नान कर धर्मार्थी जी ड्राइवर और नौकर सहित जब अम्ब ले रजनी के पास पहुँचे, पाँच बज चुके थे। रजनी सिलाई कक्ष से अभी अपने क्वार्टर पर आई थी। धर्मार्थी जी का आगमन उसके लिए तारा टूटने के समान हुआ। आश्चर्य चकित रजनी ने आन्तरिक कौतूहल का दमन कर साधारण दृष्टि से धर्मार्थी जी को प्रणाम किया। धर्मार्थी जी ने प्रणाम का उत्तर उदारता से दिया। वह बोले—

"कहो रजनी! कुशल तो हो?"

रजनी कुछ देर बोल ही न पाई। वास्तव में वह इस समय धर्मार्थी जी के शब्दों पर ध्यान न देकर वेश भूषा पर दृष्टि जमाये हुए थी। उनकी वेश भूषा दर्शनीय है। वह खद्दर का धोती कुर्ता पहने हैं। जवाहर कट भी खद्दर की ही है। पैरों में चप्पल है। वह अच्छे भले नेताओं के भी गुरु दिखाई दे रहे हैं। रजनी की दृष्टि वस्त्रों से हटी और धर्मार्थी के कथन पर उसका ध्यान गया। वह चौंक कर बोली—

"कृपा है आपकी! आइये।"

रजनी ने कुर्सी को अपनी चारपाई से कुछ हटाकर डाल दिया। धर्मार्थी जी कुर्सी पर बैठते हुए बोले—

गंगा स्नान के लिए आए थे। सोचा आश्रम भी देखते चलें। कहिए आपके क्या समाचार हैं?"

"कार्य ठीक चल रहा है। आप सुनाइये! कुशल से तो हो?"

"शरीर रूप में तो कुशल ही है मन रूप में जो तुम छोड़कर यहाँ आ गई थीं, वही दशा आज भी है। इसलिए दर्शनार्थ यहाँ आना पड़ा है। अब मन रूप में भी पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ।"

रजनी ने जो सुना, नई बात न थी। वह जानती है, गूलर जब

भी फूटेगा, कीड़े ही निकलेंगे। वह धर्मार्थी जी के कथन पर मन ही मन विचार करने लगी—गंगा स्नान कर यह गधा गाय बनना चाहता है। विचित्र है इस बगुले की भक्ति। एक क्रिया से तीन फल चाहता है। एक ओर सामाजिक प्रतिष्ठा दूसरी ओर स्वर्ग की सीढ़ियाँ और तीसरे मन के रोग का उपचार। कुछ शान्त रह कर वह बोली—

"क्या कहा ? मेरे दर्शन ! आप अभी तक मुझे समझे नहीं हैं धर्मार्थी जी। मैं तो वह नारी हूँ जिसको देखकर नाग भी सर पीटने लगता है। यदि फूल को छू लूँ तो उसकी भी सुगन्ध उड़ जायेगी। मुझे देखकर तो चाँद और सूरज को भी ग्रहण लग जाता है। फिर आप क्या करेंगे मेरे दर्शन करके ?"

"यहाँ आकर आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया है रजनी।"

"यह तो सोचना मेरा काम है। अब आप यह बतायें क्या पियेंगे ?"

"पीने खाने की बात छोड़ो। बस हमें एक प्रश्न का उत्तर चाहिए।"

"कृपया पुराने प्रश्नों की पुनरावृत्ति न करना।"

"बात न काटो। पहले कुछ कहने तो दो।"

"कहिए, क्या प्रश्न है ?"

"सबसे पहले यह बताओ। तुम्हारी वाणी में इतनी कटुता क्यों हैं ?"

"इसका उत्तर तो सीधा है। मिठास होने पर नारी के शिकारी उसे जीवित ही निगल जाते हैं।"

"क्या तुम यह जानती हो, तुम्हारी कटुता भी सरसता से बढ़कर है।"

"यह तो मैं नहीं जानती ! हाँ इतना अवश्य जानती हूँ, मेरी कटुता या सरलता पर विचार करने वाले आप नहीं हैं।"

"मुझे तो लगता है। आपको कुछ पुरुषों से घृणा है।"

"जी नहीं ! ऐसी कोई बात नहीं है । मैं पुरुषों से नहीं पुरुषों की पशुता से घृणा अवश्य करती हूँ । जो पुरुष नारी को केवल भोग का साधन मानता है मैं उसे पशु ही समझती हूँ । कुछ पुरुष नारी को एक रंगीन खिलौना मात्र ही समझते हैं । जब तक जी चाहा खेला, और फिर तोड़कर फैंक दिया । कुछ पुरुष नारी को बालू की ढेरी समझकर मनचाही रेखा बनाते हैं, और फिर ठोकर मारकर मिटा देते हैं । फिर बताइये, ऐसे पुरुषों से घृणा कैसे न हो ? विचार कर देख लो ।"

"यह कथन आपका प्रत्येक पुरुष पर घटित नहीं होता रजनी । पुरुष जाति पर कीचड़ न उछालो । जो पत्थर पथ की ठोकर बनकर आता है, उसी को पथ से हटाया जाता है । तुम जानती हो, जिसकी पूजा होती है, वह भी तो एक पत्थर ही है ।"

"आपने इस कथन के साथ अपना हाथ हृदय पर नहीं रखा ।"

"क्या तुम मुझे ऐसा ही पुरुष समझती हो ?"

"मुख पर किसी के भी अच्छा या बुरा लिखा हुआ नहीं होता ।"

"हम फिर कह रहे हैं, पत्थर की पहचान करो ।"

"मैं भी पुनः कह रही हूँ । जो यात्री ठोकर खाकर आगे बढ़ना चाहता है, उसी को पत्थर हटाने की आवश्यकता है । हमें तो अब उसी पत्थर से प्यार है, जिसने हमारे पगों की गति को समाप्त कर दिया है । हमें अब पूजा का पत्थर नहीं चाहिए ।"

धर्मार्थी जी समझ गये, दाल में कुछ काला है । वह बोले—

"क्या आप बता सकेंगी, आप को ठुकराने वाला कौन है ?"

रजनी ने मन में निश्चय किया—अब इसको कुछ बताना ही उचित है यदि न बताया तो यह सिर का दर्द ही बना रहेगा । सदैव के लिये पीछा छुड़ाने की इच्छा को लेकर वह साहस बटोर दृष्टि झुका कर बोली—

"मेरे होने वाले बच्चे के पिता को जानकर क्या करेंगे आप ?"

रजनी की इस स्पष्ट वादिता की कुदाली ने धर्मार्थी जी के काल्प-

निक उपवन की सम्पूर्णकलियों को काटकर फैंक दिया। वह कुछ विचार मग्न हो गये। उन्होंने सोचा—इसीलिये यह सूखे ठूंठ के समान बन गई है। मुड़ने का नाम ही नहीं लेती। इसके मधुमास का माली, अब इसे पतझर बनाकर छोड़ गया है। आश्चर्य है यह फिर भी उसे भूल नहीं पाई। प्रत्यक्ष में वह बोले—

"क्या यह तुम सत्य कह रही हो रजनी ?"

"इसमें तिल बराबर भी असत्य नहीं है श्रीमान्।"

"इतना बड़ा पाप।"

"आप चिन्ता न करें। पाप और पुन्य का फल मुझे ही भोगना है।"

"तो फिर इस स्थिति में आप यहाँ तो रह नहीं पायेंगी।"

"मैं कार्य मुक्त होने के लिये तत्पर हूँ।"

"मुझे तो आश्चर्य हो रहा हैं। तुमने इतनीं बड़ी अनैतिक क्रिया की ही क्यों है। कुछ विचार तो किया होता।"

"आपको मेरी किसी भी क्रिया को नैतिक या अनैतिक कहने का अधिकार ही नहीं है। अनैतिकता वहाँ है जहाँ पत्थर को जोंक लगाई जाये।"

इस कथन को सुनकर धर्मार्थी जी कुछ क्रुद्ध हो गये। उनको लगा यह युवती जिसका खाती है। उसी को गुर्राती है।" वह बोले—

"यह ध्यान रखो रजनी। तुम किससे बातें कर रही हो। किसी नीच के भोग भार से दबकर तुम्हें व्यक्ति की सत्ता और सम्मान को कभी नहीं भूलना चाहिए।"

इस कथन से रजनी झल्ला गई। जैसे उसे बिच्छू ने काट लिया हो। क्रोध में तमतमाती हुई वह बोली—

"आप मानवीय सीमा का उल्लंघन न करें धर्मार्थी जी! मेरे होने वाले बच्चे के पिता के विषय मैं आपको एक शब्द भी कहने का अधिकार नहीं है। यदि आगे कुछ कहा तो अच्छा न होगा।"

"नियति ने नारी का निर्माण करते समय नैतिकता को सम्मुख ही नहीं रखा देवी जी।"

धर्मार्थी जी ने देवी शब्द पर विशेष बल दिया। व्यंग को समझ रजनी बोली—

"मैं देवी हूँ या दुराचारिणी, इस विषय में विचार कर आप अपने मस्तिष्क का भार व्यर्थ में ही बढ़ा रहे हैं। क्या लाभ है इससे ?"

"दया आती है, तुम्हारी मूर्खता पर।"

"दया की तो आप परिभाषा भी नहीं जानते।"

"मैं जानता हूँ, विनाशकाल में मनुष्य की बुद्धि ही उसकी सबसे बड़ी शत्रु होती है। यह तुम्हारा दोष नहीं है।"

इस कथन के साथ धर्मार्थी जी वहाँ से खड़े हो गये। उनके जाते ही रजनी को विश्वास हो गया—अब यहाँ रहना सम्भव नहीं है। वह फिर दिल्ली लौटने की घड़ियाँ गिनने लगी।

२२

धर्मार्थी जी ने दिल्ली जाते ही सबसे पहला काम किया, रजनी की पद मुक्ति का निश्चय सूचना के लिये एक पत्र रजनी को लिखा, जो उसे पाँच दिन पश्चात् मिल गया। पत्र मिलना रजनी के लिये नई बात न थी। वह जैसे इस की प्रतीक्षा ही कर रही हो। उसने तुरन्त दिल्ली लौटने की तैयारी कर दी। यह बात वायु वेग से सारे विधवा आश्रम में फैल गई। एक दो को छोड़ किसी भी स्त्री को कोई विशेष दुःख न हुआ। इसका मूल कारण यह था—उस दिन जिन दो विधवाओं के सम्मुख रजनी ने अपनी जीवन पुस्तक के पाठों को पढ़ा, युवा युवती ने तो उसे बचा लिया, परन्तु प्रौढ़ स्त्री न पचा सकी। वह

जैसे कोई मक्खी निगल गई हो। जिससे मिली सबसे ही नाक पर उंगली रख कर रजनी की निन्दा की। किसी की दुर्बलता को जब तक स्त्री दस कानों में न पहुँचा दे, उसे चैन नहीं पड़ता। उसके प्रचार के कारण ही वहाँ की विधवायें, रजनी को देखकर काना-फूँसी करने लग गई हैं।

रजनी को विधवाओं की दुर्भावना या सद्भावना की अब कोई आशंका या अपेक्षा नहीं रही है। जब वह जा रही है, तो उसकी बला से कोई कुछ भी कहे। जिस वाटिका से बुलबुल ने बसेरा उठा लिया उसके मधुमास और पतझर का उसे न सुख है और न ही दुख। रजनी की दृष्टि अब दिल्ली की ओर लग गई। उसके लिये एक विदाई पार्टी का कुछ स्त्रियों ने आयोजन किया। कुछ पैसे एकत्र करके उसे एक पर्स भी भेंट किया। रजनी ने स्मृति चिन्ह के रूप में पर्स को स्वीकार कर एक छोटा-सा भाषण उपस्थित विधवाओं के सम्मुख दिया।

"आदरणीय बहनो! अल्प समय के इस मिलन और वियोग के समय में केवल इतना ही कहूँगी, कि मुझसे यदि कोई भूल हो गई हो तो क्षमा कर देना। एक पल का मधुर मिलन हजार वर्ष के वियोग का बल बन जाता है। इस समय मैं इसी आदर्श के सहारे यहाँ से जा रही हूँ। मैं स्मरण करने योग्य तो नहीं हूँ, फिर भी मैं आप बहनो के परिवार को कभी नहीं भूल पाऊँगी। धन्यवाद!"

भाषण की समाप्ति पर औपचारिक मिलन हुआ। सबसे पीछे चायपान की व्यवस्था हुई। अन्त में सब अपने-अपने लक्ष्य की ओर चली गईं। रजनी की सखी एक युवती, उसके साथ कमरे पर आ गई। उस रात दोनों बातें ही करती रहीं। प्रातः जब दोनों सोकर उठीं, आठ बज चुके थे।

प्रातःकाल रजनी चलने की तैयारी करने लगी। वह दस बजे तक तैयार हो पाई। उसने चलते समय निश्चय किया—हरिद्वार गंगा स्नान करके दिल्ली जाऊँगी। दैवयोग से उस दिन पूर्णिमा भी थी। शुभ पर्व जान वह सबसे विदा हो, एक बजे हरिद्वार पहुँच गई। वहाँ पर चार

बजे तक रही। जब उसने स्नान किया उसका मन प्रसन्नता अनुभव करने लगा। स्नान कर वह गंगा के तट पर बैठ कर मौन प्रार्थना करने लगी—

विष्णु के चरणों से निकल ब्रह्मा के कमण्डल और शिव की जटाओं को सुशोभित करने वाली हे गंगा माई! तुम्हारे इस मृतलोक में आगमन के पीछे भागीरथ का अथक प्रयत्न वर्तमान दुनियाँ का प्रेरक है। मैं अबला आज तुम्हारे तट पर आई हूँ। मुझे जीवन में बल चाहिए। तुमने कितनों को बल दिया। अनगिनत को मुक्ति दी। और न जाने कितनी पतितों को पावन बनाया है। हे पतित पावनी माता! तुम अपने लक्ष्य की ओर अविराम गति से बढ़ी जा रही हो। मैं चाहती हूँ मुझे भी यह गति मिल जाये तो मैं भी भागीरथ प्रयत्न द्वारा अपने लक्ष्य को पा सकूँ।

स्मरण रखना माता! यदि मुझे मेरा लक्ष्य नहीं मिला तो मैं तुम्हारे ही पीछे-पीछे चली आऊँगी। जिसको दुनियाँ आश्रय नहीं देती, उसके लिये तुम्हारी गोद ही खाली रहती है।

रजनी ने स्नान और अर्चना के पश्चात् कुछ भोजन किया और फिर वह सीधी स्टेशन आ गई। गाड़ी हरिद्वार से रात को चलकर प्रात: दिल्ली पहुँचनी थी, रजनी ने उसी गाड़ी का टिकट ले लिया। उसके पास विशेष सामान न था। बैग में कुछ कपड़े थे, और पर्स में चार सौ रुपये। हाथों में सोने की दो चूड़ियाँ और अँगूठी थी। घड़ी को उसने न जाने क्यों, इस समय पर्स में रख लिया था। अपने सम्पूर्ण समान को भली प्रकार संभाल वह प्लेटफार्म पर बैठ गई। उस समय वहाँ यात्रियों की चहल-पहल थी। पूर्णिमा होने से प्लेटफार्म पर ही मेला सा लगा हुआ था। ऋतु सुहावनी थी। न बहुत गर्मी और न ही सर्दी। आकाश में चाँदनी छिटक रही थी।

रजनी जब बैठी सोच रही थी—इस भीड़ में कैसे चढ़ पाऊँगी। उसी समय दो मनचले युवक उसके सम्मुख आये, और ठिठक कर बातें करने लगे। वह इसी प्रकार रुक गये जैसे उनके पगों को या तो किसी

ने ब्रेक लगा दिया है, या बेड़ियाँ पहना दी हों।

एक ने कहा—ऐसे सुहावने मौसम में तो अकेला कोई भी नहीं होना चाहिए। दूसरा बोला—और किसी को अकेला रहने की आदत ही पड़ जाये तो ?"

रजनी ने दृष्टि नीचे झुका ली, जैसे उसने सुना ही न हो। वह सोच रही थी—यही है गंगा स्नान से लौटने वाली पवित्र आत्मायें ?

उसी समय गाड़ी की सीटी सुनाई दी। यात्रियों में हलचल मच गई। सारे यात्री सज्जित सैनिकों की भाँति खड़े हो गये। रजनी ने भी अपना बैग और पर्स संभाल लिया। गाड़ी के रुकते ही उतरने वालों से पहले ही चढ़ने वाले दौड़ पड़े। दस मिनट तक धक्का-मुक्की होती रही। स्त्री और पुरुषों के पृथक डिब्बों का भेद मिट गया। जिसको जहाँ स्थान मिला घुस गया। कठिनाई से रजनी भी एक डिब्बे में चढ़ने में समर्थ हो गई। उसे बैठने को स्थान नहीं मिला। फिर भी उसने चढ़ने को ही इस समय अपना सौभाग्य समझा।

रजनी जिस सीट के पास खड़ी थी, उसी पर एक युवक बैठा था। उसके पास एक अधेड़ स्त्री-पुरुष का जोड़ा था। युवक रजनी को देख कर खड़ा हो गया। वह बोला—

"आप यहाँ बैठ जायें बहन जी।"

धन्यवाद कह कर रजनी बैठ गई। वह सोचने लगी—यह भी युवक है और वे भी युवक थे। कितना अन्तर है इसमें और उनमें। बाहर से सब एक ही जैसे हैं।

गाड़ी जब गति पर आई, यात्री ऊँघने लगे। रजनी पिछली रात सो ही न पाई थी। वह गहरी नींद में डूब गई। दिल्ली तक आते हुए वह एक मिनट के लिए भी न जाग पाई। जब गाड़ी दिल्ली रुकी और यात्रियों में हलचली मची तो रजनी सचेत हुई। उसने देखा यात्रियों के स्वागत करने वालों की भी प्लेटफार्म पर भीड़ लगी है। उसको स्मरण हो उठा—एक दिन वह भी यहीं पर राजेश की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ देर तक वह बैठी-बैठी विचारों में खोई

इधर-उधर देखती रही। भीड़ के कम होने पर जब वह उतरने को तत्पर हुई उसने देखा—उसका बैग और पर्स वहाँ नहीं है। टिकट भी पर्स में ही था। उसे एक धक्का सा लगा। वह प्लेटफार्म पर बैठकर सोचने लगी—अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? पास में न पैसा है और न ही टिकट।

रजनी साहस बटोर कर उठी और द्रुत गति से यात्रियों के निकलने वाले द्वार के पास खड़ी हो गई। वह आँखें फाड़-फाड़ कर अपने बैग और पर्स को देखने लगी। यात्रियों की लम्बी पंक्ति जब वह देखती जा रही थी, उसे वही स्त्री-पुरुष का प्रौढ़ जोड़ा दिखाई दिया जिसके पास बैठ कर वह सोई हुई आई थी। आँसू भरी आँखों से रजनी ने उनसे पूछा—

"आपने मेरा बैग और पर्स तो नहीं देखा है?"

"नहीं बेटी।" कहते हुए दोनों पंक्ति से बाहर आ गये। वह कुछ देर गाड़ी में भी रजनी के विषय में काना-फूंसी करते रहे थे। न जाने रजनी की लुभावनी आकृति ने उन पर क्या जादू सा कर दिया था। स्त्री तो यहाँ तक कह बैठी थी—"बड़े भाग होते हमारे जो राजेश की बहू भी ऐसी सुन्दर होती।" पुरुष ने उत्तर दिया था—"विधाता ने समय लगाया है इसके बनाने में। साक्षात् देवी का रूप है इस लड़की का।"

प्रौढ़ स्त्री ने धीरे से पूछा—

"कितना कुछ था तुम्हारे बटुवे और ट्रंक में?"

रजनी ने सिसकियाँ भरते हुए बता दिया।

"अब तुम कहाँ जाओगी बेटी?"

"मुझे एक सम्बन्धी के पास जाना है।"

"चलो तुम्हारे किराये के पैसे हम दे देंगे।"

दोनों ने रजनी के किराये का भुगतान किया। वह उन दोनों के साथ ही बाहर आ गई। बाहर आकर स्त्री ने एक रुपया तांगे के किराये के लिये रजनी को और दिया। दोनों को हाथ जोड़ प्रणाम कर

रजनी भीड़ से एक ओर खडी होकर सोचने लगी—"अब मैं कहाँ जाऊँ ?"

उसने स्वयँ ही उत्तर दिया—वहीं जाओ, जिसको तुम अपना सर्वस्व दे चुकी हो। वहीं पर खड़े-खड़े दूसरा निश्चय किया—पहले हाथ की चूड़ियाँ बेचकर जेब मे कुछ पैसे तो रख लूँ। फिर वह स्टेशन से सीधी चाँदनी चौक आ गई। बाजार सब बन्द था। केवल एक घड़ी वाला बैठा था। वह पुलिस से मिला हुआ था। चाट पानी खिलाता रहता था। इसीलिये उसको दुकान बन्द करने या खोलने के नियम का पालन करना नहीं पड़ता था। उससे रजनी ने एक चूड़ी बेचकर पचास रुपये प्राप्त किये और फिर वह सीधी तांगे में बैठकर राजेश के पास आ गई। उसने देखा—गाड़ी वाले वही स्त्री-पुरुष वहाँ पर बैठे हैं। उसने पुरुष की आकृति का राजेश से सन्तुलन सा पाया। उसे विश्वास सा हो गया—यह उनके पिता हैं, और ये हैं राजेश की माता। उसी समय माता बोल पड़ी—

"आओ बेटी !" कहो क्या चाहती हो ?"

खड़े-खड़े ही रजनी बोली—

"आपकी असीम कृपा है।"

"तो फिर कैसे आई हो ? हमने तो तुम्हारे ट्रंक को नहीं देखा।"

"ठीक है माता जी। मैं ट्रंक के लिये नहीं आई हूँ। यहाँ मेरी एक सखी राधा रहती है। उसके ही पास आई हूँ। उन्हीं के साथ मेरे परिचित राजेश भी रहते हैं। मुझे उन्हीं से मिलना है।"

"तो बैठ जाओ बेटी। राजेश अभी आने वाला है। क्या काम है उससे तुम्हारा ?"

रजनी शान्त खड़ी रही। राजेश के पिता राजेश्वरी से बोले—

"कोई कुर्सी ला दो बेटी को। ये राजेश से मिलने आई है।"

राजेश्वरी ने कुर्सी लाकर बाहर डाल दी। रजनी कुर्सी पर बैठी नहीं। वह हाथ टिका कर खड़ी हो गई। उस समय वह सोच रही थी—कितने उदार हैं राजेश के पिता और माता। यही तो वह संस्कार है जिसने राजेश को इतना महान बनाया है।" उसके मन ने कहा—

एक बार राजेश की पत्नी को अन्दर जाकर देखूं। मुँह दिखाई भी दूं। किन्तु कुछ सोचकर वह वहीं पर खड़ी रही। उसी समय राजेश की माता बोलीं—

"बैठ जाओ बेटी। खड़ी क्यों हो ?"

"मुझे यहाँ से उठा दिया गया है माता जी। इसीलिये खड़ी हूँ।"

"क्या कह रही हो बेटी ? हम कुछ समझे नहीं।"

"अब कैसे समझाऊँ मैं आपको ?"

"कुछ अपनी जानकारी तो दे दो। तुम राजेश को कैसे जानती हो, और उससे तुम्हारा क्या काम है ?"

रजनी से अब न रहा गया। वह फूट पड़ी—

"मैं वही अभागी लड़की हूँ, जिसने कभी आपकी पुत्र वधु होने का स्वप्न देखा था, माता जी।"

दोनों को समझने में देर न लगी। राजेश की माता बोली——

"तो फिर रोती क्यों हो बेटी ? बैठ जाओ।"

"यदि आप मेरे रोने का कारण जानना चाहती हो तो मैं बताने को तैयार हूँ। अच्छा हो मुझ अभागी की बात आप सुन लें।'

"तो फिर देर क्यों कर रही हो ? बताओ। '

"आप खड़ी होकर सुन लें।"

रामप्यारी खड़ी हुई और रजनी उसे एक ओर ले गई। उसने सारी कहानी कह सुनाई। रामप्यारी सुनते ही विचारों में डूब गई। वह फिर अपने पति रमानाथ को एक ओर ले गई। उसने वही सब रमानाथ को संक्षेप में सुना दिया। दोनों की बातचीत के समय ही वहाँ राजेश भी आ गया। रजनी को देखते ही वह लाल हो गया। उसके भाल में सिकुड़न पड़ गई। रजनी ने दृष्टि झुकाए हुए प्रणाम किया। राजेश ने प्रणाम का कोई उत्तर न दिया। वह सीधा अन्दर चला गया। राजेश के इस व्यवहार से रजनी की आशाओं पर पानी फिर गया। वह फिर भी खड़ी रही।

बातचीत समाप्त कर रमानाथ चारपाई पर बैठते हुए बोले—

"बाहर आओ राजेश। ये तुमसे मिलने आई हैं।"

राजेश अन्दर से ही बोला—

"इनसे कह दो पिताजी मै इन्हे नहीं जानता। मेरे पास समय नहीं है। कि व्यर्थ में सिर दर्द करूँ।

अनादर और उपेक्षा भरी प्रताड़ना पाकर रजनी का क्रोध सीमा से बाहर हो गया। वह फिर वहाँ एक पल भी न रुकी। उसने लक्ष्य विहीन पक्षी के समान उड़ान भरकर जैसे स्वयँ को सुरक्षित कर लिया हो।

रमानाथ और रामप्यारी उस समय शान्त बैठे हुए इस नाटक की गहराई पर विचार कर रहे थे।

२३

विद्यालयों से निकलने वाले युवक कुछ दिन व्यवहारिक जीवन में उन्हीं आदर्शों की झोली भरे फिरते रहते हैं, जिनको उन्होंने शिक्षा काल में पाया है। धीरे-धीरे कटु अनुभवों की चोट खाकर झोली ढीली होने लगती है। और फिर आदर्श क्रमशः खिसकते चले जाते हैं। शिक्षा कालीन भाषा बद्धज्ञान और यथार्थ जीवन में कभी नहीं बनती। राजेश भी एक ऐसा ही युवक है। उसकी झोली में अभी आदर्शो का भार है। मिल के मजदूरों को यह उनके अधिकारों का बोध कराने लग गया है। जिस प्रगतिवाद को उसने साहित्य में पढ़ा था, उसको मिल में यथार्थ रूप से पा लिया है। वह चाहता है मिल मजदूरों की आर्थिक दशा में कुछ सुधार अवश्य होना चाहिए।

धर्मार्थी जी को उसकी प्रत्येक गतिविधि का पूरा ज्ञान है। उन्होंने निश्चय कर लिया है—इस युवक का यहाँ रहना अब सम्भव नहीं। इसी-लिये इसको निकाल दूँगा। वह अब अवसर की खोज में है। धर्मार्थी जी यह अनुभव करते हैं; यदि इसकी विचार धारा को नया मोड़ दिया जा सके तो कार्य क्षमता की दृष्टि से इसका यहाँ रहना उचित भी है। धर्मार्थी जी के बहुत से दौड़-धूप के कार्य वह सरलता से कर लाता है। इसीलिए आज उन्होंने चेतावनी देने के लिए राजेश को बुलाकर कहा—

"मुझे लगता है—यदि आप भूल गये हैं कि आपकी यहाँ नियुक्ति किसलिए हुई है। लगता है आप मित्र की शान्ति भंग करने लग गये हैं।"

"मैंने तो कोई बात भी ऐसी नहीं की, जिससे शान्ति भंग हो।"

"आप असत्य बोल रहे हैं। विचार कर देखो।"

"मुझे लगता है आपको भ्रम हो गया है।"

"आँखों में धूल न झोंको राजेश ! हमको सब कुछ पता है।"

"और मुझे लगता है। आप कानों के कच्चे हैं।

"तो बताओ ! आप मजदूरों को क्या पढ़ाते हैं।

"उनको उनके कर्त्तव्य और अधिकार का ज्ञान कराता हूँ।"

"तो क्या तुम्हारी नियुक्ति इसीलिए हुई थी ?"

मेरे विचार में तो सच्ची शिक्षा यही है।"

"यह तुम्हारी भूल है राजेश ! ये मजदूर अधिकार को छोड़ अनाधिकार के लिए एक पल में ही हिंसक बन जाते हैं। इसी से एक दिन यहाँ का शान्त वातावरण दिन रात की अशान्ति भी बन सकता है।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता। हिंसक बनने के लिए तो इन मजदूरों को अभी हजार वर्ष चाहिएँ। अभी तो ये सर्वथा ज्ञानशून्य हैं।"

"तो क्या हजार वर्ष जीकर तुमने ही इनको ज्ञान दान करने का ठेका ले लिया है। तुमको तो अपना मूल कार्य करना चाहिए।"

"मुझे स्मरण है एक दिन आपने कहा था—मजदूर हमारे भाई हैं। मैंने इसीलिए, उनके प्रति सहानुभूति का भाव व्यक्त किया है।"

उनके प्रति सहानुभूति का मतलब यह नहीं, कि हमारे प्रति तुम कटुता का प्रदर्शन करो। इससे तो हमारे और मजदूरों के सम्बन्ध ही बिगड़ जायेंगे। और फिर इसी से शान्ति भंग होते देर नहीं लगती।"

'ठीक है आपकी बात ! भविष्य में मैं ध्यान रखूंगा।"

विश्वास नहीं होता। एक दिन मैंने पहले भी कहा था।

"अब मैं हृदय खोलकर आपको कैसे दिखाऊँ।"

"मैं तो चाहता हूँ, आप यहाँ हृदय को लेकर ही न आया करें। यहाँ तो केवल बुद्धि की ही आवश्यकता होती है।"

"मेरे विचार से हृदय की प्रेरणा के बिना कोई भी कार्य सम्भव ही नहीं है। बुद्धि का निर्णय तो केवल सिर दर्द ही होता है।"

"देखो राजेश ! आप यह न भूलें कि किससे बात कर रहे हो ?"

"शिक्षक आप मजदूरों के हैं, मेरे नहीं।"

"क्षमा करना। मैंने यूं ही कह दिया है।"

समय की नाड़ी पहचान राजेश ने दिखावे के लिए क्षमा माँग ली। धर्मार्थी जी को लगा—जैसे अब सीधे रास्ते पर आ गया है। वह बोले—

"आपने क्या पास किया है ?"

"मैंने इसी वर्ष बी. ए. पास किया है।"

"तो फिर आप कोई और नौकरी क्यों नहीं कर लेते।"

"मिलेगी तो अवश्य करूँगा।"

"नौकरी मिलती नहीं खोजी जाती है। हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाले को कोई बुलाने नहीं आता।"

"ठीक है आपकी बात। जिसकी गाड़ी दलदल में फंस जाती है उसी को अनाड़ी चालक बताया जाता है और जो दूसरों को ठुकरा कर पीछे छोड़ आगे बढ़कर जाये उसी की जय जयकार होती है।"

"तो क्या हम असत्य कह रहे हैं।"

"असत्य नहीं तो क्या सत्य है आपका कथन! अन्धे के पाँव के नीचे एक बटेर दब जाये, और वह फिर सदैव ही शिकार से खाने का निश्चय कर बैठे, तो भला यह कैसे सम्भव है। आपको जीवन में अवसर मिल गया इसका अर्थ यह नहीं, कि सबको ही मिल सकता है।"

"मुझे लगता है तुम कुछ अबोध भी हो। सब हमारी मानते हैं। कोई हमें उत्तर नहीं देता, और तुम न जाने क्या कहते चले जा रहे हो।" राजेश उनके ये शब्द सुनकर मन ही मन हँसा। वह बुद्धिवादी सिद्ध करने के लिये संयत भाषा में उबल पड़ा—

"देखिये श्रीमान्! जिस असत्य का भय या आतंक से कोई विरोध न करे वह असत्य सत्य नहीं हो सकता। आपने जिस आदर्श के अनूठे जाल में इन भोले मजदूरों को फंसाया हुआ है उसकी रस्सियाँ अब टूटने वाली हो गई हैं। स्मरण रखिये, मजदूरों के धैर्य का प्याला अब भरकर छलकने ही वाला है। आज जो असन्तोष की ज्वाला सुलग रही है। वह शीघ्र ही ज्वालामुखी बन कर फूटने वाली है। धर्म की आड़ में आप जो कुछ कर रहे हैं वह अब सामने आता जा रहा है। मजदूरों का शिकार अब आप बहुत दिन नहीं कर सकते। मैं चाहता हूँ, आप अब इस सत्य पर विचार करके ही चलें। अन्यथा एक दिन बहुमत की सहानुभूति के स्थान पर आप क्षोभ के पात्र बनकर रह जायेंगे।" बहुमत का भक्षण सदैव सम्भव नहीं है।

धर्मार्थी जी ने राजेश के विषय में जो कुछ सुना था, वह सत्य रूप में सामने आ गया। कुछ विचार कर वह बोले—

"देखो बन्धु! तुमने जो कुछ कहा है वह केवल तुम्हारी कथनी मात्र है। तुम न उन मजदूरों का भला कर सकते हो और न ही बुरा। यह तुम्हारी केवल थोथी नेतागिरी है। हम ही हैं जो इनके लिए कुछ कर सकते हैं और करना चाहते हैं। अच्छा होता आप मेरे सहयोगी बन कर ही चलते। पता नहीं आपको क्या भूत सवार हो गया है।"

"चाहता तो मैं भी यही हूँ, कि आप की कुछ सेवा कर सकूं।

दोनो एक दूसरे को वाक् पटुता से छलने लगे।

"देखो राजेश ! आप एक अध्यापक हैं और इसीलिये आदरणीय हैं। मैं चाहता हूँ– आपकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करूँ। मुझे दुःख है। आप यह अवसर ही नहीं देते। आप जिन मजदूरों की बात कर रहे हो इन्हें अभी भली प्रकार नहीं जानते। ये जब तक अज्ञान हैं कार्य कर रहे हैं। ज्ञान होने पर तो ये आप जैसे बुद्धिजीवियों को पल भर में ही धूल में मिला देंगे। इसीलिये आज मैं स्पष्ट बता दूँ– आप इन का संगठन बनाने की अपेक्षा भंग करना सीखें, यही उत्तम है।"

"तो फिर आज तक के लिये आप क्षमा कर दें। भविष्य में ऐसा ही होगा। मैं प्रयत्न करूँगा कि कोई भूल न होने पाये।"

"आप समझ गये है न मेरी बात को ?"

"भली प्रकार। अब आज्ञा दीजिये।"

"अच्छी बात है। कल फिर मिलना।"

राजेश फिर वहाँ से चला गया। उसके जाते ही धर्मार्थी जी ने राधा को अपने कमरे में चपरासी से बुला लिया। वह उससे बोले—

"आज तो सिर में ही दर्द कर दिया एक मूर्ख ने।"

"कौन था वह मूर्ख ?"

"क्या राजेश के बारे में कह रहे हैं आप ?"

"तो क्या आप भी जानती हैं उसको ?

भली प्रकार। कहिए क्या बात है ?

कैसा आदमी है वह ?"

"ठीक है मेरे विचार से तो बी० ए० पास है।"

"मैं जानना चाहता हूँ ?, उसकी प्रकृति कैसी है ?'

"इसकी परख आपको मुझसे अधिक है।"

"हम पुरुषों की नहीं लड़कियों की पहचान करते हैं।"

"तभी आपने रजनी की पहचान कर ली है।"

"क्या कह रही हो राधा ?"

"तो क्या आजकल आप कम सुनने लगे हैं ।"

"लड़कियों की आवाज तो हम कान न होने पर भी सुन लेंगे ।"

"मुझे तो लगता है, जब से रजनी यहाँ आई है, आप पक्के मिल मैनेजर बन गये हैं ।"

"ओर इस समय आप क्या देख रही हैं ।"

कहते हुए धर्मार्थी जी मुस्करा दिये । राधा ने दृष्टि नीचे झुका ली । राधा को दृष्टि झुकाये देख वह बोले—

"आज तो तुम अपने हाथ से चाय पिलाओ राधा ।"

"आपकी रजनी को क्या हो गया है आजकल ।"

"छोड़ो उसकी बातें । वह लड़की तो बड़ी ही विचित्र है । उस को तो अम्बाले विधवा आश्रम में भेज दिया है । मुझे तो लगता है, वह ठहर वहाँ भी नहीं पाई ।"

"ऐसी क्या बात ही उसमें ?"

"लगता है, वह कहीं गहरी चोठ खा गई है ।"

"और घायल फिर भी नहीं हुई । यही है न आपका मतलब ।"

"नहीं । मेरे विचार से तो वह इस समय पूर्ण रूप से घायल है ।"

"मैं समझती नहीं आपकी बात ।

"क्या करोगी समझ कर । इस समय केवल चाय पिलाओ ।"

"चाय आप पेट भर कर पियें । परन्तु मेरी जिज्ञासा आप को शान्त करनी ही होगी ।"

"जिज्ञासा न रखो । समझ लो वह माँ बनने वाली है ।"

न चाहने पर भी राधा को विचार मग्न होना पड़ा । उसी समय धर्मार्थी जी ने घन्टी दी चपरासी के आते ही उन्होंने चाय लाने का आदेश दे दिया । वह फिर राधा से बोले—

"क्या सोच रही हो राधा ?"

"यही कि रजनी यह क्या कर बैठी ?"

"विधाता ने यौवन को आँखें नहीं दी राधा।"

"ठीक है आपकी बात। फिर भी मेरे विचार से रजनी ने अन्धी होकर कोई पग नहीं बढ़ाया है।"

"छोड़ो व्यर्थ की बातों को। अब यह बताओ कि, आपके क्या समाचार हैं? बिना बुलाये तो पास भी नहीं आतीं। बुद्धिमानों ने कहा है—बड़ों के आगे, और घोड़े के पीछे संभल कर ही जाना चाहिए।"

"सिर दर्द न करो राधा! यह बड़े छोटों की बात तो प्रातः से संध्या तक बहुत बार सुनने को मिलती है।"

चपरासी चाय लेकर आ गया। मेज पर रखकर जब वह बाहर चला गया—राधा ने दो कप चाय तैयार की। जब उसने एक प्याली धर्मार्थी जी के सम्मुख रखी, वह भावुक से होकर बोले—

"आज तो अपने हाथ से पिलाओ राधा।

"मैंने ही तो बनाई है।"

"बनाने वाले तो बहुत हैं हमें तो कोई पिलाने वाला चाहिए।"

"आप विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

"छोड़ो इस नीरस विषय को। अब चाय पिलाओ।"

राधा उठी और उसने प्याली धर्मार्थी जी के होठों से लगा दी। वह गद्गद् हो गये। चाय की चुस्की लेकर उन्होंने धीरे से राधा के हाथ को अपने हाथों में ले लिया। राधा धीमे स्वर में बोली—

"क्या कर रहे हैं आप?"

"मैं चाहता हूँ राधा, तुम और निकट आ जाओ।'

"इतनी निकट कि कभी लौट के ही न जा सकूँ। यह भी तो कह दो। क्षणिक निकटता से तो विकटता ही बढ़ती है।"

धर्मार्थी जी के हाथ से तुरन्त राधा का हाथ छूट गया। राधा उसी समय, स्वर में कुछ कर्कशता सीमाभर बोली—

"जो हाथ छोड़ना पड़े, उसको पकड़ने से क्या लाभ है श्रीमान्।"

"बैठो राधा! मैं कुछ सन्तुलन खो बैठा था।"

राधा खड़ी-खड़ी सोचने लगी—"कितना कायर और ढोंगी है यह पुरुष ! स्त्री को यह केवल मदिरा की प्याली ही समझता है यह जानता ही नहीं कि इस प्याली मे मदिरा के साथ ही विष और अमृत दोनों का मिश्रण है। इसे न विष की चिन्ता है, और न अमृत की इच्छा। अधरों की लाली नारी को यह केवल प्याली बनाकर ही पीना चाहता है। क्या इसे शान्ति मिलेगी। नहीं। कभी नहीं।

वह धीमें स्वर में आकृति पर विद्यमान घृणा का दमन कर बोली—

"क्या मैं जा सकती हूँ अब ?"

"ठहरो राधा ! आज हम बहुत उदास हैं क्या तुम शाम को हमारी कोठी पर खाना खाने आ सकती हो।"

"यह तो सम्भव नहीं हैं। पिता जी आज्ञा नहीं देंगे।"

"चलो फिर कोई बात नहीं। तुम जा सकती हो।

"घृणा के भार से दबी सी राधा फिर वहाँ से चल पड़ी।"

२४

राजेश की स्थिति आजकल उसी व्यक्ति के समान है जो जिस वृक्ष पर बैठा हो, उसे ही काटने लग जाये। वह जहाँ कार्य करता हैं वहाँ की गतिविधियों से सन्तुष्ट नहीं है। वह जानता है, कि मुझे यहाँ क्यों रखा गया है। धर्मार्थी जी ने उस दिन स्पष्ट भी कह दिया है। अब वह सोचता है न्याय की दृष्टि से मुझे कार्य छोड़ देना चाहिए। मजदूरों को बलि का बकरा बनाकर गर्दन कटाने के लिए तैयार करना मेरी प्रकृति से दूर की बात है। धर्मार्थी जी के विचार से मेरी नियुक्ति ही इसलिये हुई है। नौकरी छोड़ दे तो क्या करे। दिल्ली में बेकार तो

एक दिन भी बैटना सम्भव नहीं है। वह कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाता।

राजेश घर में आता है पत्नी सौ बार प्यार भरी दृष्टि से देखती है। वह फिर भी असन्तुष्ट है। जब वह घर में होता है तब भी उसका मन न जाने कहाँ चौकड़ी भरता फिरता रहता है। कभी रजनी को खोजने चला जाता है। कभी राधा से खिलवाड़ करने लगता है। कभी इधर-उधर धक्के खाकर जब थक जाता है तो घर में भी आ जाता है। राजेश्वरी उस समय फूली नहीं समाती। दिन में उसे एक दो बार राजेश की वह दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिस पर वह उसके सारे क्रोध को न्यौछावर करके फेंक देती है। राजेश यह भी सोचता है--जिस स्त्री को मैं पत्नी रूप में पाकर सौ बार फटकारता हूँ वह मेरी कितनी सेवा करती है। यह मेरा धर्म नहीं है।

राधा के उपकार को भी राजेश यथा समय स्मरण करता है। रजनी और मेरे जीवन की राधा यथा समय समुचित सहयोगिनी बनी है। यथा समय उदास मन को बहलाने का वह साधन है। मकान उसने ही दिलाया है। दिल्ली में मकान का मिलना भगवान से भी कठिन कार्य है। मकान दिलाने के साथ ही राधा नौकरी की खोज में भी प्रयत्न शील रही है। और आज भी है। उसमें जो दुर्बलता है। वह तो बड़े से बड़े व्यक्ति में पाई जा सकती है। वृद्द माता-पिता का वह सब पालन कर रही है। उनके स्वर्गवास के पश्चात् इस दुनियाँ में उसका कौन होगा ? यही अभाव उसके जीवन को पंगु बनाये बैठा है। इसी-लिये वह प्रत्येक स्थान पर अपनापन खोजने लग जाती है। जितना अपनत्त्व उसको मिल जाय वह उसी से सन्तुष्ट हो जाती है। यह भी उसकी मानवता है।

सुबह के आठ बजे होंगे। राधा अभी सोकर उठी है। रविवार को सदैव ही देर तक सोती रहती है। वह चाय पीने के लिये बरामदे में बैठी ही थी कि उधर से राजेश आ गया। वह देखते ही पुकार पड़ी—

"आइये राजेश बाबू। मैं तो स्वयं ही आने वाली थी।"

"मैंने सोचा, आज मैं ही चलूँ।"

"बैठिये! चाय तो अभी नहीं पी होगी?'।

"यदि पी भी ली हो तो दूसरी प्याली कौन बड़ा सागर है।"

राधा ने राजेश के विनोद को समझ लिया। वह बोली—

"दो प्याली क्या? आप तो तीन पी सकते हैं।"

राजेश कुर्सी पर बैठता हुआ सोचने लगा—ऐसा उत्तर देने की सामर्थ्य कहाँ है किसी स्त्री में। राजेश्वरी तो इस भाषा को सोच भी नहीं सकती। राधा के माता-पिता को जैसे कुछ भी पता नहीं है। वह दोनों प्रातः कालीन भोजन की व्यवस्था कर बाजार चल दिये। उनके जाते ही राधा ने राजेश को चाय की प्याली और कुछ नाश्ता दिया। राजेश चाय की प्याली को हाथ में थमाकर बोला—

"यदि चाय अच्छी हो तो प्याली एक भी बहुत है राधा।"

"चाय की प्रबल इच्छा होने पर जो प्रथम प्याली पी जाती है स्वाद तो उसी में होता है राजेश बाबू। शेष दूसरी और तीसरी प्याली तो केवल पेट भरने का एक साधन मात्र है।"

"तीसरी प्याली को तो अभी होंठ भी नहीं लगे राधा। फिर भला उसके स्वाद का क्या पता हो सकता है।"

"मैं बता रही हूँ। अब आपको कोई प्याली भी अच्छी नहीं लगेगी। आपके मुँह का स्वाद एक विशेष प्रकार का बन गया है।"

"कल हमारे पास रजनी आई थी।"

"अर्थात् आपकी प्रथम स्वादिष्ट प्याली। कहो! क्या समाचार हैं आपकी प्रथम प्याली के। हम से तो वह अब दूर ही रहती है।"

"बात कुछ नहीं हुई। हमने तो दूर से ही प्रणाम कर दिया।"

"यह आपने अच्छा नहीं किया। आखिर वह कुछ अपनापन लेकर ही तो आई होगी। अतिथि सत्कार तो आपका धर्म था।"

"उसकी चंचलता मेरी भी दृष्टि में नारी की सबसे बड़ी शत्रु है।"

"चलो छोड़ो इस व्यर्थ की सिरदर्दी को। अब एक तीसरी प्याली अपने सीधे हाथ से बनाकर और पिला दो।"

"देखो राजेश! सीधे हाथ से प्याली माँगने वालों को सीधे ही हाथ से पकड़ना भी चाहिए। मैं इस समय इस विनोद को गम्भीरता में बदलने के लिये विवश हो गई हूँ। आपको स्मरण होगा, मैं तीसरी नहीं, बल्कि आपके जीवन में आने वाली प्रथम प्याली हूँ। शिक्षा काल में सर्वप्रथम मैंने ही आप को मन की आँखों से देखा था। मैंने आप में क्या देखा? इसका मुझे ज्ञान नहीं है हाँ इतना पता है कि कुछ देखा अवश्य था। रजनी हम दोनों के मध्य में आ गई। मैं फिर पीछे हट गई। जानते हो क्यों? इसीलिये कि मैं आपको प्रसन्न देखना चाहती थी। रजनी आपके मन की मल्लिका बनी और फिर मैंने कालेज ही छोड़ दिया। मैं आपको मन ही मन अपना चुकी थी। जब आप मेरे न बन सके, तो मैंने दृष्टि को दूर कर लिया। अब विधाता को न जाने क्या मंजूर है हम फिर निकट आ गये हैं अब मैं चाहती हूँ कि निकटता जीवन का केवल वरदान बने। सत्य मानो। अभिशाप को ग्रहण करने की अब मुझमें शक्ति ही नहीं है। इसीलिये मेरी प्रार्थना है आप मुझे तीसरी प्याली न जानकर प्रथम प्याली ही समझें तो उत्तम है।"

"आज तो तुमने सारी ही घुटन का दमन कर दिया है राधा। भविष्य के लिये कुछ भी नहीं रखा।"

इसीलिये कि अब आप विवाहित हैं। आपके ही शब्दों में आप रजनी से प्यार कर चुके हैं और राजेश्वरी से विवाह। इस स्थिति में आपका मेरे निकट आना सर्वथा अनुचित है। मैं आपको अपना समझती हूँ, किस रूप में, वह मैं स्वयँ नहीं जानती। मेरे जीवन में माता-पिता के संरक्षण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मैं इस स्थिति में आपको किसी भी मधुर सम्बन्ध से बाँधकर जीवन में चल सकती हूँ। और यदि आप मुझे रागात्मक सम्बन्ध सूत्र में ही बाँधना चाहते हैं तो सुन लीजिये। इस बार मैं पीछे नहीं हट सकती। नारी को आप अभी पूर्ण रूप से नहीं जानते। नारी जिसको एक बार मन का मीत बना

लेती है। उसको जीतना ही चाहती है। यदि उसे हार मिले, तो वह कुछ भी कर बैठने में संकोच नहीं करती।

राजेश मन ही मन सोचने लगा—राधा साधारण युवती नहीं है जिसको रविवार के मनोविनोद का केवल साधन बनाया जा सके। राधा ने जो कुछ कहा, उसकी राजेश को स्वप्न में भी आशा न थी। राधा के अन्दर कितना बड़ा ज्वालमुखी सुलग रहा है इसका उसे आज ही आभास हुआ है वह कुछ संभल कर बोला—

"तुमने आज जो कुछ कहा है, उसका मेरे पास एक ही उत्तर है राधा! मैं चाहता हूँ कि किसी प्रकार भी अपने अतीत को पूर्ण रूप से भूल जाऊँ। आज मैं जान गया हूँ कि तुम मेरी बिखरी हुई दृष्टि को समेट कर अपनी ओर खींच सकती हो। सचमुच यदि तुम इस दृष्टि से कुछ बलिदान कर सको, मैं अपना सर्वस्व ही तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर दूं।"

"क्या आपने चाँदनी रात में सागर के तह पर खड़ा होकर कभी देखा है, नहीं देखा तो कभी देखना। प्रत्येक लहर तट से टकरा कर लौट जाती है।"

"तुम्हारा मतलब यही है कि सागर चाँद को हृदय में छुपाकर तट से टकराता है। और शान्ति पा लेता है।

"जी हाँ। रजनी आपके हृदय सागर का चाँद है और राजेश्वरी तट। फिर भी आप अशान्त हैं। अब बताइये मैं आपकी किस प्रकार जीवन साथिन बन सकती हूँ। थोड़ा व्यावहारिक पक्ष पर भी तो विचार कर लो।"

"तो क्या तुम मेरे जीवन का बल नहीं बन सकतीं।"

"मैं तो आप से भी अबल हूँ राजेश।"

"अच्छा आज्ञा दो। अब चलें।"

राजेश उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वहाँ से चला आया। उसके जाते ही राधा को लगा—जैसे राजेश कुछ क्रुद्ध होकर गया है।

वह भी द्वार बन्द कर राजेश के पास ही पहुंच गई। देखते ही राजेश बोला—

"आओ राधा ! क्या दया उमड़ आई। बैठो।"

"दुःख तो यही है आप दोनों से दया, अबल से बल और काफर से वीरता की अपेक्षा कर रहे हैं।"

"मैं क्या कर रहा हूँ और क्या करना चाहता हूँ, इसका तो मुझे भी ज्ञान नहीं है राधा देवी। तुम्हारे पास से आता हुआ सोच रहा था कि अब मैं इस कार्य को छोड़ कोई ऐसा कार्य करूँ जिसको करते हुए जीवन का बलिदान हो जाय। अपना अधिकार तो पाने की अब जीवन में आशा नहीं है, सोचता हूँ दूसरो के अधिकारों का ही समर्थन करने लगूँ।"

"सूझ तो अच्छी है आपकी। क्या करेंगे भविष्य में ?"

"मिल मजदूरों के अधिकारों की सुरक्षा।"

"आप भूल न करो। आपके पाँवों में बेड़ियाँ पड़ी हैं।"

"वह और कहो, लोहे की हैं सोने की नहीं।"

"बेड़ियाँ तो बेड़ियाँ ही हैं। चाहे वह सोने की हों और चाहे लोहे की।"

"छोड़ो इस व्यर्थ के विवाद को। अब यह बताओ चाय पियोगी या नहीं।"

"यदि आप पिलायेंगे तो अवश्य पिऊंगी।"

राजेश ने अपनी पत्नी को चाय बनाने को जैसे ही कहा, राधा भी रसोई में चली गई। वह राजेश्वरी से बोली—

"लाओ भाभी जी आज मेरे हाथ की चाय पीने दो।"

"घर पर तो तुमने अपने ही हाथ की पिलाई होगी। यहाँ मुझे ही बना लेने दो। किसी का अधिकार नहीं छीना करते।"

व्यंग को समझकर भी राधा ने सुनी अनसुनी करते हुए कहा—

"मैं भी तो आपकी छोटी बहन हूँ।"

"मुझे किसी को बहन या भाई बनाने की भूख नहीं है।"

"राधा अपना-सा मुँह लेकर उठी और चुपचाप चली गई। राजेश की समझ में ही नहीं आया कि क्या हो गया है उसने राधा को रोका किन्तु वह न मानी। राधा के मुख पर कुछ क्रोध की रेखायें उभर आई थीं।"

"क्या कह दिया तुमने राधा को ?"

"कहना मुझे क्या है। मुझे तो इस लड़की का यहाँ पर आना-जाना अच्छा नहीं लगता। चाय बनाना चाहती थी। मैंने मना कर दिया।"

"मैं पूछता हूँ तुम इस लड़की से इतनी क्यों जलती हो।"

"यह भी कोई पूछने की बात है जब यह मेरी चीज पर गिद्ध जैसी दृष्टि लगाये हुए है, तो फिर मुझे भी जलन हो जाती है।"

"तुमने तो एक दिन कहा था—दूसरा विवाह कर लो।"

"यह तो अब भी कह रही हूँ। इस प्रकार लुक छिप कर मिलने से तो विवाह करना ही अच्छा है।"

"अच्छा अब चुपचाप खाना बना लो।"

"पहले आपके सिर की मालिश करूंगी। फिर खाना बनाऊंगी। रोज नहीं तो इतवार को तो तेल डाल ही लिया करो सिर में।"

और फिर राजेश मालिश कराने के लिये कुर्सी पर बैठ गया।

२५

धर्मार्थी जी ने राजेश को एक फोड़ा समझकर पहले उपचार किया। जब वह न दबा तो उसे काटकर फेंक दिया। एक दिन सवेरे की कक्षा में जब राजेश पढ़ाने पहुंचा उसे सूचना मिली-हमने दूसरे अध्यायपक का प्रबन्ध कर लिया है। आपको कार्य मुक्त कर दिया गया है।" सूचना पाकर राजेश विचलित न हुआ। यह सब उसके लिये प्रत्याशित घटना थी। उसने उस दिन उपस्थित मजदूरों से कह दिया—मैं अब आप लोगों की चौगुनी सेवा करूँगा। आपसे मिलने प्रतिदिन आऊँगा।

अब राजेश कम से कम आठ घन्टे मिल के क्वार्टरों में रहता है. प्रत्येक के घर जाता है। सबके हृदय में नवीन भावों का जागरण करता है। विचारों में नवीनता को जन्म देता है कुछ पहाड़ियों को छोड़ कर शेष मजदूर सब उसके साथ हैं। मजदूरों की संगठित सभा की गतिविधियां जोरों पर हैं। राजेश संगठन सभा से सौ रुपये मासिक लेता है। सौ रुपये उसे संध्या को किसी निजी विद्यालय में पढ़ाने से मिल जाते हैं। उसका कार्य पहले से ठीक चल रहा है। अब केवल इतना परिवर्तन अवश्य है कि धर्मार्थी जी ने उसके पीछे चार गुंडे लगा दिये हैं उनसे उसे थोड़ा संभल कर चलना पड़ता है। यथा समय वह गुडों और पहाड़ियों से भी मिलने का प्रयत्न करता है। वह जानता है—ये अभी अन्धे हैं। आँखें होने पर मार्ग की पहचान कर ही लेंगे.

राजेश के सम्मुख जटिल प्रश्न यह है कि इन मज़दूरों में जोमिथ्या

भ्रान्तियाँ जन्म पा गई हैं उनका निराकरण कैसे किया जाये ? धर्मार्थी जी ने उनको विचित्र संस्कारों में ढाल दिया है। कुछ बावली और कुछ भूतों की मारी, यही दशा है मजदूरों की। कुछ उनकी अपनी अनेक दुर्बलता संस्कार वश ही होती हैं। कुछ धर्मार्थी जी ने नई उत्पन्न कर दी है। सब ही मजदूर मानते हैं कि कोई भी आदमी पूर्व जन्म के पाप और पुन्य के फल से छोटा या बड़ा होता है। ऐसी कितनी ही मान्यतायें है जिनका आमूल विनाश किये बिना मजदूरों का उत्थान हो ही नहीं सकता।

राजेश अब मिल की छुट्टी वाले दिन विशाल सभा का आयोजन अवश्य करता है। आज भी मिल की छुट्टी है। राजेश ने चार बजे एक मजदूर सभा की व्यवस्था की है। छुट्टी वाले दिन धर्मार्थी जी का मजदूरों के लिये मनोरंजन कार्यक्रम का निश्चित समय छह बजे है। आज उनको पता चल गया है कि राजेश ने चार बजे मजदूरों की एक सभा बुलाई है। इसीलिये उन्होंने समय बदल कर चार बजे ही कर दिया। वह जानते हैं कि मजदूर मनोरंजन को छोड़ उस मूर्ख राजेश की बकवाश सुनने थोड़े ही जायेंगे। हुआ भी यही। जब राजेश मिल पहुँचा ठीक चार बजे थे। उन्होने देखा—वहाँ पाँच छह प्रमुख सहयोगी ही विद्यमान थे। राजेश के पहुँचने पर उपस्थिति पचास तक पहुँच गई। राजेश ने कार्यक्रम में कोइ परिवर्तन नहीं किया. निश्चित समय पर भाषण आरम्भ करते हुए उसने कहा—

"प्यारे भाइयो चार मास मैंने आप सबके मध्य रहकर यही देखा है, कि आप पूर्ण रूप से अन्धे हैं। दुनियाँ बदली, पर आप न बदल पाये। पूँजीपति खटमल और जोंक के समान आपका रक्त चूस रहे हैं। आपको जैसे कुछ भी पता नहीं है। आप दिन रात तेली का बैल वनकर पूंजीपतियों के आर्थिक कोल्हू में जुते रहते हैं। आप को जीवित रहने के लिए कुछ दिया जाता है। इसीलिए कि आप इस कोल्हू को खींचते रहें। यह मनोरंजन जिसका प्रति छुट्टी में आपको गिलास भरकर मिलाया जाता है पर ऐसी मदिरा है, जिसको पीकर

आप कुछ देर के लिये सब कुछ भूल जाते हैं।

जो कुछ नहीं करते, वह सब कुछ पाते हैं। जो दिन रात श्रम करते हैं वह कुछ भी नहीं। कभी इस बारे में भी तो सोचो। तुम नौकर हो, और वह मालिक। तुम्हारी कमाई खाते हैं, और तुम्हारे ऊपर ही शासन करते हैं। जिस कपड़े को आप तैयार करते हैं, वह आपको पहनने के लिए कभी नहीं मिलता। आप जितनी बड़ी कोठरी में दस मजदूर निर्वाह करते हो, उससे सेठों के स्नान गृह भी बड़े हैं। आठ घन्टे तक रुई का भक्षण करके आप गले को स्वच्छ करने के लिए छटाँक भर गुड़ भी नहीं पा सकते। इसके विपरीत इन ढोंगी मालिकों की कोठरियों में पड़े हुए फल सड़ते रहते हैं। इनके कुत्तों का भी खर्च आपके परिवार से अधिक होता है। मैं चाहता हूँ आप इस अत्याचार के विरोध में अपनी आवाज को ऊँची उठायें। तभी बड़ों के कान खुलेंगे।

बहुत से भाई समझते हैं—सबको छोटा या बड़ा भगवान बनाता है। मैं इस मत का विरोधी हूँ। भगवान ने हमें बनाया है यह ठीक है। उसने हमको छोटा या बड़ा बनाया है, यह बिल्कुल गलत बात है। जन्म और मृत्यु के समय सब एक जैसे ही होते हैं। यह अन्तर तो छोटे बड़ों में दिखाई देता है। समाज को आर्थिक ढाँचे के दोष पूर्ण होने के कारण है। पूर्व जन्म के फल की दुहाई देने वाले इन पूँजीपतियों से कभी पूछ कर देखो कि हमने भगवान की क्या घोड़ी खोल ली है जो दिन रात श्रम करके भी हम भूखे मरते हैं। सत्य मानो मनुष्य अपने भाग्य का स्वयँ निर्माण करता है। किसी युग में राजा भी यही कहा करते थे। आज आप देखिये, उनके वंश भी नष्ट कर दिये गये हैं। इसमें दुनियाँ को कितना लाभ हुआ है कभी सोचा है।

धन्यवाद कहकर राजेश भाषण समाप्त कर जैसे ही बैठा, एक मजदूर बोल पड़ा—

"मिल किसका है, और हमारा क्या अधिकार है। इस विषय पर विचार करने वाले आप कौन हैं श्रीमान् जी। आप भी तो सौ रुपये

महीने इन मजदूरों की कमाई से खाते हैं। गन्ना जहाँ भी जायेगा, उसका रस चूसा ही जायेगा।"

राजेश खड़ा हुआ और विनम्र भाव से बोला—

"आपका कथन किसी समय तक सत्य है मेरे भाई। मैं आठ घन्टे आप भाइयों के साथ रहता हूँ, तब सौ रुपये लेता हूँ। इससे पूर्व जब चार घन्टे काम करता था तो मुझे डेढ सौ रुपये मिलते थे। और यदि मैं मिल मालिकों के हाथ का खिलौना बन जाता तो और भी अधिक पा सकता था। यदि आप भाइयों को यह सौ रुपये का भार दिखाई देते है तो भविष्य में मैं एक पैसा भी नही लूंगा। और बोलिये आपको क्या आपत्ति है?"

श्रोताओं में एक और मजदूर खड़ा होकर बोला—

"आप इसकी बातों पर ध्यान न दें। यह धर्मार्थी जी का भाड़े का टट्टू है। इस समय यह बात इसकी नहीं है।"

राजेश समय की गति को पहचान गया। शान्ति स्थापना के लिए वह बोला—

'ऐसा न कहो भाई। यह भी हमारा साथी है। इसके भी अपने अपने विचार हैं सभा में सबको ही अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है। हो सकता है एक दिन इनके विचार बदल जायें।"

राजेश के इस कथन से प्रथम मजदूर लज्जित सा होकर बोला—

"मैं माफी चाहता हूँ अपनी भूल की। सचमुच मैंने जो कुछ कहा है किसी के सिखाने से ही कहा है।"

विवाद में छह बज गये। उसी समय ड्रामा समाप्त हो गया। सारे मजदूर कुछ ही देर में एकत्र हो गये। राजेश ने समय का लाभ उठाया अपने विचारों को संक्षेप में मजदूरों के सम्मुख पुनः रखा और फिर कार्य सूची तैयार की गई। वहाँ से जब राजेश चला साढ़े सात बज चुके थे। उसके जाते ही धर्मार्थी जी वहाँ आ गये। उन्होंने यह व्यवस्था पहले ही की हुई थी। कुछ देर उन्होंने अपनी खिचड़ी पकाई.

"भाइयो ! कुछ देर पहले जो सज्जन नेतागिरी करके यहाँ से गये हैं। आप शायद उनसे परिचित नहीं हैं। वह न हाथ के सच्चे हैं और न ही चरित्र के पक्के। इसीलिये मैंने उन्हें यहाँ से निकाल दिया है। मुझे दुःख होता है वह मेरे परिवार के घरों में खुला साँड बन कर घूमता है। यह जिन सेठ जी की बुराई करता है यह मिल उन्हीं का तो चलाया हुआ है। पेड़ के लगाने वाले हैं वे और हम हैं इसके माली। इससे फल हमको भी खाने हैं। आपको मैंने कितनी बार कहा है। मैं आपका बड़ा भाई हूँ। जो कठिनाई हो आप मुझसे कहें। मैं सेठ जी के पास पहुंचाऊँगा। मुझे ऐसे बिचौलिये नहीं चाहिएँ। हम और आप एक हैं। कहता है सब बराबर होने चाहिएँ। भला यह तो बताओ जब हाथ की पाँचों उँगलियाँ भी बराबर नहीं तो फिर आदमी सब कैसे बराबर हो सकते हैं।

धर्मार्थी जी का भाषण चल ही रहा था कि एक ओर से उपस्थित श्रोताओं में भगदड़ पड़ गई। धड़ाधड़ पत्थरों की बौछार से भागते हुए भी कई मजदूरों के चोटें आई। धर्मार्थी जी की भी नाक पर एक पत्थर लगा। वह फिर चारों गुंडों से घिरे हुए वहाँ से दुम दबाकर भाग गये। बात यह हुई—राजेश बीच में से ही लौट आया था। कुछ मजदूर जो उसके पक्के साथी हैं उन्होंने एक पल में ही यह योजना बनाकर कार्यान्वित कर दी। राजेश ने मना भी किया किन्तु वह न माने।

और फिर दस मिनट में ही सभा स्थली शमशान सी बन गई।

राजेश जब घर पहुंचा आठ बज चुके थे। राजेश्वरी उसकी प्रतीक्षा में सदैव के समान द्वार पर खड़ी थी। राजेश को देखते ही वह बोली—

"आज तो आपको बहुत देर हो गई। खाना भी ठंडा हो गया।"

"व्यर्थ की बातें न करो। पानी लाओ।" राजेश के स्वर में उत्तेजना थी।

राजेश्वरी पानी देकर रसोई में चली गई। जब वह थाली लगाकर

लाई, राजेश बिना हाथ धोये खड़ा था। वह भी थाली लेकर चुपचाप उसके पास खड़ी हो गई। राजेश ने कर्कश स्वर में फिर कहा—

"खड़ी क्यों हो ? थाली रखकर बैठ जाओ।"

राजेश्वरी ने हार्दिक श्रद्धा व्यक्त की—

"आप इतना काम न किया करें। अभी हमारे कौन बच्चे रो रहे हैं।"

"कहा है न! थाली रख दो और अपना काम करो।"

"आपकी सेवा से बड़ा और मुझे क्या काम है ?"

"मुझे तुम्हारी सेवा की भूख नहीं है। ले जाओ थाली को।"

राजेश के इस अकारण क्रोधावेश को देख राजेश्वरी की आँखों में आँसू छलक आये। वह थाली को रसोई में रखकर सिसकियाँ भरने लगी। राजेश कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। उसे किसी अज्ञात शक्ति से एक झटका सा लगा। झटके साथ ही, उसके पाँव रसोई की ओर बढ़ने लगे। रसोई में पहुँच उसने राजेश्वरी को दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया। उसने जैसे ही राजेश्वरी को हृदय से लगाया वह गद्‌गद् हो गई। उसकी आँखें गीली थीं, परन्तु मुख पर मुस्कान इधर-उधर लुढ़क रही थी। राजेश्वरी की देह एक ही क्षण में ढीली हो गई। वह जैसे फिसल पड़ी हो। उसने राजेश के पाँवों पर सिर टिका दिया। राजेश फूट पड़ा—

"मुझे क्षमा कर दो मेरी राजो। मेरी आँखों में दिल्ली की रंगीन तितलियों के पंखों की छाया ने पड़कर मुझे अन्धा सा बना दिया था। अब तुम्हारे अनुराग की प्रकाश किरणें उस अन्धकार को लील गई हैं। सत्य मानो अब वह छाया इन आँखों के कभी निकट भी नहीं आयेगी।"

राजेश्वरी उठी और राजेश के मुख पर हाथ रख कर खड़ी हो गई। उस समय उसकी दृष्टि राजेश की आँखों में गड़ी हुई थी।

"तो क्या अब मुझे बोलने भी नहीं दोगी ?"

राजेश्वरी कुछ न बोल पाई। उसने अपने दोनों हाथ फिर राजेश की ग्रीवा में डाल दिये। दृष्टि से दृष्टि अब भी टकरा रही थी। राजेश

ने सीधे हाथ की एक उंगली से राजेश्वरी के कपोल को छूते हुए कहा—

"अच्छा अब भोजन एक साथ करेंगे · खाना जल्दी लाओ।"

राजेश्वरी उठी और रसोई से थाली लगा कर ले आई। राजेश ने पहला कौर अपने हाथ से उसी को खिलाया।

राजेश्वरी को लगा—जैसे यह मेरे जीवन की सबसे सुन्दर घड़ी है।

२६

शब्द बाण का घाव तीर और तलवार से भी अधिक होता है। रजनी ने यह पढ़ा था। उस दिन राजेश के शब्दों से यह अनुभव भी कर लिया। जब वह राजेश से प्रताड़ना पाकर सड़क पर आई उसे चक्कर सा आ गया। उसके पांव लड़खड़ाने लगे। जैसे उस पर वज्रा-घात हो गया हो। राजेश के शब्द "मैं तुम्हें नहीं जानता" उसकी श्रुतियों में न भरने वाला घाव कर रहे थे। राजेश से यह आशा उसे स्वप्न में भी न थी।

जीवन पथ में निरन्तर पाषाणों से टकराने के पश्चात् पगों में कठोरता आ जाती है। रजनी तो न जाने कितनी चट्टानों से टकरा चुकी है। सदैव के समान वह संभली। उसने साहस बटोर कर आगे बढ़ने का निश्चय किया। कुछ देर तक वह भारी पगों से सड़क पर यूं ही आगे बढ़ती रही। वह इस समय केवल एक ही बात सोच रही थी अब मैं कहाँ जाऊँ? एक बार उसने सोचा मिल के मालिक सेठ करोड़ीमल से मिलूं। सेठ लोग चाहे दिखावे के लिए ही क्यों न हों, परन्तु होते हैं दयावान। जब वह शिक्षा काल में छात्रवृत्ति दे सकते हैं, तो क्या कोई कार्य नहीं देगें।

रजनी ने अपने इस निश्चय का स्वयं ही विरोध कर दिया । धर्मार्थी के होते हुए सेठ जी से कोई भी आशा व्यर्थ है । दूसरे वह अब इस स्थिति में है । भला सेठ जी धर्म के कट्टर समर्थक मुझे माता बनते कैसे देख सकेंगे । मैं तो अब उनकी दृष्टि में केवल एक दुराचारिणी ही रह गई हूँ । वह फिर करोल बाग की ओर बढ़ती ही चली गई। जिस समय वह अजमल खाँ पार्क के पास पहुँची, ग्यारह बज चुके थे। उसने निश्चय किया—थोड़ी देर यहाँ शान्ति से बैठकर भावी निश्चय की व्यावहारिकता पर विचार करूँगी ।

रजनी एक पेड़ की छाया में हरी घास पर बैठ गई । वहाँ बैठते ही उसे कुछ शान्ति सी मिली । चिन्तन के भार से जब उसका मस्तिष्क थक जाता है, उसे सदैव नींद आ जाती है । किन्तु आज उसे प्रकृति नटी ने थपकियां देकर सोने के लिए विवश कर दिया । वह गहरी नींद में डूब गई । लगभग दो घण्टे तक वह अचेत सोती रही। एक बजे जब वह उठी, उसने ऐसा देखा—हाथ में सोने की चूड़ी न थीं। कब निकली चूडी । उस की समझ में नहीं आया। कुछ देर वह संज्ञा शून्य सी शान्त बैठी रही । चूड़ियाँ राजेश के सुहाग की स्मृति थीं। एक सवेरे बिक गई और दूसरी इस समय किसी की भेंट चढ़ गई । चूड़ियों के सोने का आर्थिक संकट इतना न था जितना रजनी इसे मानसिक प्रश्न समझ कर हत्प्रभ सी हो गई थी ।

रजनी को इस समय राजेश पर भी कुछ देर के लिये क्रोध उमड़ पड़ा । सचमुच राजेश ने मेरे जीवन को ऐसी विषय पहेली बना दिया है, जिसको अब विधाता भी न सुलझा सकेगा । हल्की फुल्की मुस्कानों से मेरे सर्वस्व को छीनकर राजेश अब चैन की बंशी बजाना चाहता है । जो सुख देता है, उसे दुःख भी देने का अधिकार है । वह स्मरण कर रजनी का क्रोध कुछ शान्त हो गया। उसने निश्चय किया—एक दिन मैं राजेश की आँखों से भ्रम के पर्दे हटाकर दम लूँगी ।

रजनी साहस बटार कर उठी, और पार्क में ही दूसरे स्थान पर बैठ गई । जैसे वह उस स्थान को अशुभ मान बैठी हो जब वह दूसरे

स्थान पर सिर झुकाये बैठी थी, उस समय एक युवक उसके पास आया। वह रजनी से बोला—

"कहिए देवी जी ! क्या सारा दिन पार्क में ही बिताना है ?"

रजनी ने दृष्टि उठाकर ऊपर देखा, और एक ही क्षण में फिर दृष्टि झुका ली। उसकी लुभावनी आकृति को देख युवक का हृदय उमड़ आया। उसके स्वर में कोमलता आई।

"देखो बहन। पार्क में भले घर की लड़कियों को सोना नहीं चाहिए। यहाँ सब ही प्रकार के आदमी आते हैं।"

"ठीक है मेरे भाई। अब मैं आपसे पूछती हूँ, जिसका कोई घर ही न हो वह सोने के लिए कहाँ जाये। जिस पृथ्वी पर मैं सो रही थी, आखिर वही तो है सबकी अन्तिम सेज। फिर बताओ मैंने क्या अपराध किया है।

युवक ने देखा— रजनी की आँखों में आँसू उबलना चाहते हैं और वह उनका बलपूर्वक दमन कर रही है। वह बोला—

"लो बहन अपनी चूड़ी। यह तुम्हें एक शिक्षा दी है। भविष्य में पार्क में कभी न सोना।"

"धन्यवाद भाई। सचमुच तुमने बड़ा उपकार किया है।"

युवक वहाँ से चला गया। उसके जाते ही रजनी को लगा— ईश्वर के घर न्याय है। मेरी चूड़ी मिल गई। इसका सीधा अर्थ है जिसके सुहाग का चिन्ह ये चूड़ी है, वह भी मिलकर ही रहेगा। रजनी फिर वहाँ से उठकर चल पड़ी। उसने निश्चय किया इस समय कुछ भोजन कर संध्या को धर्मशाला में रहूँगी।

रजनी ने सड़क पर चलते हुए एक फल वाले से एक गिलास सन्तरे का रस पिया। उसको पीकर वह सड़क पर चलती ही चली गई। वह चलती-चलती तेलीवाड़े पहुँच गई। धर्मशाला का वहाँ उसने पता पूछा। उसे एक छोटी सी धर्मशाला बहुत खोज के पश्चात् मिल गई। धर्मशाला किसी सेठ की थी, और उसके प्रबन्धक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। वह उनसे साहस बटोरकर बोली—

"मुझे धर्मशाला में ठहरना है बाबाजी ।"

"धर्मशाला तो है ही ठहरने के लिए बेटी । अब तुम यह बताओ तुम्हारा सामान कहाँ है ? और तुम अकेली क्यों हो ?"

रजनी इस कथन को सुनकर कुछ देर हत् वाक्य बनी रही । वह क्या कहे ? उसकी समझ में ही नहीं आया । उसको शान्त देख पंडित जी उसकी आकृति को पढ़ते हुए से बोले—

"बोलती क्यों नहीं बेटी ? नाम पता तो लिखवाना ही होगा ।"

इस समय रजनी की आँखें आँसुओं से भर गईं । वह बोल कुछ न पाई । वृद्ध ने विश्वास कर लिया । इस युवती के जीवन में कोई रहस्य अवश्य है । इसको ठहराने से पहले जानकारी भी आवश्यक है । वृद्ध अनुभवी ब्राह्मण के मन में रजनी के प्रति इस समय करुणा भी उमड़ रही थी । वह धर्म संकट में पड़ गया । कुछ विचार कर वह बोला—

"देखो बेटी । यहाँ ठहरने के लिए जो नियम हैं मैं उनका पालन करूँगा । और यदि तुम मुझे रोने का कारण बता दो, तो जो मुझसे बन सकेगा, तुम्हारी सहायता भी करूँगा ।"

रजनी ने फिर संक्षेप में अपनी व्यथागाथा वृद्ध को सुना दी । वृद्ध की अनुभवी आँखों ने भी कुछ पढ़ा । उस समय उसको विश्वास हो गया । रजनी का प्रत्येक शब्द उसके हृदय पर अंकित होता हुआ चला गया । उसने मन ही मन निश्चय किया । क्यों न इसको घर पर ठहराया जाये ।" कुछ विचार कर वृद्ध बोला—

"यदि उचित समझो तो तुम बेटी बनकर घर हमारे साथ भी ठहर सकती हो । धर्मपुत्री स्वीकार कर मैं जो हो सकेगा, तुम्हारी और सहायता भी कर सकूँगा और वहाँ तुम्हें पिता के साथ माता भी मिल जायेंगी ।"

रजनी को जैसे तिनके का सहारा मिल गया हो । कुछ विचार कर वह श्रद्धा भरे स्वर में वृद्ध से बोली—

"कहाँ है पिताजी ! आपका घर ?"

"मकान क्या है वह भी एक छोटी सी कोठरी है । बारहटूटी

पर। चालीस वर्ष से हम उसी में रहते हैं। किराया पाँच रुपये है। इसीलिए उसमें दिन बिता रहे हैं हम दो प्राणी हैं। तुम्हारे बहन भाई सात बच्चे थे, परन्तु आँखों के सामने कोई नहीं। सब भगवान के प्यारे हो गये। कहो तो तुम्हें तुम्हारी माता से मिला दूँ।"

रजनी अपनी भूल कुछ देर तक वृद्ध ब्राह्मण के विषय में सोचती रही। रजनी ने पाया सचमुच दुनियाँ में एक से अधिक एक दुखिया पड़ा है। रजनी के मन के एक कोने में कहीं पर कुछ शंका अंकुरित थी। उसने उसका दमन किया। वह जानती है—विश्वास देकर ही पाया जा सकता है। वह बोली—

"यह तो मेरा सौभाग्य होगा बाबा, जो आप जैसे माता-पिता की सेवा का अवसर मुझे मिल जाय। कितनी देर में चलोगे आप?"

"अभी चलो बेटी! पहले तुमको ही घर पर छोड़ आता हूँ।"

दोनों फिर वहाँ से चल पड़े। दस मिनट में जब वह दोनों कोठरी में पहुँचे वृद्धा खाना बनाकर लेटी हुई थी। वृद्ध बोला—

"अरे देखो! हम तुम्हारे लिए पढ़ी-लिखी बेटी लाये हैं।"

वृद्धा ब्राह्मणी ने अपने दोनों खुर्दरे हाथ रजनी के सिर पर टिका दिए। रजनी को इस समय जो कुछ अनुभव हुआ, वह उसे जीवन का प्रथम अनुभव जान पड़ा। यह सुख उसे राजेश के हाथों से भी कभी अनुभव नहीं हुआ था। उसने कुछ नया जीवन सा पा लिया वहाँ पहुँच उसे विश्वास हो गया। यहाँ कोई छल या कपट पास-पड़ौस में भी नहीं है। वृद्ध और वृद्धा दोनों के मुख पर वात्सल्य भावना का सागर उमड़ रहा था। वृद्धा फिर रजनी के बच्चे के समान ही अपने पास बिठाकर उससे बातों में खो गई। वृद्ध ने बात की श्रृंखला भंग की—

"पहले खाना तो बनाओ। बातें पीछे ही कर लेना।"

"खाना तो बना रखा है। आप भी अभी खायेंगे क्या?"

"पहले बिटिया को खिलाओ। मैं तो अभी धर्मशाला जाऊँगा।"

"नहीं पिताजी! मैं आपके साथ ही खाऊँगी।"

"नहीं बेटी हमारी चिन्ता मत करो। तुम खाना खालो।"

रजनी इस समय सोचने लगी—यह देवता भी इसी दुनियाँ में रहते हैं, जिनको दूसरों की चिन्ता में अपनी चिन्ता ही नहीं है विपरीत इसके वह भी मानव समुदाय इसी दुनियाँ में है जो दिन-रात दूसरों को चिन्तित बनाये रहते हैं। वह बोली—

"आप कितनी देर में आयेंगे पिताजी ?"

"मुझे तो एक घन्टा लग जाएगा बेटी।"

"कोई बात नहीं। मैं आपके साथ ही खाऊँगी।"

वृद्ध चला गया। उसके जाते ही रजनी ने वृद्धा को भी सारी कहानी कह सुनाई। दूसरी ओर वृद्धा ने भी आप बीती संक्षेप में रजनी के सम्मुख प्रस्तुत किया। रजनी ने वृद्धा को धैर्य बँधाया। बातों में एक घण्टा पल भर में ही बीत गया। उसी समय वृद्ध भी वहाँ आ गया। वह आते ही बोला—

"अभी बातें ही कर रही हो। लाओ खाना दो जल्दी। बड़ी भूख लगी है। बिटिया भी तो भूखी होगी।"

दोनों खाना खाने बैठ गये। उसी समय वृद्ध बोला—

"देखो बेटी। सुख और दुःख के अद्भुत मिश्रण का नाम ही तो जीवन है इसीलिये जीवन की यात्रा में हमें फूल और शूल दोनों से प्यार करना चाहिए। आपत्तियों से घबराने वाला व्यक्ति जीवन यात्रा के महत्त्व को जान ही नहीं सकता। सृष्टि के अज्ञात चित्रकार ने दुःख निरपेक्ष सुख का निर्माण ही नहीं किया।"

"बड़ा कठोर है इस सृष्टि का निर्माता बाबा।"

"वृद्धा से चुप न रहा गया। वह बोली—

"बेटी को खाना खा लेने दो। तुमने तो बीच में ही पढ़ाई आरंभ कर दी। बहुत दिन पड़े हैं इसके लिये तो।"

"सारे जीवन में यह प्रथम अवसर मिला है कि किसी को बच्चा कहकर शिक्षा दूँ। और बीच में ही टोक दिया।"

वृद्धा भी फिर बातों में जुट गई और तीनों उस रात बारह बजे सोये।

इस रात्री रजनी ने कोई स्वप्न नहीं देखा।

२७

अगले दिन रजनी जब सोकर उठी सात बज चुके थे। वृद्धा उस समय पूजा पाठ से निवृत होकर खाना बना रही थी। वृद्ध धर्मशाला जाने के लिए तत्पर थे। रजनी ने उठते ही दोनों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। प्रणाम का उत्तर दे वृद्ध रजनी से बोला—

"तुम कहीं जाओगी तो नहीं, बेटी ?"

"जाना तो मुझे कहीं नहीं है पिता जी। एक विचार अवश्य है, यदि आज्ञा हो तो प्रस्तुत करूँ ?"

"कहो बेटी ! आज्ञा की क्या बात है। हम तो चाहते हैं तुम हमारे पास निश्चिंत रहो। रूखी-सूखी जो हम खायेंगे तुम्हें पहले खिलायेंगे।"

"मैं चाहती हूँ कोई नौकरी खोज लूं। इसी विषय में कहीं जाना है।"

"मैं तो इस पक्ष में ही नहीं हूँ कि लड़कियाँ नौकरी करें। मुझे इस समय सत्तर रुपये मिलते हैं। इनसे हम तीनों का निर्वाह हो ही जायेगा। फिर बताओ तुम्हें, नौकरी की क्या आवश्यकता है ?"

"ठीक है पिता जी। फिर भी मैं समझती हूँ, मुझे नौकरी करनी ही पड़ेगी। अब से ही खोज करूँगी तब कहीं महीनों में जाकर नौकरी मिलेगी।"

"जब जरूरत होगी तो देखा जायेगा। अभी पानी से पहले पाल क्यों बाँधती हो। अभी तो कार्य चल ही रहा है।"

वृद्धा ने कुछ वृद्ध का समर्थन किया—

"हाँ बेटी ! अभी तुम्हें नौकरी नहीं करनी है।"

"देखो माता जी ! जमाना अब बदल गया है। लड़कियाँ अब प्रत्येक क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। आप देखेंगी, सेना में भी लड़कियों का प्रवेश हो गया है। फिर बताइये मैं नौकरी कैसे न करूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। इसीलिये मुझे तो नौकरी करनी ही चाहिए। ईश्वर ने जहाँ आपको सन्तान दी है, वहीं पर मुझे भी तो माता-पिता की सेवा का शुभ अवसर दिया है। इसीलिए मुझे इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।"

वृद्धा उठी और वृद्ध के कानों में चुपके से कुछ कहा। पत्नी की सुनकर वृद्ध रजनी से बोले—

"देख लो बेटी ! इस समय तुम नौकरी की स्थिति में नहीं हो। चार महीने पश्चात् ही कर लेना।"

रजनी समझ गई कि माता जी ने कानों में क्या कहा है। उसकी गर्दन लज्जा के भार से झुक गई। उसको शान्त देख वृद्धा बोली— "चलो फिर खोज लो बेटी। नौकरी में बुराई भी क्या है। आजकल तो वह स्त्रियाँ भी नौकरी करती हैं, जिनके पति हजारों कमाते हैं। हमारा तो आगे चलकर खर्च भी बढ़ने वाला है। आज तीन हैं तो आगे चार हो जायेंगे। इतना ध्यान रहे जल्दी लौटना।"

इस समय वृद्धा के पोपले मुख पर हल्की मुस्कान थी। वृद्ध न जाने कौन सी मधुर कल्पनाओं में खोये हुए थे। रजनी की दृष्टि अब भी नीचे झुकी हुई थी। वृद्ध ने विषय परिवर्तन किया—

"अब तुम खाना बन्द करके चाय तो बनाओ। बातों में यह भी भूल गई कि बेटी को चाय भी पिलानी है। जानती नहीं हो आजकल के युवक और युवतियाँ तो चाय के बिना चल ही नहीं सकते। रजनी के सिर में तो दर्द भी हो रहा होगा। जल्दी करो।"

"ऐसी बात नहीं है पिता जी ? मुझे तो सब कुछ सहने की आदत हो गई है। कल तो चाय क्या रोटी भी शाम को ही मिली थी।"

वृद्धा ने शीघ्रता से तीन कप चाय तैयार की। वृद्ध चाय पीकर सीधे धर्मशाला चले गये। उनके जाते ही वृद्धा से रजनी ने कहा—

"यदि आप की आज्ञा हो तो दो घन्टे के लिये चली जाऊँ ?"

"चली तो जाओ, पर कहीं भटक न जाना। अपना काम करके सीधी घर चली आना। तुम विश्वास करो रजनी ? हम निर्धन अवश्य हैं। फिर भी अपनी सन्तान के प्रति कर्तव्य को जानते हैं। उसका हम पालन करेंगे। इस समय तुम कहीं भटकती फिरो यह हम नहीं चाहते।"

"क्या कह रही हो माता जी ! जितनी भटक चुकी हूँ क्या वह कम है। इस समय तो मुझे केवल आपके प्यार की ही भूख है। इतना अवश्य है कि उस प्यार को मैं भार बनकर ग्रहण करना नहीं चाहती। मैं जिस पवित्र अधिकार को पाना चाहती हूँ उसी ने मुझे मेरे कर्तव्य को पढ़ाया है।"

"अच्छा चलो पहले खाना खा लो फिर कहीं जाना।" रजनी भोजन कर सीधी इर्विन अस्पताल पहुँच गई। उसने निश्चय किया क्यों न नर्स बनकर देश की सेवा करूँ। अस्पताल में प्रार्थना पत्र देकर जब वह वहाँ से लौटी, न जाने उसे क्या सूझी—राजेश के पास को चल वह रोहतक रोड पहुँची तीन बजे होंगे। राजेश साईकल द्वारा मिल जा रहा था। रजनी को उसने देख लिया। वह फिर घृणा भरी चंचल दृष्टि डाल सीधा वहाँ से चला गया।

राजेश पर क्रोध भी आया—"किस निर्मोही को मैंने अपना सर्वस्व दे दिया।" धीरे-धीरे वह अपने आप से ही कहने लगी—

"सचमुच रजनी तू भूल से मक्खी निगल गई है। और अब जब तक उसे उगल न लेगी चैन नहीं पड़ सकता। यही वह युवक है जिसकी वासना के भार को ढोती हुई तू इधर-उधर भटक रही है। विपरीत इसके यह है कि मुँह उठा कर भी तुझे नहीं देखता। आखिर ऐसी क्या बात है ? इसमें जो तू इससे पृथक होना ही नहीं चाहती।

जो तुझे भूल गया तू भी उसे भूल जा। प्रेम के दुग्ध पात्र में अब घृणा की खटाई पड़ गई है। इसीलिये मन्थन करने से क्या लाभ।"

रजनी को अज्ञात शक्ति से उत्तर मिला—

"देखो रजनी ग्रहण की समाप्ति पर चाँद और सूर्य और भी अधिक सुहावने होते हैं। पतझर काल की सूनी डाली पर वसन्त ऋतु में सुमनों की शोभा कितनी मनोहर होती है। तूफान के पश्चात मन्थर गति से प्रवाहित पवन सम्पूर्ण रात्री सोने वालों को थपकियाँ देकर सुलाती है। अमावस्या के अन्धकार को आँखों में बसाने वाला व्यक्ति ही चाँदनी के महत्व को जान सकता है। इसीलिये इस समय अधीर न हो।"

कुछ देर रोहतक रोड पर खड़ी रहने के पश्चात् रजनी ताँगे द्वारा सीधी सदर बाजार आ गई। वृद्धा के मन में, कहीं यह आशंका विद्यमान थी—कहीं इस का इधर-उधर को मुँह न उठ जाये। यौवन काल में युवक और युवतियाँ शीघ्र ही निर्णय को कार्यान्वित कर देते हैं। रजनी को देखते ही वृद्धा की आशंका भोर का तारा बन गई। वह तुरन्त चाय बनाने लगी। रजनी ने वृद्धा को रोकते हुए कहा—

"मैं चाय नही पिऊँगी माता जी, आप बैठ जायँ।"

"तुम थक गई होगी बेटी। थोड़ी चाय अवश्य पियो।"

"तो फिर मैं बनाती हूँ। आप पिताजी को सूचित कर दो कि चाय तैयार है। कुछ देर में वह आजायें। साथ ही पियेंगे।"

वृद्धा जब तक वृद्ध को बुलाकर लाई, रजनी ने चाय तैयार कर दी। तीनों ने एक साथ चाय पी और फिर वृद्ध बोला—

"थोड़ा मोम तो गर्म करो बेटी मेरे पैरों में बिवाई खुल रही हैं।" रजनी ने मोम गर्म करके वृद्ध की बिवाइयों में भर दिया। वृद्ध उस समय चारपाई पर लेटा सुखी कल्पनाओं में खोया हुआ था। वह मन ही मन प्रार्थना भी कर रहा था "हे विधाता! तूने जिस मेरे पुन्य के फल से यह सलोनी बेटी दान की है, उसी फल के रूप में मेरी प्रार्थना है कि

इसको मृत्यु पर्यन्त मुझसे अलग न करना। दो अन्धों के हाथ में एक लाठी तो होनी ही चाहिए। आज तक मैं दुर्भाग्य की सराहना करता रहा हूँ और अब मैं सौभाग्यशाली बनकर जीवन की अन्तिम यात्रा समाप्त करना चाहता हूँ। दयालु भगवान मुझ पर दया रखना।"

रजनी भी इस समय मन ही मन अपने भाग्य की सराहना कर रही थी। पिता रूप में उसे अब ही किसी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उसी समय वृद्ध ने करवट बदली। रजनी ने देखा—वृद्ध का कुर्ता कमर से फटा हुआ है। वह उठी और सुई धागा लेकर चारपाई पर बैठकर सीने लगी। वृद्ध बोला—

"क्या कर रही हो बेटी ? बूढ़ों का क्या दिखावा है।"

रजनी मन में सोचने लगी—एक ओर पाँवों में बिवाई फटी है और दूसरी ओर कमर से कुर्ता। तीसरी ओर हृदय भी न जाने कितनी बार काँच के टुकड़े बन चुका है। फिर भी विधाता की कृपा के आभारी हैं। दूसरी ओर वह भी दुनियाँ है जिसका काम ही दूसरों को कुचलते हुये आगे बढ़ते जाना है। वह बोली—

"अब आप धर्मशाला तो नहीं जायेंगे ?"

"बस जा रहा हूँ बेटी तुम आराम करो।"

"मैं अब खाना बनाऊँगी। माता जी को रसोई से छुट्टी।"

"जैसी तुम्हारी माँ बेटियों की इच्छा। मैं चला।"

वृद्ध के जाते ही रजनी खाना बनाने लग गई। वृद्धा उस समय चारपाई पर लेटी हुई आत्म विभोर हो रही थी। अनुपम सुन्दरी रजनी को खाना बनाते हुए देख उसे लग रहा था—जैसे वह दुनियाँ की सौभाग्यशाली स्त्री हो। उसकी दृष्टि रजनी पर जमी थी।

खाना तैयार कर रजनी कुछ लिखने बैठ गई। जब तक वृद्ध धर्मशाला से आये वह लिखती ही रही। वृद्ध आते ही बोले—

"क्या लिख रही हो बेटी ?"

"एक कहानी लिख रही हूँ पिताजी।"

"तो फिर हमें भी सुनाओ।"

"आप पहले खाना खा लें फिर सुनाऊँगी।

दोनों फिर खाना खाने बैठ गये। वृद्धा प्रसन्न चित खाना खिलाती रही। खाना खाते हुए ही वृद्ध बोला—

"देखो बेटी! प्रत्येक प्राणी की जीवन वाटिका में एक मधुमास ऐसा जरूर आता है जिसकी प्रत्येक प्रात: में स्फूर्ति, सुमनों में सौरभ, पगडंडियों में पगों की गुदगुदाहट और लताओं में मनो मुग्धकारी लावण्यता पाई जाती है। प्राणी का धर्म है कि वह आशा और विश्वास के हाथों में धैर्य की पतवार थमा कर संसार सागर में जीवन नौका को डाल दे। तट मिलेगा, अवश्य मिलेगा, मेरी यह दृढ़ धारणा है।"

"अब तो मेरी भी यही धारणा है पिताजी।"

"और मेरी भी यही धारणा है" वृद्धा ने समर्थन किया। "तुमने कुछ समझा भी या यूँ ही हाँ में हाँ मिला दी।" वृद्ध बोले।

"मैं सब समझ रही हूँ। आपने सात दर्जे क्या पढ़ लिए, किसी को बोलने भी नहीं देते।"

"अच्छा, पहले थोड़ी सब्जी दो और फिर बताओ, हमने क्या कहा है? बातों में खाना खिलाना ही भूल गई।"

सब्जी देते हुए वृद्धा बोली—

"आपने कहा है कि मुझे बुढ़ापे में बेटी मिल गई।"

"यह तो तुमने हमारी बातचीत का अर्थ बताया है।

"हमें तो अर्थ ही चाहिए। और क्या करना है?"

रजनी इस समय चुपचाप दोनों के मनोविनोद पर विचार कर रही थी—"कितनी प्रसन्न हैं ये भोली आत्मायें। मेरे भार को वहन करते हुए भी समझ रहे हैं कि यह ईश्वर की कृपा है। नहीं जानते कि मेरी जैसी अभिनेत्री किस समय कौनसा अभिनय कर बैठे। ये भूल गये हैं इस दिल्ली में मेरी जैसी तन की उजली और मन की मैली युवतियों का जाल बिछा हुआ है।

उसी समय वृद्ध ने रजनी की विचार श्रृंखला तोड़ दी ।

"क्या सोच रही हो बेटी । अपनी माँ से रोटी तो माँगों ।"

रजनी की इस बार हँसी न रुक पाई । उसको हँसता देख वृद्धा भी खिलखिलाकर हँस पड़ी । वह थाली में रोटी रखती हुई बोली—

"अब आप पढ़े हुए होने का गर्व न करें । अब तो मेरी बेटी आप से भी ज्यादा पढ़ी लिखी हैं । बी० ए० पास है, बी० ए० पास ।"

वृद्ध फिर विनोद भरे स्वर में बोले—

"अब यह बताओ, पानी कब मिलेगा ?'

पानी देते हुए वृद्धा बोली—"न जाने मुझे आज क्या हो गया हे ।"

"कहीं भांग तो नहीं पी ली है तुमने ?"

"अब आप पानी पीकर आराम करें । मुझे भी भूख लगी है ।"

"अच्छा अब कहानी सुनाओ बेटी । तुम्हारी माँ खाना खायेगी ।"

"अभी तो कहानी अधूरी है पिताजी ।"

"समझ लो अब पूरी हो गई ।"

"क्या कहा पिताजी आपने ?'

"यही कि तुमने आप बीती को कहानी का रूप दिया होगा ।"

रजनी ने सोचा—"मनोविज्ञान के कितने पंडित हैं मेरे वृद्ध पिता सचमुच शिक्षा व्यवहारिक जीवन के क्रियात्मक अनुभव का ही नाम है । शिक्षित राजेश मुझे आज तक नहीं समझ पाये और ये हैं कि प्रथम मिलन में ही मुझे सम्पूर्ण रूप से पढ़ लिया है । कुछ देर शांत रहकर वह बोली—

"आप ठीक समझे हैं पिताजी । मैंने आप बीती ही लिखी है ।"

"तो फिर कल कहानी को पूर्ण कर किसी पत्रिका में भेज देना ।'

"विचार तो मेरा भी यही है ।"

वृद्ध फिर अपनी पत्नी से बोले—"क्या तुम एक चारपाई नहीं लाई आज ?"

"आपने कहा कब था चारपाई के लिए ?"

"कुछ अपनी बुद्धि से भी कर लिया करो।"

"कल अवश्य ले आऊँगी। मुझे आज ध्यान ही नहीं रहा।"

"आज क्या हो गया है तुम्हारे ध्यान को।"

"बेटी को देखते-देखते पेट ही नहीं भरता।"

उसी समय रजनी ने बिस्तर जमीन पर ही बिछाया। तीनों फिर सो गये।

रजनी आज भी गहरी नींद में डूबी रही।

२७

धर्मार्थी जी के लिए राजेश अब सिर का दर्द बनता जा रहा है। लाख प्रयत्न करने पर भी उसके पजे न उखड़ सके। धर्मार्थी जी ने मजदूरों में जो नये प्रचार आरम्भ किये थे राजेश ने सबकी कली खोल दी है। वह कितने वार करते हैं राजेश उन्हें काटता चला जा रहा है। साथ ही वह धर्मार्थी जी की कली भी खोलता जा रहा है। कुछ मजदूरों को छोड़ सब ही राजेश के साथ हैं। मिल का सबसे बड़ा गुन्डा 'धन्नू पहलवान' अपने दल बल सहित धर्मार्थी जी का अग रक्षक बना रहता है। उसके चार और साथी, उसी के समान हृष्ट-पुष्ट हैं। वे क्वाटरों में प्रत्येक समय भ्रमण करते रहते हैं। गुन्डों से धर्मार्थी जी ने कह दिया है—"तुम्हारी खुली छूट है, जो चाहो करो। पीछे मैं सब देख लूँगा।"

धन्नू आदि गुन्डों को छूट तो मिली हुई है परन्तु उन्होने अभी तक किया कुछ भी नहीं है। मजदूरों के संगठन से वे कुछ डरने लगे हैं। एक को दवा दो वाली बात सिद्ध हो गई है। मजदूरों ने कह दिया है—यदि किसी को टेड़ी निगाह से भी किसी गुन्डे ने देख लिया तो जान

की खैर नहीं। गुन्डों से इसीलिए किसी का बाल बाँका भी नहीं हो सका है। हाँ इतना अवश्य है कि धर्मार्थी से वे जेब को गर्म अवश्य कर लेते हैं।

अब मिल में भी धर्मार्थी जी जब चाहें तब आ जाते हैं। उनकी नींद हराम हो गई है। जब से सेठ जी ने इन्हें फटकारा है उनकी आँखों के सम्मुख मिल की दीवारें ही खड़ी रहती हैं। जैसे राजेश दीवारों को भी उठाकर ले जायेगा। उन्होंने अब राजेश को प्रेम बाण से भी घायल करने का निश्चय कर लिया है। उस दिन जब धर्मार्थी जी साढ़े नौ बजे कार द्वारा मिल आ रहे थे— उनको मिल के द्वार पर खड़ा राजेश दिखाई दे गया। स्वाभानुकूल उन्होंने ब्रेक लगा दिया। वे संकेत से राजेश को पास बुलाकर कोमल स्वर में बोले—

"यहाँ कैसे खड़े हो भाई राजेश ?"

"यह तो सार्वजनिक स्थान है मैनेजर साहब।"

"अरे यार तुम तो प्रत्येक समय चिंगारी बने रहते हो ?"

"तो फिर आप जल बन जाइये। सीधा उपाय है।"

"मुझे यह अवसर तो देते ही नहीं हो तुम ?"

"मैंने तो लिखित रूप में भी अवसर दिया है तुमको।"

"मजदूरों की बात छोड़ो। कहना है तो कुछ अपनी कहो।"

"मजदूरों से भिन्न तो मैं कुछ भी नहीं हूँ धर्मार्थी जी।"

"यह तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है। इन मजदूरों को मैं तुमसे भी कुछ अधिक जानता हूँ। तुम समझते हो इन्हें मधुमक्खी और ये हैं पूरे बिच्छू। इनका डंक उन्हीं के हाथ में गड़ता है जो इन्हें ऋषि राज के समान दया का अधिकारी मानते हैं। दुःख तो यही है तुम विश्वास भी नहीं करते।"

"हो सकता है आपकी बात सत्य हो।"

"देखो राजेश थोड़ा व्यवहारिक बनना सीखो। अभी तुम जवान हो। तुम्हारा नया खून है। इसीलिए आदर्शों के भार को पीठ पर लादे

फिर रहे हो याद रखो एक दिन तुम्हें यह भार असह्य होकर ही रहेगा।"

"तो फिर जल्दी क्या है? समय आने दीजिए व्यवहारिक भी बन ही जायेंगे। कुछ दिन आदर्शों के भार को भी तो ढोना ही चाहिए।"

"चलो फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।" कहते हुए धर्मार्थी जी गाड़ी स्टार्ट कर मिल के अन्दर चले गये। राजेश वहीं पर खड़ा रहा। धर्मार्थी जी ने कार्यालय में जाते ही सबसे पहले धन्नू को बुलाया। उस के आते ही वह बोले—

"क्या समाचार है धन्नू पहलवान?"

"सब ठीक है साब! कहो क्यों बुलाया है?"

"तुम्हारी पार्टी कुछ कमजोर सी दिखाई देती है।"

"नहीं साब! आप हुक्म करो।"

"तुम्हें एक बहुत ही टेढ़ा काम करना है।"

"जरूर साब! हम तो हैं ही टेढ़े कार्यों के लिए। कहिए।"

"समझ लो, तुम्हें राजेश की मरम्मत करनी है।"

"बहुत ठीक। अब यह बताईये अधूरी या पूरी।"

"इसका क्या मतलब है?"

"अधूरी का मतलब हड्डी पसली तोड़ना है और पूरी का मतलब इसको दूसरी दुनियाँ ही दिखा देना है।"

"तो फिर पूरी ही करो। अधूरी से यह नहीं मानेगा।"

"बहुत ठीक। सात दिन में काम हो जायेगा। बस इनाम तैयार कर लो।

"पाँच सौ रुपये इनाम दूँगा धन्नू। तनख्वाह तुम्हें मिलती ही रहेगी।"

"सौ रुपये पीने के लिए और दिलाइये।"

"लो, ये लो।" धर्मार्थी जी ने सौ का नोट धन्नू को दे दिया। नोट को जेब में रखकर धन्नू बोला—

"अ प बेफिक्र रहें। साले की हड्डियाँ भी नहीं मिलेंगी किसी को।" धर्मार्थी जी जैसे कुछ हल्के हो गये हों।

वह बोले—"मेरी तो इसने नींद ही हराम कर दी है।"

"और हम इसकी जिंदगी को हराम कर देंगे।"

"शाबाश धन्नू ! मैंने तो आज जाना है तुझे अच्छी तरह से।"

"आपका नमक खाते है साब ! आपका काम तो हमें करना ही चाहिए।"

अब भी तो मिल के गेट पर खड़ा है दुष्ट राजेश।

"ऐसे नहीं साब ! हम तो धोके से मारेंगे।"

"होशियारी तो यही है तुम्हारी।"

"अपने काम में सब होशियार होते हैं सरकार।"

धन्नू फिर वहाँ से चला गया। उसके जाते ही धर्मार्थी जी कुछ विचार मग्न हो गये। उनके अन्दर से आवाज उठी—

"इतने क्रूर न बनो धर्मार्थी। जीवन की सत्यता को जानो।"

धर्मार्थी जी ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह फिर मजदूरों की माँगों पर विचार करने लगे। उनकी मागें पढ़ते ही क्रोध बढ़ने लगा। उन्होंने अपने आप से ही कहा-- दुष्ट के साथ दया का प्रश्न नहीं उठता। प्रत्येक दृष्टि से उसे समझा लिया। वह ऐसा नेता का बच्चा बना है कि सुनता ही नहीं।

माँगों पर धर्मार्थी जी कोई निर्णय नहीं कर सके। वे फिर कार्य द्वारा सीधे सेठ जी के पास विचार-विमर्श के लिए चल दिये। जब वे वहाँ पहुंचे साढ़े बारह बज चुके थे। सेठ जी उस समय कोठी के बरामदे में आराम कुर्सी पर पड़े कुछ सोच रहे थे। धर्मार्थी जी प्रणाम कर चुपचाप सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गये। सेठ जी जैसे सोते से जागे हों। वे बोले—

"तुम इस समय यहाँ क्यों आये हो ?"

"एक जरूरी काम से आना पड़ा है आपके पास।"

"बोलो फिर क्या बात है ? बैठ क्यों गये ?"

"मिल मजदूरों की कुछ मांगों के विषय में विचार करना है आपसे।"

"यह काम मेरा नहीं तुम्हारा है।"

"ठीक है आपकी बात। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो आपके बिना विचार किये हो ही नहीं सकती। मजदूरों को तो अब पर निकलने लगे हैं।"

"अभी क्या है। आगे देखना, ये उड़ान भी भरेंगे।"

"इससे पहले तो हम इनके पर ही काट देंगे।"

"तुम कुछ नहीं कर सकते। कल तक कहा करते थे, मेरे मिल में राम राज्य है और अब कहते हो यहाँ रावण की सेना खड़ी हो गई है।"

"आप चिन्ता न करें। मैं सब देख लूंगा।"

"तो यहाँ क्या करने आये हो ?"

धर्मार्थी जी ने नीचे गर्दन झुका ली। सेठ जी फिर बोले—

"यह सब गड़गड़ कौन कर रहा है मिल में ?"

"बी० ए० पास नवयुवक है। पहले मजदूरों को पढ़ाया करता था, और अब अपना कुछ प्रभाव जमा, नेता बनना चाहता है।"

"तो क्या तुम पढ़े लिखे नहीं हो। तुमने विदेश में भाड़ ही झोंका है क्या ? तुम्हें ईंट का जवाब पत्थर से देना नहीं आता। इस प्रकार तो वह एक दिन मिल का मालिक ही बन बैठेगा।"

"वह दुष्ट चौबीसों घन्टे ही मजदूरों में पड़ा रहता हैं। मजदूरों को आप जानते ही हैं, गुड़ की डली दिखाकर चाहो तो दस मील दूर ले जाओ।"

"तो फिर तुम वहाँ अड़तालीस घन्टे पड़े रहा करो।"

"अच्छी बात है अब मैं उसको भगाकर ही दम लूंगा।"

"कुत्ते भगाने से भाग कर फिर लौट आते हैं, कभी सोचा है

तुमने। भूखा कुत्ता पेट भर कर ही तो जायेगा। इसीलिए सीधा उपाय है टुकड़ा डाल दो। पेट भर जायेगा, आप ही चला जायेगा।"

"टुकड़ा तो डाल कर देख लिया है सेठ जी।"

"तो फिर जो चाहो करो, मेरा सिर क्यों खा रहे हो?" मेरा समय तो अब भगवान की भक्ति करने का है। जब से मन्दिर बना है मेरा मन तो अब किसी कार्य में लगता ही नहीं है। जी चाहता है, बस मन्दिर में ही हर समय भगवान के दर्शन करता रहूँ।'

"उलझी बातों पर तो आपकी सलाह लेनी ही पड़ती है।"

"बेकार की बातें छोड़ो। पहले मुझे यह बताओ जिन लोगों ने इस मन्दिर के निर्माण में सहयोग दिया है उनकी कुछ सेवा की है तुमने या नहीं। काम तो आगे भी पड़ता ही रहेगा। मैंने निश्चिय किया है जब तक जीवित हूँ यह मन्दिर बनाता ही रहूँगा।"

"इस ओर से आप निश्चिन्त रहें। जो हमारा सहयोगी है, हम भी उसके लिये तन, मन, धन से हाजिर हैं।"

"ऐसा होना भी चाहिए। हाथ को हाथ धोता है। जो अपना है उसको अपनाओ और जो अपना शत्रु हो उसे धूल में मिलाओ। यही नीति है।"

"ऐसा ही होगा भविष्य में। आप चिंता न करें।"

"नीति से काम लेना सीखो। तुमने पढ़ा नहीं है—चाणक्य ने अपने शत्रुओं पर किस प्रकार विजय पाई थी?"

"अब मैं देख लूँगा।" कहते हुए धर्मार्थी जी खड़े हो गए। उनको खड़ा देख सेठ जी बोले—

"अच्छा अब जाओ। जो उचित समझो कर लेना।"

धर्मार्थी जी जब मिल में पहुँचे डेढ़ बज चुका था। उन्होंने जाते ही चाय मंगाई और साथ ही राधा को भी कार्यालय से अपने कमरे में बुला लिया। राधा से आते ही बोले—

"आज तो हमारे सिर में दर्द है राधा।"

"तो फिर मालिश करा लीजिए।"

"किससे करायें यह भी तो बताओ ?"

"आप जैसों के लिए सिर दबाने वालों का क्या अभाव है इस दुनियाँ में। एक चाहो हजार सिर केवल चले आयेंगे।"

"आज तक एक तो मिला नहीं, हजार की बातें कर रही हो।"

"खोजने वालों ने तो भगवान को भी पा लिया है, धर्मार्थी जी।"

"तो फिर कुछ देर के लिए तुम ही भगवान बन जाओ।"

"दुःख तो यही है आप भगवान से भी खिलवाड़ करना चाहते हैं।"

"आजकल आपकी सखी रजनी कहाँ है ?"

"इस दूसरे भगवान को भी आप ही खोज लीजिए।"

"तुमने रजनी के जीवन का रहस्य नहीं बताया कभी।"

"समझ लीजिए, वह राजेश के मन की मालिक है।"

"अच्छा ! यह तो आज नई बात प्राप्त हुई है।"

"आपको नवीनता की खोज में आनन्द आता है न, इसीलिए यह एक नवीनता और प्राप्त हो गई है।"

"अच्छा अब आज्ञा दीजिए।" राधा खड़ी होकर चल पड़ी। उसी समय चाय आ गई। धर्मार्थी जी ने राधा को रोका, परन्तु वह धन्यवाद कहकर चुपचाप चली गई।

२८

रात्री के अन्धकार में चलने वाले पथिक को प्रातःकाल की प्रथम किरण जिस दिवस का संकेत करती है, रजनी को अब वही संकेत करती है, रजनी···संकेत प्राप्त हो गया है। एक ओर माता-पिता का पवित्र स्नेह, दूसरे होने वाले बच्चे के प्रति आशायें और तीसरे नौकरी के लिये दिए हुए प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति। उसकी जीवन पालिका की तीन डोरियाँ उसे मिल गई हैं। अब केवल एक डोरी राजेश की अनुकूलता ही उसके हाथ से दूर है। फिर भी वह अब किसी सीमा तक सन्तुष्ट है। उसे जीवन का लक्ष्य तो मिला। वह अब अपने जीवन पथ के महत्वपूर्ण मोड़ पर आ गई है।

रजनी कभी-कभी प्रयत्न करती है। अतीत को भूल जाऊँ। होता इसके विपरीत है। अतीत उसकी आँखों के सामने नाचने लगता है। भावनायें जब उसे व्याकुल बनाती हैं, वह उनको थपकियाँ देकर सुला देती है। वह स्वयं से कहती है—

"जीवन केवल भोग नहीं है। सुखद जीवन क्षणिक ही होता है। उसकी स्मृतियाँ भावी जीवन का बल होती हैं। भोग की कोई सीमा नहीं है। संयम का जीवन में भोग से भी अधिक महत्त्व है।" किसी समय जब वह बहुत उदास होती है तो माता-पिता उसका धैर्य बंधा देते हैं। उनका स्नेह भरा हाथ जब उसके सिर पर पड़ता है, वह आनन्द विभोर हो जाती है। उसी समय वह निश्चय को दोहराती है—"जितना हो सकेगा इनकी जीवन पर्यन्त सेवा करूँगी।"

रजनी कई दिन से सोच रही है—

"एक बार राजेश से क्षमा याचना करके और देख लूं। आखिर मैंने राजेश को अपना सर्वस्व दिया है। उसके हृदय के किसी कोने में तो कहीं पर अतीत की स्मृतियों की रेखायें होंगी ही। वह देवता न सही मनुष्य तो अवश्य है। शंका के मेघ कभी तो सत्य के सूर्य को चमकने का अवसर देंगे ही। आज उसने निश्चय कर लिया, राजेश के पास अवश्य जाऊँगी। मैं अब उससे केवल विश्वास ही तो चाहती हूँ। उसे देखना ही होगा।"

सवेरे के आठ बजे होंगे। पिताजी से आज्ञा लेकर रजनी राजेश से मिलने चल पड़ी। उसको वहाँ पहुंचने में एक घन्टा लगा। राजेश उस समय तैयार होकर मिल जा रहा था। रजनी ने राजेश को देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उसने प्रणाम का उत्तर कुछ ऐसे स्वर में दिया जैसे वह कुछ भार दब गया हो। रजनी ने तार के बजते ही जैसे स्वर पा लिया हो। वह बोली—

"क्या कहीं जल्दी जाना है आपको?"

"यही समझ लो। कहिए क्या बात है?"

"बातें तो बहुत हैं राजेश। दुःख तो यही है आपके पास सुनने का समय ही नहीं है। समय हो तो बातें करते युग बीत सकते हैं।"

"इस दुनियाँ में किसके अरमान पूरे हुए हैं रजनी देवी।"

"देवी एक दो बार पहले भी कहा था आपने। कितना अन्तर है जब और अबके स्वर में। क्या हो गया राजेश आपको?"

"मुझे क्या हो गया है यह भी बताना होगा अब। अच्छा हो, यह तुम अपने ही हृदय से पूछ लो। और यदि हृदय नेत्रों की ज्योति अब समाप्त हो गई हो तो फिर विवेक की आँखों से ही देख लो। मुझे स्मरण है उस दिन का जब मैंने तुम्हें देवी कहकर तुम्हारे चरण स्पर्श किये थे। और आज जैसे उसके विपरीत इच्छा हो रही है।"

"यही न कि अब उन पगों को काट कर फेंक दूं। यदि आपकी शंका का इससे समाधान हो जाए तो यह भी करके देख लो।"

"देखो रजनी ! जो हुआ उसके लिए अब पश्चाताप करो, और फिर भूल जाओ। मैं अपने वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट हूँ। इसीलिए चाहता हूँ अब मेरे दूध में कोई मक्खी नहीं पड़नी चाहिए।

"स्मरण करो, कभी आज की मक्खी आपके भाल की मणी थी।"

"मैंने अभी कहा है अतीत को भूल जाओ। यदि भविष्य के लिए कुछ हो तो अवश्य कहो। व्यर्थ में समय नष्ट करने से क्या लाभ ?"

"तो क्या खड़े-खड़े ही सुनोगे। बैठ जाते तो अच्छा था।"

"मुझे ऐसे ही सुनाओ, समय नहीं है।"

"प्रथम तो यही कहना है कि दंड देने से पहले दोषी के दोष पर विचार तो कर लो। कहीं ऐसा न हो, निर्दोष को दंड देकर आप पछतायें।"

"मैं न्यायधीश नहीं हूँ रजनी।"

"और मैं अब भी आपको अपना सर्वस्व समझती हूँ।"

"यह भूल तो कभी मैंने भी की थी।"

"प्रार्थना यही है एक बार आप उसी भूल की पुनरावृत्ति करके देखें।"

"स्पष्ट कहो रजनी। तुम अब क्या चाहती हो ?"

"यही कि होने वाले बच्चे को पिता के प्यार से वंचित न करो।"

"लक्षाधीश पिता पाकर भी बच्चा प्यार से वंचित रहेगा। समझ में नहीं आई तुम्हारी बात।"

"इतने निष्ठुर न बनो राजेश ! विश्वास करो मैं वही हूँ।"

"देखो रजनी ! मेरे और तुम्हारे मार्ग अब बिल्कुल भिन्न हैं। इसीलिए मेरी ओर से तुम कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र हो। मैं तुम्हारे मार्ग से अब हट गया हूँ, इसीलिए तुम्हें भी मेरे मार्ग से हट जाना चाहिए।"

"मुझे दया की भीख भी नहीं देंगे आप ?"

"दया दीनों का अधिकार है समर्थ का नहीं। तुम शिक्षित हो, सुन्दर हो। तुम्हारे तो इस दुनियाँ में हजार बन जायेंगे।"

"तो क्या मुझे आप वैश्या से भी पतित समझते हो।"

"वैश्याओं की वर्षा नहीं होती रजनी। संयम भंग होने पर कोई भी स्त्री वैश्या की संज्ञा पा सकती है।"

"क्या भूल गये अपने अन्तिम विदाई के समय के आर्शीवाद को?"

"तुम्हें भी स्मरण होगा, मैंने वह सब नियति पर छोड़ दिया था।"

"तो क्या मैंने अपना सर्वस्व नहीं दिया आपको?"

"और प्रतिदान में मैंने भी तो अपना सर्वस्व दिया था, आपको।"

"समर्पण में नारी का बलिदान अधिक होता है राजेश।"

"यह तुम्हारी भूल है रजनी। मेरे विचार से सरसता बलिदान न होकर केवल भोग मात्र है। और यदि बलिदान मान भी लें तो समर सत्ता के समान ही बलिदान भी समान ही होना चाहिए। मुझे तो आश्चर्य होता है नारी के वाक् छल पर। कभी यह अबला थी तो सदैव अपना पक्ष प्रबल रखा। और आज यह समान अधिकार प्राप्त करके भी अपना पक्ष प्रबल मानती है।"

"जानते हो क्यों? लो सुनो, मैं बता रही हूँ। भ्रम···के परिणाम को सदैव नारी को ही भोगना पड़ता है। और अब मैं भी वही भोग रही हूँ।"

"तुम कुछ भी कहो रजनी! वीणा तारों के टूटने पर नहीं बजती।"

"रजनी ने निष्कर्ष निकाल दिया—चुटकी बजाकर पर्वत को आकाश की गेंद बनाया जा सकता है किन्तु पुरुष की शंकाओं को मिटाना सम्भव नहीं है। सचमुच इस शंकित मनोवृति ने राजेश को चाँद के समान कलंकित कर दिया है।" विषय बदल कर वह बोली—

"मेरी छोटी बहन के तो दर्शन करा दो मुझे।"

राजेश ने तुरन्त राजेश्वरी को कमरे से बाहर बुलाकर कहा—"देखो ये देवी तुमसे मिलना चाहती हैं।"

राजेश फिर वहाँ से चला गया। रजनी को राजेश्वरी छोटे कमरे के अन्दर ले गई। अन्दर चारपाई पर बिठा कर बोली—

"कहिए बहन जी! क्या सेवा करूँ। आपकी?"

"कुछ नहीं बहन दर्शनों के लिये आई थी, सो कर लिए। विवाह में तो बाबूजी ने हमें बुलाया ही न था।"

"क्या मैं आपका पूरा परिचय जान सकती हूँ।"

"तो क्या राजेश बाबू ने कभी मेरे बारे में कोई चर्चा नहीं की?"

"अब समझी! आप वही बहन हैं जिनसे ये विवाह चाहते थे?"

"ऐसा ही समझ लो।"

"आपकी तो रोज ही चर्चा होती है यहाँ पर। मुझसे कहा करते हैं तुम भी ऐसी ही बन कर दिखाओ। बहुत बड़ाई करते हैं आपकी।"

इस कथन को सुनकर रजनी के उन घावों पर मरहम लग गया जो राजेश के वाक् बाणों से उसके हृदय में हो गये थे। वह बोली—"यहाँ राधा नाम की लड़की तो नहीं आती?"

"आती तो है, हाँ लौटकर वैसे ही जाती है जैसे आती है।"

"उनका यहाँ आना अच्छा नहीं है।'

"आप चिंता न करें। आपके सच्चे स्वामी को मैं सुरक्षित रखूंगी।"

"आपके सच्चे स्वामी"—सुनकर रजनी गद्गद् हो गई। उसने मन में सोचा-कितनी चतुर और महान है यह युवती। कुछ देर शान्त रहकर बोली—

"अब तो राजेश मुझसे घृणा करते हैं बहन।"

"देखो मेरी बहिन। उनकी तो वे जाने। हाँ मैं आपको अपनी बड़ी बहन ही समझती हूँ। वे पहले आपके हैं और पीछे मेरे। आप जब आयेंगी, आपका बड़ी बहन के नाते ही स्वागत होगा।"

"तुम कितनी महान हो मेरी छोटी बहन।"

"महान मैं नहीं हूँ मेरी बड़ी बहन। महान तो आप हैं। आपकी माँग में जिन हाथों ने सिन्दूर भरा है वे मेरे तो पीछे ही बने हैं। सच पूछो तो मैंने आपके अधिकार को छीन कर एक महान पाप किया है।"

रजनी इस कथन को सुनकर सोचने लगी—अल्प शिक्षित होकर भी कितनी त्याग और बलिदान की प्रतिमा है यह नारी। सचमुच शिक्षित मानव हृदय की उदारता और विशालता को भूल जाता है। यह भी नहीं जानती, मेरे जैसी तितली कब किस ओर उड़ जाए। रजनी ने उसी समय हाथ की अंगूठी निकाली। यह वही अंगूठी थी, जो राजेश ने कभी स्मृति-चिन्ह रूप में भेंट की थी। उसने अंगूठी राजेश्वरी की उँगली में पहनाते हुए, उल्लास भरे स्वर में कहा—

"यह मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार करो बहन।"

"यह क्या कह रही हैं आप।"

"छोटी बहन को प्रथम मिलन की भेंट दे रही हूँ।"

"यह कभी नहीं हो सकता मेरी बहन।"

राजेश्वरी ने अंगूठी रजनी के हाथ में पहना दी। और बोली—

"यह तो सुहाग की निशानी है पगली। तुझे तेरा सुहाग दिलाकर ही रहूँगी।" वह फिर खड़ी होकर चाय बनाने लगी। रजनी उसी समय बोली—"चाय में वह स्वाद कहाँ है मेरी बहन, जो तुम्हारे पास बैठने में है। इसीलिए कुछ देर मेरे पास और बैठ जाओ।"

रजनी ने शीघ्र चाय तैयार कर अंगीठी पर दाल रख दी। दोनों फिर एक साथ चाय पीती हुई बातों में जुट गईं। रजनी बोली—"अब कब आयेंगे राजेश?"

"उनका कोई ठीक समय ही नहीं है आने का। आयें तो अभी आ जायें और न आयें तो शाम तक भी न आयें।"

"अच्छा बहन अब मैं चली। फिर कभी आऊँगी।"

"अच्छा तो यह है कि आप रोज ही आया करें। मैं उनके मन से भ्रम को निकाल कर फेंक दूँगी।"

"जैसी आपकी इच्छा।" कहती हुई रजनी फिर खड़ी हो गई। राजेश्वरी ने चलते समय उसको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। प्रणाम का उत्तर देकर जब रजनी सड़क पर आई, वह सोच रही थी—

राजेश कुछ निर्दोष दिखाई देता है अब। भला ऐसी स्त्री को पाकर वह अब किसकी कामना कर सकता है। यदि अब भी उसका मन स्थिर न हो, तो मैं कहूँगी, राजेश सचमुच एक चंचल भ्रमर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। राजेश्वरी के विषय में रजनी सोच रही थी—राजेश्वरी कितनी उदार है मेरे प्रति। मैं तो किसी समय राजेश को राधा की आँखों से भी बचाया करती थी। और यह कहती है आप प्रतिदिन आया करें।

जब रजनी घर पहुंची बारह बज चुके थे। उसने जाते ही खाना खाया। और फिर वह दिन में ही चादर तान कर सो गई।

२१

राधा की प्रकृति में आजकल मौलिक परिवर्तन होता जा रहा है। वह प्रत्येक समय क्रुद्धसी रहती है। क्यों? यह वह स्वयं भी नहीं जानती। उसके क्रोध का बिन्दू कौन है? उसने अभी भी निश्चय नहीं किया। वह चारों ओर दृष्टि उठाती है। उसे जो भी दिखाई देता है शत्रु ही जान पड़ता है। सर्व प्रथम देखती है माता-पिता को। सोचती है—इन्होंने मेरा लालन-पालन अवश्य किया है। फिर भी ये अपने सम्पूर्ण उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हुए। बुढापे में मेरे सिर का भार बन गये हैं। ये जैसे मेरे दोनों पाँवों की दो बेड़ियाँ हैं। किसी ओर भी नहीं बढने देते। इन्होंने मुझे सब कुछ करने की छूट दे रखी है फिर भी जो मैं चाहती हूँ, वह कर नहीं सकती।

राधा जहाँ कार्य करती है वहाँ मनचले युवकों का अभाव नहीं। उन सबको देखकर भी राधा खिन्न हो जाती है। अब वह जीवन को केवल क्रीड़ा स्थल नहीं समझती। उसे अब उस जीवन की भूख है जो कर्त्तव्य की शृंखलाओं से आनन्द देती है। वह अब समर्पण कर किसी को सर्वस्व रूप में पाना चाहती है। राजेश उसके शिक्षाकालीन जीवन के निकट आने वाला प्रथम युवक है। वह चाहे कुछ ही समय के लिए आया, यौवन के भावों को उसी ने गुदगुदाया है। यौवन के उषाकाल में आने वाले पुरुष को स्त्री प्रयत्न करके भी आजीवन नहीं भूल पाती। राजेश उसके जीवन में वही स्थान रखता है।

राजेश को राधा से रजनी को छीन लिया। राधा यह कभी नहीं भूलती। इसीलिए तो वह अधूरी शिक्षा छोड़ नौकरी के लिए विवश हो गई थी। उसे विश्वास हो गया था कि अब मैं परीक्षा में सफल न हो पाऊँगी। शिक्षा काल में युवक और युवतियों को या तो प्रेमानुभूति होनी ही नहीं चाहिए और यदि उस अनुभूति के वह निकट पहुँच जाए तो उसकी तृप्ति आवश्यक है। शिक्षा काल में संयम का प्रथम स्थान है। यह एक साधना का समय होता है। यदि संयम की बाँध में कहीं दरार पड़ जाए तो फिर जल को स्वतंत्र रूप में बहने का अवसर मिलना चाहिए। राधा इस सौभाग्य से वंचित हो एक दिन कालिज छोड़ने के लिए विवश हो गई थी। राजेश और रजनी उसके जीवन में किसी न किसी रूप से पुनः आये। उसने उदारता से उनका सत्कार किया और वे अपने लक्ष्य को पाकर फिर अलगाव कर बैठे।

राधा ने पत्रों द्वारा अनेक मित्र बनाये। अब वह इन सबको व्यर्थ समझती है। उसकी दृष्टि में मित्र कोई नहीं। वह मित्र केवल पत्र हैं। उसे अब पत्रों की भूख नहीं है। वह मित्र चाहती है ऐसा मित्र जिसको वह सच्चा और अभिन्न मित्र कह सके। यूं तो धर्मार्थी जी भी यथा समय स्वयँ को राधा का प्रिय सिद्ध करते हैं। राधा जानती है यह सब ढोंग है। जिस नारी के मन में पुरुष के लिए श्रद्धा नहीं जागी, समझ लो वह उसे प्यार नहीं करती। धर्मार्थी वही पुरुष है। राधा को उसकी

बातों में दुर्गन्ध सी आने लगती है। वह जानती है ये सज्जन केवल मुँह से बोलते हैं, हृदय तो न जाने ये कहाँ नीलाम कर चुके हैं।

राधा को यह जानकर कुछ प्रसन्नता हुई थी कि रजनी अब राजेश के जीवन से दूर चली गई है। जब उसने देखा—राजेश्वरी ने राजेश को मुट्ठी में बन्द कर लिया, उसके आश्चर्य मिश्रित दुख का ठिकाना न रहा। उसे यह विश्वास ही न था कि राजेश्वरी राजेश को जीत पायेगी। रजनी के हटते ही उसे अपना मार्ग साफ दिखाई दे गया था। और अब पहले से भी अधिक अन्धकार दिखाई देने लगा है। राजेश अब उससे कुछ बचकर चलता है। राधा उतनी ही उसकी ओर खिचती जा रही है। पुरुष जितनी नारी की उपेक्षा करता है, वह उतनी ही उससे सापेक्ष होना चाहती है और जब वह भोगी लोलुप बनकर उसके पीछे दौड़ता है वह भी दूर भागती है।

कई दिन से राधा तर्क वितर्क करती आ रही है। आज उसने जैसे निष्कर्ष निकाल लिया हो। राजेश्वरी यदि राजेश के जीवन से पृथक हो जाए तो राजेश को पाना मेरे लिये बच्चों का खेल बन जायेगा। आखिर मैं सुन्दर हूँ। सुन्दर नारी किस पुरुष की दृष्टि को अपनी ओर नहीं खींच सकती। सुन्दरता वह जादू है जिसके वशीभूत तो देवता भी हो गये हैं। फिर मैं राजेश को क्यों नहीं पा सकती। राधा ने निश्चय कर लिया—राजेश्वरी को राजेश से पृथक करके ही दम लूँगी। यदि वह मेरा नहीं बना, तो मैं उसको किसी अन्य का भी बनता हुआ इस जीवन में नहीं देख सकती। निश्चय करते ही राधा को लगा जैसे वह अनाधिकार चेष्टा कर रही है। उसने स्वयं से कहा—कोई बात नहीं दुनिया में प्रत्येक प्राणी सदैव अपने सुख के लिये जीता और मरता है। फिर ऐसा करने से मैं ही पीछे क्यों रहूँ।

उस दिन शनिवार था। राधा तीन बजे घर आ गई। कुछ देर विश्राम कर वह राजेश्वरी से मिलने चल दी। जब वह वहाँ पहुँची, राजेश घर पर नहीं था। वह राजेश्वरी से विनम्र स्वर में बोली—

"नमस्कार भाभी जी। कहो क्या समाचार हैं।"

"नमस्कार राधा ! आओ बैठो ।'।

"भाई साहब कहाँ गये है इस समय ?"

"वह तो प्रत्येक समय ही दौड़-धूप में लगे रहते है आजकल ।"

"और आप यहाँ अकेली ही मक्खियाँ मारती रहती हैं ।"

"मक्खियाँ क्यों मारती । उनकी प्रतीक्षा करती रहती हूँ ।"

"और कोई नई बात हो तो सुनाओ ।"

'नई यह है कि बहन जी आई थीं ।"

"कौन बहन जी ? क्या रजनी आई थी ।"

"बिल्कुल वही ! बड़ी अच्छीं है बेचारी ।"

"क्या आप भी बुरे भले को पहचान कर लेती हैं ?"

"तो क्या तुम्हारे विचार से गाँव में जन्म लेने वाले मूर्ख ही होते हैं । मेरे पति का जन्म भी तो गाँव में ही हुआ है । देखती न हो, उनके चारों ओर दिल्ली की लड़कियाँ किस तरह मधुमक्खी की भाँति चक्कर काटती रहती हैं । मैंने तो एक नजर में ही बहन जी को पहचान लिया ।"

"नाराज न होना भाभी मैंने तो यूँ ही मजाक में कह दिया है ।"

' सचमुच राधा ! बहन जी तो बहुत अच्छी हैं । मैं तो चाहती हूँ हम दोनों के साथ वह भी रहें । अब तो मैं इसके लिए प्रयत्न करूँगी ।"

"बड़ी भोली हैं भाभी जी आप ।"

"मैं भोली और वह चतुर है । दोनों की जोड़ी मिल गई । यदि दोनों ही चतुर होते तो लड़ाई झगड़े ही होते रहते ।"

"तो आपको रजनी बहन बहुत अच्छी लगती हैं ?"

"जो अच्छा हो वह तो सबको अच्छा लगेगा ।"

"और मैं कैसी लगती हूँ आपको ?"

"यूँ तो ससार में सब ही अच्छे हैं ।"

इस कथन से राधा पीड़ित हो गई । पीड़ा का दमन कर वह बोली—

"भाई साहब ने बोलना तो खूब सिखा दिया है आपको ।"

"अभी तो बहुत कुछ सीखना है उनसे ।'

"जादू कर दिया है भाई साहब पर आपने ।"

"यह तो नारी का पहला धर्म है । यदि पुरुष को खुले साँड की तरह छोड़ दिया जाये तो वह इधर-उधर डंडे खाता फिरेगा ।"

"बड़ी चतुर हो गई हैं आप ।"

"पहले मूर्ख कहा । फिर भोली कहा । फिर जादूगरनी बताया और अब चतुर बता रही हो । क्या हो गया है तुमको राधा ? सच पूछो तो मैं कुछ भी नहीं हूँ ।"

"अच्छा छोड़ो अब इस प्रसंग को । अब यह बताओ चाय पिलाओगी या नहीं । मैं सीधी दफ्तर से आ रही हूँ ।"

"चाय अवश्य पिलाऊँगी । वह भी आने वाले हैं । फिर तीनों ही साथ ही पियेंगे । कुछ देर इन्तजार का भी मजा ले लो ।"

"आज तो आपकी बातों में कुछ मिठास नहीं है भाभी ।"

"मिठास का तुम्हें करना भी क्या है । तुम चटपटी हो, इसीलिये तुम्हें चटपटी बातें सुना रही हूँ । बोलो ठीक है न ।"

"अच्छा बहुत सुन ली । अब यह बताओ, कल घर पर ही रहोगी न । आप मुझे चपटटी बना रही हैं, और मैं कल आपको मीठी बनाऊँगी ।"

राधा फिर वहाँ से चली गई । उसके जाते ही राजेश्वरी खाना बनाने लग गई । उसे पांच बजे तक खाना तैयार करना पड़ता है । राजेश खाना खाकर मजदूरों को पढ़ाने जाता है । ठीक पाँच बजे जब राजेश आया खाना तैयार था । आते ही राजेश्वरी ने हाथ धुलाकर थाली लगाई । थाली को राजेश के सम्मुख रखकर वह बोली—

"आज मैं खाना खाते ही आपसे बहुत लड़ूंगी ।"

"क्यों ? ऐसी क्या भूल हो गई हमसे ?"

"भला बताओ तो सही, आपने ऐसी भली देवी को छोड़कर मेरे जैसी मूर्ख को पल्ले से बाँध लिया है ?"

"तुम पगली हो अभी। तुम्हें आदमियों की पहचान नहीं है। गाँव में मोर तो देखा ही होगा। कितना सुन्दर होकर साँप को निगल जाता है।"

"आप कह रहे हो तो मान लेती हूँ। नहीं तो मेरी आत्मा यह नहीं मानती।"

"शहरों की लड़कियों को तुम अभी नहीं जानतीं हमें इतने दिन हो गये हैं दिल्ली में। अभी तक हम भी धोखा खा जाते हैं पहचान करने में।"

"देखो जी! आप मुझसे पढ़े लिखे अधिक हैं, ठीक है। फिर भी आप नारी को नहीं पहचान सकते। आप ही क्या, कोई भी पुरुष नारी को नहीं पहचान सकता। बताओ क्यों? पुरुष जब भी सुन्दर नारी की पहचान करता है, उसके मन में खलबली सी मच जाती है। ऐसी स्थिति में भला वह क्या पहचान कर सकता है नारी की।"

"तो फिर तुमने पहचान लिया है रजनी को।"

"बिल्कुल पहचान लिया है अपनी बड़ी बहन को।"

"चलो फिर उसको यहीं रख लो अपने पास।"

"आपकी आज्ञा के बगैर तो मैं तिनका भी नहीं तोड़ सकती। हाँ यदि आप आज्ञा दे दें तो मैं उनको अवश्य ही यहाँ रख लूँ।"

"शीघ्रता न करो, ठन्डा करके ही खाना अच्छा होता है।"

"मैंने तो जब से उन्हें देखा है अपने से ही घृणा हो गई है। ऐसा लगता है जैसे मैं सारस के जोड़े की शिकारी बन गई हूँ।"

"व्यर्थ की बातें छोड़ो। पानी लाओ।"

राजेश्वरी दौड़ कर पानी लाई। राजेश पानी पीकर बोला—

"रजनी और राधा में से तुम्हें कौन सी अच्छी लगती है।"

"गाय और भेड़ में से आप ही बतायें कौन महान है।"

"अब तो तुम्हारे पर निकल आये हैं राजेश्वरी।"

"यह सब आपकी कृपा का ही फल है।"

"अच्छा अब यह बताओ तुमने रजनी में क्या देखा है ?"

"यह भी पूछने की बात है उनमें अपनापन साफ दिखाई देता है।"

"कभी यह भ्रम मुझे भी हो गया था।"

"कभी नहीं। मेरे विचार से भ्रम तो आपको अब हो गया है।"

"अब तो तुम मेरी भी शिक्षक बनती जा रही हो।"

"ऐसा न कहो मेरे स्वामी। आपकी तो मैं सदा दासी रहूँगी।"

राजेश खाना खाकर जब खड़ा हुआ उसने सब्जी में सने हाथ से राजेश्वरी के मुँह पर चपत लगा दी। राजेश्वरी मुँह पोंछती हुई बोली—"यह क्या किया आपने यदि थप्पड़ ही मारना था तो दूसरे हाथ से ही मार देते।"

"पहले पानी लाओ। फिर हाथ धुलवाओ। इस समय देर हो रही है देवी जी।" और फिर राजेश हाथ धोकर पढ़ाने चला गया। राजेश्वरी को आज बिना पिये ही एक बोतल का नशा था।

३०

किसी से अपनी कहना और उसकी सुनना, यही है किसी भी सच्चे सम्बन्ध का मूल महत्त्व। रजनी जब राजेश के निकट आई उसके इस अभाव की पूर्ति हो गई। उसने अपने सम्पूर्ण अतीत को राजेश के सामने प्रस्तुत किया। भविष्य के लिए न जाने कितने कल्पनाओं को महल बनाए। और वह सब अब सन्ध्या का स्वप्न बन कर रह गए हैं। जब से रजनी वृद्ध ब्राह्मण की छत्र छाया में आई है निरन्तर आशा-वादी बनती जा रही है। अतीत में वह अपने कल्पित जीवन साथी को अपनी जीवनी के अध्याय पढ़कर सुनाया करती थी, और अब वह सच्चे

संरक्षक को सब कुछ सुना कर हल्की हो जाती है। उसे यदि छींक भी आ जाये तो भी वह वृद्ध को सुनाये बिना नहीं रहती।

उस दिन रात को भी जब वृद्ध ब्राह्मण धर्मशाला से आये, रजनी ने उनको सारी बातें सुनाई। राजेश्वरी के आदर्श व्यवहार की रजनी ने विस्तृत व्याख्या की। वृद्ध को यह सब सुनकर कुछ सन्तोष हुआ। उसने सब कुछ सुन कर धीमे स्वर में कहा—

"आने जाने में तो कोई बात नहीं है बेटी। देखना तो यह है कि कहीं वह तुम्हारे आने जाने का भार तो अनुभव नहीं करते हैं।"

"यह तो ठीक है पिताजी! राजेश तो मेरी परछाईं से भी दूर भागते हैं। आज भी उनके व्यवहार में असीम कटुता थी।"

"इसीलिये तो कह रहा हूँ रजनी। ताली हमेशा दोनों ही हाथों से बजती है। मान न मान मैं तेरा मेहमान वाली कहावत को सिद्ध करने से मनुष्य का सम्मान धूल मे मिल जाता है।"

"अब तो मै केवल छुट्टी को ही जा सकती हूँ वहाँ।"

"क्यों? और दिन क्या बात है?"

"मुझे नौकरी मिल गई है अस्पताल में।"

"मुझे बताया भी नहीं। क्या करती रहती हो माँ बेटी दोनों?"

"माता जी को तो कुछ भी पता नहीं है पिताजी। यह तो सब कुछ मैंने ही किया है। खाली बैठे मन नहीं लगता। सोचा कुछ पेट-पूजा के साथ देश सेवा भी क्यों न की जाये।"

"यह तो बड़ी अच्छी बात है बेटी। देश सेवा से बड़ा तो कोई धर्म ही नहीं है। ईश्वर तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य में अवश्य सफल बनायेगा।"

"इसीलिये तो मैंने नर्स बनना उचित समझा है।"

"देखो रजनी! कहने के लिये तो हम सब ही देश भक्त हैं। परन्तु सत्य यह है कि हममें से कुछ एक को छोड़ कर सबके सब केवल पेट भक्त बन कर ही आचरण करते हैं। मैं चाहता हूँ यदि तुम नौकरी करो तो सच्चे अर्थों में ही देश भक्त बनकर चलो। तुमने पढ़ा है हमारा

देश राष्ट्रीय एकता और देश भक्ति के अभाव में ही हज़ारों वर्ष पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा है। आज वे बेड़ियाँ हमने तोड़ दी हैं। उनके तोड़ने वाले क्रमशः हमसे विदा होते जा रहे है। इसी से हमारा उत्तरदायित्व बढ़ता चला जा रहा है। हमारा धर्म है, हम उन त्यागी महापुरुषों की आत्म-शान्ति के लिये अपने उत्तरदायित्व को समझें। संयम से जीवन को शक्तिशाली बनायें। सत्य से आत्मा का उत्थान करें। अहिंसा से परोपकार और न्याय से सुरक्षा को सदैव के लिये जीवित कर दें।

हमारे देशवासी आज अपनी स्वार्थ की सीमाओं में तेली का बैल बन कर घूम रहे हैं। हम पहले अपना घर भरते हैं। घर से निकले तो परिवार को देखा। परिवार से आगे बढ़े तो सम्बन्ध और जाति के जटिल बन्धनों में बंध गये। कोई सज्जन इससे निकला तो प्रान्तीयता को गले का हार बना बैठा। इससे आगे बढ़ने की जब बारी आती है तो हमारी भावनाओं का स्रोत पूर्णरूप से शुष्क हो जाता है। देश को देने के लिए हमारे पास कुछ बचता ही नहीं है। इसीलिये मैं चाहता हूँ—तुम जिस कार्य को करो देश हित को ही ध्यान में रख कर करना। कार्य वही है जो कर्तव्य को समझ कर किया जाता है।

तुम्हें एक विचार और करना है रजनी। तुम्हारा कार्य रोगी और घायलों की सेवा सुश्रुषा करना है। देखा जाता है इस कार्य को करने वाली कुछ युवतियाँ नकचढ़ी सी हो जाती हैं। रोगियों की उपेक्षा और घायलों से घृणा करने वाली किसी भी युवती को यह कार्य कभी नहीं करना चाहिये। हमारी व्यापक उत्तरी सीमा किस समय कितने बड़े संघर्ष का कारण बन जाये, यह कोई नहीं जानता। हमारे साथ मैत्री घात कई बार हो चुका है। हमने जिसको विश्वास दिया, उसी से बदले में अविश्वास पाया। अब इसीलिये हम सचेत हो गए हैं। हमें अब ईंट का जवाब पत्थर से देना है। हम अहिंसावादी वीर हैं। दुष्ट पर दया की भूल अब हम नहीं करेंगे। हमें दिखाना है; जिस देश में अहिंसा के अमर पुजारी जन्म लेते हैं, वहीं पर शंकर भगवान के प्रलयंकारी

नृत्यकारों का भी अभाव नहीं है। भारतीय वीर उसी सिंह के समान हैं जो जागने पर पाँव बढ़ाकर पीछे कभी नहीं हटाता। जानती हो रजनी सिंह को चलते हुए पगों में काँटे भी लग सकते हैं। नर्सों का कर्त्तव्य है वह उन काँटों को निकालने के लिये वीर सिंहों के साथ चलने की शक्ति संचित करे। और यह शक्ति तुम्हें भी संचित करनी है।

जिनको हमने जीना सिखाया, वही हमको आँखें दिखाये, भला यह कैसे सहा जा सकता है। हमें उनकी आँखें निकालनी हैं। सत्य मानो रजनी! जब मुझे उत्तरी सीमा की उस रक्त रंजित होली की याद आती है तो मेरा खून खौलने लगता है। जी चाहता है शत्रु की सारी सेना के लिये कपिल मुनि का अभिशाप बन जाऊँ।"

वृद्धा जो अब तक शान्त बैठी थी. चुप न रह सकी। वह बोली—"आज क्या सारी ही कथा कह कर दम लोगे?"

"तुम्हें नींद आ रही है तो सो जाओ। मुझे तो आज कुछ कहना ही है।"

वृद्धा शान्त हो गई। रजनी उस समय मन में सोच रही थी—

यदि यह गरिमा देश के प्रत्येक युवक में आ जाये तो भारत दुनियाँ के सम्पूर्ण दानवों को धूल में मिला कर ही दम ले। वह बोली—

"कृपया यह और बताइये, निजी भावना को भुलाया कैसे जाए?"

"भावना भुलाई नहीं जाती बेटी। उसे व्यापक बनाया जाता है।"

रजनी को आज विश्वास हो गया—मैंने जिनको पिता रूप में पाया है, वह केवल धर्मशाला के व्यवस्थापक ही नहीं एक सच्चे शिक्षक भी हैं। आन्तरिक सन्तुष्टि का अनुभव कर वह बोली—

"यदि आपकी आज्ञा हो तो कल रविवार को और मिल आऊँ राजेश्वरी से।"

"देख लो! चली जाना। यह ध्यान रहे कोई ऐसी वैसी बात न हो जाय। वह दो यात्री अब अपनी जीवन नौका में बैठे चले जा रहे हैं। तुम्हारा धर्म है, उन्हें आशीर्वाद दो कि उनकी यात्रा सफल हो सके। वे अपने तट पर सकुशल पहुँच जायें।"

"यदि आपका ऐसा विचार है तो मैं नहीं जाऊँगी।"

"जाने को मैं नहीं रोकता बेटी। मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि तुम जीवन को सच्चे अर्थों में जान जाओ। भोग की अपेक्षा जिन्होंने त्याग को जीवन में अधिक महत्व दिया है। उन्होंने ही अमरता को पाया है। शेष भोगी तो कीड़े-मकोड़ों के समान जन्म लेते हैं और मरते ही रहते हैं। कौन जानता उन बेचारों को ?"

वृद्धा अभी सोई नहीं थी वह फिर भड़क उठी—"कुछ रजनी भी तो पढ़ी है या सब आप ही पढ़ाओगे।"

इस बार वृद्ध के बोलने से पहले ही रजनी बोल पड़ी—

"आप सो जायें माता जी, हमें अभी नींद नहीं आ रही है।"

इस बार वृद्ध ने अपनी पत्नी की बात पर ध्यान दिया—

"अब तुम भी सो जाओ बेटी। समय बहुत हो गया है।"

तीनों फिर सो गये। रजनी को नींद कुछ देरी से आई। वह फिर भी चार बजे उठ गई। दैनिक कार्यों से निवृत्त हो उसने जब चाय तैयार कर ली तो वृद्ध और वृद्धा को भी जगा दिया। दोनों ने हाथ मुँह धोकर रजनी के साथ चाय पी। और फिर वृद्ध धर्मशाला चले गये। रजनी ने आज प्रथम बार खाना भी बनाया। वृद्धा को आज उसने कोई भी कार्य नहीं करने दिया। लगभग ग्यारह बजे तक वह सम्पूर्ण कार्यों से निवृत्त होकर तैयार हुई और फिर राजेश्वरी से मिलने चल दी। जब वह वहाँ पहुंची एक बज चुका था। रजनी ने जाते ही देखा—

राजेश्वरी कमरे में फर्श पर अचेत पड़ी है। उसका मुँह झागों से भरा हुआ है। पास में कुछ पेड़ों के कण और पकौड़ियाँ पड़ी हैं। राजेश्वरी की यह दशा देख, रजनी शोक के सागर में डूब गई। उसके पाँव डगमगा गये। उसका सिर चकराने लगा। वह दोनों हाथों से सिर को दबाकर राजेश्वरी के पास बैठ गई। उसकी बुद्धि जैसे क्षीण हो गई हो। वह कुछ भी नहीं सोच पाई। उसके आँसू भी आँखों में सूख गये। केवल इस समय रजनी के ये शब्द दीवारों से टकरा रहे थे।

"हाय मैं लुट गई। हाय मैं मर गई। हाय यह क्या हुआ ?"

उसी समय वहाँ राजेश आ गया। एक ही दृष्टि में यह सब दृश्य देख वह चीख पड़ा—

"हाय मैं मर गया। हाय नागिन तूने यह क्या किया ?"

राजेश ने पागल सा बन कर रजनी के गले को दोनों हाथों से दबा लिया।

"ओ दुष्ट, नीच, हत्यारी, तूने मेरे हरे-भरे घर को उजाड़ कर ही दम लिया।"

गले को दबाने से रजनी की आँखें लाल हो गईं। वह इस समय बाघ के पंजों में मृगी बनी हुई थी। उसी समय हल्ला-गुल्ला सुनकर वहाँ पास-पड़ौस के स्त्री पुरुष एकत्र हो गये। कुछ ने राजेश्वरी को देखा—उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। कुछ ने रजनी को छुड़ाया—वह भी राजेश की बज्र मुष्टि की जकड़न से अचेत हो गई थी। एक पड़ौसी ने पुलिस को फोन किया। पाँच मिनट में ही वहाँ पुलिस का उड़नदस्ता पहुँच गया। उस समय राजेश बिलख-बिलख कर चीख कर रहा था। रजनी उसके पास बरामदे में पड़ी थी। उसके बाल बिखरे हुए थे।

पुलिस फिर राजेश्वरी के मृत शरीर रजनी, और राजेश को थाने ले गई। राजेश्वरी की मृत देह निरीक्षण के लिए भेज दी गई। रजनी को जाते ही हत्यारों की कोठरी में बन्द कर दिया। तलाशी में उसके पास कुछ नहीं निकला। राजेश की दशा इस समय पागलों जैसी थी। वह चीख रहा था—"तुम कहाँ चली गईं राजेश्वरी ? तुम्हारे बिना मैं क्या करूँगा इस हत्यारी दुनियाँ में ? रजनी से कहो वह मुझे भी विष देकर तुम्हारे पास पहुँचा दे। मुझे क्षमा करना देवी इस नागिन को मैंने ही पाला था। इससे कहो मुझे भी डस ले।"

राजेश्वरी की मृत्यु की सूचना मिल में भी वायुवेग से पहुंच गई। वहाँ से 'सूका' सहित सैंकड़ों मजदूर दौड़ पड़े। थाने में मजदूरों का जमघट सा लग गया। पुलिस ने अपनी आरम्भिक सम्पूर्ण कार्यवाही पूर्ण करके लगभग छह बजे तक राजेश्वरी की मृत देह को लौटाया।

ठीक संध्या के सात बजे श्मशान घाट पर राजेश्वरी का दाह संस्कार हुआ। उस समय तक टैक्सी द्वारा 'सूका' राजेश के पिता और माता को भी यहाँ ले आया था।

दाह संस्कार की समाप्ति पर जब सब श्मशान से लौटने लगे, तो राजेश ने चिता से तपित धूल को उठाकर माथे से लगा, मन ही मन कहा—मुझे क्षमा कर देना देवी। तुम्हारे बिना मैं इस निर्मोही संसार में बहुत दिन नहीं रहूँगा।"

ओर फिर दुःख के सागर में डूबे सब वहाँ आ गये।

३१

पापी जब पाप के पथ पर पग बढ़ाता है—उसकी आत्मा उसे धिक्कारती है। वह जब बधिर बन जाता है, तो आत्मा भी मूक हो जाती है। पाप के पश्चात् आत्मा दूने वेग से फिर सचेत होती है। इस समय कुछ वज्र हृदय व्यक्ति ही उसका दमन कर पाते हैं। किन्तु जिनका हृदय कोमल है और जो भावान्ध होकर पाप कर बैठते हैं उनसे आत्मा का दमन सम्भव नहीं। राधा के साथ भी यही हुआ। जब वह राजेश्वरी को पेड़ों में विष खिलाकर गई, उसकी आत्मा चीखने लगी—

"ओ नीच हत्यारी! क्या बिगाड़ा था तेरा उस बेचारी ने? अकारण ही तूने बेचारी निरपराध की जीवन लीला समाप्त कर दी। खिलने से पहले ही तूने एक कली को डाली से काट कर फेंक दिया। हरे भरे घर को उजाड़ कर धूल में मिला दिया।

उस रात राधा ने खाना नहीं खाया। थाली में रखी रोटियाँ उसे फाड़ खाने के लिए दौड़ती सी दिखाई देनें लगीं। माता-पिता ने उसकी

उदासी का कारण पूछा। वह कुछ भी न बोल पाई। उसकी आकृति विकृत होती चली गई। मुख पीला सा पड़ने लगा। पास पड़ोस के सभी स्त्री-पुरुष राजेश के घर एकत्र हुए। राधा इस समय उल्टे मुँह चारपाई पर पड़ी रही। पाँवों से जैसे वह पंगु बन गई हो। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। वह जिस ओर देखती उसे उजाड़ सा दिखाई देता। उसका मस्तिष्क चिन्तन के भार से फटने लगा।

राधा को उस रात एक पल के लिए भी नींद नहीं आई। आधी रात उसने एक कपड़ा कसकर सिर पर बाँधा। इससे भी वह न सो पाई। उसका शरीर तपने लगा। पाप की आन्तरिक तपन जैसे उसे झुलस रही हो। प्रातःकाल तक उसके सम्पूर्ण अंग ढीले हो गये। वह फिर ठण्डी सी होने लगी। सवेरे पाँच बजे तक राधा के मस्तिष्क का सन्तुलन नष्ट होता चला गया। बुद्धि और मन के जिस संयोग ने राजेश्वरी के हत्याकाँड में सहयोग दिया था, अब निर्जीव से बन गये। और फिर राधा चीख पुकार करने लगी—

"हाय मैं मरी? हाय मैंने यह क्या किया? क्यों मारा बेचारी को।"

चीखती हुई राधा जब...। उसके माता पिता ने उसे पकड़ना चाहा। वह झटका मारकर उनसे छूट गई। दोनों फिर उसके साथ ही सड़क पर आ गये। उन्हें लग रहा था, राधा को किसी बीमारी ने अकस्मात घेर लिया है। राधा की चीख पुकार सुनकर पास पड़ोस की स्त्रियाँ वहाँ एकत्र हो गईं। उन्होंने देखा राधा भूतनी सी बनी हुई है। वे सब सोचने लगे क्या हो गया है इस सुन्दर लड़की को। डायन सी दिखाई दे रही है। राधा अब भी चीख रही थी।

"मैंने मारा है राजेश्वरी को। उसने मुझसे राजेश को छीन लिया था। देखूँ मेरा कोई क्या करता है। मुझे दण्ड दो। मैं हत्यारी हूँ।"

राजेश उस समय घर पर ही था। उसके माता पिता उसको इस समय सान्तवना दे रहे थे। राधा चीखती हुई उनके पास आ गई। उसके पीछे उसके माता-पिता और कुछ स्त्री-बच्चे भी थे। दौड़ती चीखती

राधा राजेश के चरणों पर गिर गई। वह अब भी पुकार रही थी—

"मैंने मारा है आपकी पत्नी को। मुझे दण्ड दो। देखूँ भला तुम मेरा क्या करते हो। चलो मुझे कहाँ ले चलते हो। मैं वहीं तुम्हारे साथ चलूँगी, जहाँ तुम जाओगे। अब तुम मुझे छोड़ नहीं सकते। मुझे गला घोट कर मार दो। मैं हत्यारी हूँ। हाय मैंने क्या किया?"

राजेश को निश्चय कर लेने में एक पल भी न लगा। यह पाप रजनी ने नहीं, इस दुष्ट ने किया है। पाप के भार से इसका बुद्धि सन्तुलन नष्ट हो गया है। पुलिस को सूचना दी गई। तुरन्त वहाँ पुलिस का उड़न दस्ता आया और विधिवत कार्य कर राधा को पकड़कर ले गया। थाने में राधा से पुलिस ने सम्पूर्ण भेद ले लिया। विष कहाँ से और किस प्रकार प्राप्त हुआ, यह भी रहस्य खुल गया। पुलिस ने राजेश से पूछताछ की उसने स्पष्ट कह दिया।

"मैंने उस समय रजनी को वहाँ पाया था इसीलिए मेरा विश्वास पुष्ट हो गया कि हत्यारी यही है। रजनी से मेरा कुछ समय पूर्व प्रेम सम्बन्ध रहा था। इसीलिए मेरे निश्चिय को अधिक बल मिल गया। इस समय यह निश्चित है कि रजनी निर्दोष है।

प्रातःकाल समाचार पत्र में यह सूचना प्रकाशित हो चुकी थी — रजनी नामक एक युवती ने एक विवाहित युवती को विप देकर मार दिया। अभियुक्ता का मृत पत्नी के पति से अनुचित सम्बन्ध था। अभियुंक्ता को पकड़ लिया गया है।"

पुलिस ने रजनी को छोड़ने में बहुत ही सावधानी से काम लिया। कुत्तों से अपराधी की जाँच कराई। कई साक्षी ली। समाचार पत्रों को सूचना दी गई। और फिर सन्ध्या तक सम्पूर्ण कार्यवाही पूर्ण कर पुलिस ने रजनी को मुक्त करने का निश्चय किया। जब पुलिस वाले रजनी के पास पहुँचे वह कोठरी में अचेत पड़ी थी। उसी स्थिति में उसे बाहर लाकर सन्तरे का रस दिया गया। वह कुछ सचेत हुई। आँखें खोलते ही उसने देखा—राजेश संवेदना की मूर्ति बना बैठा है। रजनी को देखते ही उसने आँखें झुका लीं।

मुरझाई लता के समान रजनी लड़खड़ाते पाँवों से थाने के बाहर कुछ देर चुपचाप बैठी रही। जब वह घर पहुँची रात्रि के ग्यारह बज चुके थे। वृद्ध और वृद्धा उसी के विषय में बातें कर थे। उन्हें इस विषय में कोई ज्ञान ही न था। समाचार पत्र वे पढ़ते नहीं। दिल्ली की कौलाहल पूर्ण जिन्दगी से बेखबर रहते हैं। वे तो सोच रहे थे, रजनी का किसी ओर मुँह उठ गया है। वह अब शायद नहीं आयेगी।

रजनी को देखते ही दोनों ने उस पर आँखें गड़ा दीं। दोनों एक साथ ही पुकार पड़े—

"कहाँ थी बेटी कल से ? हम तो रात भर नहीं सो सके।"

रजनी ने चारपाई पर बैठकर धीरे से सारी कथा कह सुनाई। इस समय दोनों की सूखी आँखों से इस हृदय-विदारक घटना को सुनते ही अश्रुधारा फूट पड़ी। कुछ देर दोनों शान्त बैठे रहे। वृद्धा कुछ सम्भलकर उठी और चाय बनाने लग गई। वृद्ध रजनी से बोला।

"यह तो बहुत बुरा हुआ बेटी। क्या उस मूर्ख लड़की ने…?"

"भगवान ही जाने पिताजी। वैसे तो वह इतनी बुरी न थी। न जाने उसे क्या हो गया। मुझे तो विश्वास ही नहीं होता कि यह नीच कर्म उसने किया है। देखने में तो वह बहुत भली दिखाई देती थी।"

"मनुष्य आकृति से अच्छा या बुरा नहीं होता, बेटी। देखना तो यह है कि उसकी आत्मा कितनी उज्जवल है। इसके साथ ही यह न भूलो कि भले से भला आदमी भी कभी-कभी ऐसा भूल कर बैठता है जिसकी उससे स्वप्न में भी आशा नहीं होती। अन्धी भावना की इसी-लिए तो मैंने आलोचना की थी। मैं तुम्हें रोकना भी चाहता था लेकिन स्पष्ट नहीं कहा।"

वृद्धा ने चाय प्यालियों में डालते हुए कहा—

"जो कुछ कहना हो, साफ-साफ क्यों नहीं कह दिया करते।"

"तुम जिन बातों को नहीं जानती उनमें अपनी टांग न अड़ाया करो। रजनी भूखी होगी। अब जल्दी खाना बनाओ।"

वृद्धा इस डांट के साथ चुपचाप खाना बनाने लग गई।

रजनी बोली—

"भविष्य में ऐसी भूल नहीं करूँगी पिताजी।"

"मेरी अच्छी बेटी ! मुझे तुमसे यही आशा थी।"

"यही नही पिताजी ! आप तो अब अपनी सम्पूर्ण आशाओं को ही मेरे प्रति केन्द्रित कर दें। मुझे लगता है विधाता मेरी अन्तिक परीक्षा ले चुके हैं। यह सब आपकी ही सदभावनाओं का ही फल है कि मैं आज मौत के मुँह से भी सुरक्षित चली आई हूँ।"

"ठीक है बेटी हमारी तो बुढ़ापे की अब तुम ही दृष्टि हो।"

"बहन राजेश्वरी की मृत्यु कितनी दुखद है पिताजी।"

"इससे बड़ा दुख और क्या हो सकता है बेटी। क्या किया जाये इस समय। कोई उपाय ही नहीं है इसका।

"सचमुच पिताजी। देवी थी राजेश्वरी बहन।"

"देवी-देवताओं का यह युग नहीं है रजनी। पशुओं की इस दुनियाँ में भले आदमियों को जीने ही कौन देता है। सत्य मानो बेटी इस काल में अतीत से भी अधिक मानवता के शिकारी पैदा हो गये है। आज का मानव दया से शून्य है। उसके मुख पर हिंसा वृत्ति की रेखायें अंकित होती जा रही हैं।"

"परन्तु नारी की हृदय तो दया का पालना होता है पिताजी।"

"देखो रजनी ! कार्यक्षेत्र में आने से नारी का नारीत्व आज कुछ धीमा पड़ता जा रहा है। इसीलिए तो आज नारी सब कुछ कर बैठती है।"

"क्या यह विचार आपका प्रत्येक नारी के विषय में है।"

'नहीं बेटी ! सब एक जैसे नहीं हो सकते। चन्दन के वृक्ष को झूला बनाकर भी नाग उसका कुछ नहीं बिगड़ पाते।"

"मेरी एक शंका का समाधान करेंगे क्या आप ?"

"तुम खाना खाओ और मैं शंका समाधान करूँ। बोलो क्या बात है ?"

"मुझे लगता है कुछ दोष मेरा भी है।"

"यह तो तुम अपनी आत्मा से पूछ कर देख लो।"

"राजेश के जीवन में यदि मैं न आती तो उन्हें यह दुख देखने ही न पड़ते। यही है मेरी दृष्टि में मेरा दोष।"

"नहीं रजनी ? मैं यह नहीं मान सकता। यदि कुछ अंशों में कोई दोषी है भी तो वह राजेश ही है। तुम दोषी नहीं हो सकतीं।"

"क्षमा करना पिताजी। मेरी आत्मा नहीं कहती कि मैं उन्हें दोषी स्वीकार करूँ। इस विषय में यदि दोषी हैं तो हम दोनों ही हैं।"

"देखो रजनी ! यही राजेश का दोष है कि तुम उसे दोषी होने पर भी दोषी नहीं मानतीं। विपरीत इसके वह तुम्हें निर्दोष होने पर भी दोषी मानता है। उसका धर्म था, विवेक की आँखों से तुम्हारी परख करता। आज वह तुम्हें जो दण्ड दे रहा है वह उतनी ही बड़ी हिंसा है जितनी राधा ने की है। राधा का अपराध प्रकट हो गया है। इसीलिए वह दंडित होगी। विपरीत इसके कोई प्रमाण न होने से राजेश निर्दोष बना बैठा है। दुनियाँ में अपराधी वही है जिसका अपराध सप्रमाण सिद्ध हो जाये। विश्वास करो रजनी ! कितने ही आदमी इस दुनियाँ में ऐसे हैं, जिन्हें तुरन्त मृत्यु दण्ड मिलना चाहिए। कुछ ऐसे भी निकल आयेंगे जिनको हजार बार फाँसी देकर भी दण्ड की पूर्ति नहीं होगी। किन्तु प्रमाणों के अभाव में या अपनी सत्ता के बल पर मुंह धोकर उज्जवल बने बैठे हैं। वह अपराधी नहीं है। यह ठीक है। फिर भी पापी वह अवश्य है।"

वृद्ध का यह कथन रजनी के हृदय में उतर गया। पानी पीकर वह बोली—

"और यदि भविष्य में अपनी भूल को स्वीकार कर लें।"

"उस स्थिति में राजेश दोष मुक्त हो सकता है। मेरे विचार में तो पश्चाताप के पश्चात् अपराधी को दंड मिलना ही नहीं चाहिए। पश्चाताप की ज्वाला मनुष्य के दूषित विचारों को झुलस कर क्षार बना देती है। और फिर मनुष्य ऐसे ही चमक उठता है जैसे आग में तपने

से कंचन । दण्ड से तो अपराधी कभी-कभी और 'भी अधिक अपराध करने को उद्यत हो जाता है ।

"अब इसे सोने भी दोगे या आज ही सारी पढ़ाई करोगे । तुमने तो पाठशाला ही खोल दी ।" ये शब्द वृद्धा के थे ।

इस बार वृद्धा की बात पर ध्यान दिया गया और फिर तीनों सो गये । रजनी सोते समय सोच रही थी—विचित्र विडम्बना है मेरा जीवन । एक रात सोती हूँ तो दूसरी को जागना पड़ता है ।

कुछ देर चिन्तन के बाद उसे नींद कब आई यह वह भी नहीं जानती । सवेरे जब वह उठी नौ बज चुके थे ।

३२

धर्मार्थी जी को राजेश्वरी की मृत्यु की सूचना अगले दिन उस समय मिली, जब वह कार्यालय में आये । मिल में यह चर्चा जोरों पर थी । उनको इस बात का बहुत दुख हुआ कि यह सूचना कल ही क्यों न मिली । लगभग सोलह घण्टे इस शुभ सूचना से वंचित रहे । उस दिन संध्या को वह पाँच बजे कार्यालय से चले गये थे । प्रातः काल समाचार पत्र पर वह साधारण दृष्टि ही डालते हैं । कार्यालय में वह समाचार पत्र अवश्य पढ़ते हैं इसके साथ ही वह जिस पत्र को पढ़ते हैं उसने यह सूचना प्रकाशित भी न की थी । उनको इस बात पर कुछ क्रोध भी आया । एक बार तो उन्होंने पत्र के सम्पादक को इस बारे में पत्र लिखने की बात भी सोची । फिर न जानें क्यों विचार बदल दिया ।

वास्तव में धर्मार्थी जी इस घटना को अपने जीवन की सबसे बड़ी सफलता मान रहे थे । क्रिया का कर्त्ता चाहे कोई हो, परन्तु भोक्ता वह स्वयँ को ही समझ रहे थे । उनका इस समय राजेश ही सर दर्द है ।

इस घटना से उन्हें लगा—अब राजेश की गतिविधियाँ या तो समाप्त हो जायेंगी या शिथिल पड़ जायेंगी। पत्नी की मृत्यु और वह भी रजनी के द्वारा, सुनते ही धर्मार्थी जी को लगा जैसे उन्होंने मैदान मार लिया है। उनकी इच्छा तो थी मिठाई बाँटने की। वह कुछ सोच कर ऐसा न कर सके। उन्हें यह पता है कि इस प्रकार उनकी बची हुई प्रतिष्ठा भी धूल में मिल जायेगी। दिखाने के रूप में उन्होंने सबसे दुख ही प्रकट किया। सबके साथ उन्होंने भी कहा—"बुरा किया रजनी ने।"

कल से धर्मार्थी जी कुछ उदास भी थे। बात यह हुई—धन्नू गुंडे पर धर्मार्थी जी को बहुत विश्वास था। वह समझते थे, मिल के सभी मजदूर उसकी परछाईं से भी भयभीत हो जाते हैं। जब से उन्होंने राजेश की मृत्यु का षड़यन्त्र रचा, तब से वे कुछ हलके से हो गये थे। हुआ कुछ भी नहीं। कल उन्हें सुनने को मिला—कुछ मजदूरों ने धन्नू और उसके साथियों की अच्छी तरह मरम्मत कर दी है धन्नू की तो अच्छी भली रूई सी धुन दी गई है। वह अब मजदूरों के सम्मुख भीगी बिल्ली बन गया है। इस बात से धर्मार्थी जी बहुत दुखी थे। उनको लग रहा था जैसे उनका दायाँ हाथ टूट गया है। शराब पीने के लिये सौ रुपये दिये और सब धूल में मिल गये। और अब उन्हें लगा जैसे उनकी सम्पूर्ण मनोकामना स्वत: ही पूर्ण हो गई है।

राजेश्वरी की मृत्यु सम्बन्धी सूचना की कटिंग को धर्मार्थी जी ने संभाल कर अपने पास रख लिया। उनको जब पता चला—कि कुछ मजदूर भी कल शाम शव-यात्रा में सम्मिलित हुये हैं तो उन्होंने ऐसे मजदूरों की नामांकन सूची तैयार कर ली। जो मजदूर ड्यूटी छोड़ कर गये थे, उनको तो दंडित करने का निश्चय किया। उस दिन धर्मार्थी जी ने एक निश्चय और किया—मजदूरों में खुल कर प्रचार किया जाये। वह लगभग ग्यारह बजे क्वार्टरों में भ्रमण के लिये चल दिये। इस समय उनके साथ चार मजदूर भी थे।

धर्मार्थी जी ने सारे क्वाटरों में प्रचार कराया—जो आदमी ऐसे चाल-चलन का है उसका क्वार्टरों में आना कहाँ तक उचित है। हमारी बहन बेटियाँ कभी-कभी घरों में अकेली भी रहती हैं। क्या पता

ऐसे आदमी का किस समय क्या कर बैठे। कितनी ही लड़कियाँ वह इधर से उधर कर चुका है। पैसा पास नहीं। झूठ सच बोलकर पेट पालता है। चाहता है कोई नौकरी मिल जाय। भला ऐसे प्राणी को नौकरी दी जा सकती है। नौकरी के लिये हाथ का सच्चा और चरित्र का पक्का आदमी होना चाहिए। वह तो चाहता है भोले मजदूरों का संगठन बनाकर एक दिन मिल में हड़ताल करा दूँ। सेठ जी को झुकाकर फिर हड़ताल खत्म कराने की बात कहूँ। इस प्रकार सेठ जी को दस पाँच हजार की गोली बनाकर चम्पत हो जाऊँ।

क्वार्टरों में प्रचार के पश्चात धर्मार्थी जी ने अपने कार्यालय में आकर उन मजदूरों को अपने पास बुलवाया जो कल ड्यूटी छोड़कर राजेश के घर गये थे। सबके इकट्ठा हो जाने पर उन्होंने एक छोटा सा भाषण दिया—

जिस लड़की ने राजेश की पत्नी को विष दिया है, वह वही बहन जी हैं, जो कुछ दिन पहले यहाँ कार्य करती थीं। उसका राजेश से बहुत पहले का अनुचित सम्बन्ध चला आ रहा है। वह अब गर्भवती भी है। इसमें सारा दोष राजेश का ही है। वह अपनी गाँव की पत्नी को मारना ही चाहता था। उसने यह कार्य कराया उस लड़की से। अब आप लोगों को सोचना चाहिए कि आप सब का जाना वहाँ कहाँ, तक उचित था। किसी के दुख में हमें जरूर शामिल होना चाहिए। परन्तु यहाँ तो यह दुख नहीं बल्कि राजेश के मन की बात हुई है। फिर आप लोग वहाँ क्यों गये। कुछ विचार तो किया होता। और यदि जब नहीं तो अब ही विचार कर देख लो।

धर्मार्थी जी की बात मजदूरों के हृदय में उतर गई। उनको लगा —जैसे सचमुच हमने बहुत बड़ी भूल की है। सबके सब राजेश से मन ही मन घृणा करने लगे। बोले वे कुछ नहीं। उनको शान्त देखकर धर्मार्थी जी ने अपने रंग को पक्का किया।

"मैं अपने छोटे भाइयों को दण्ड कोई नहीं दूँगा। भूल मुझसे भी हो सकती है। मैं तो चाहता हूँ अब कोई भूल आप न करें। अभी चार

दिन पहले मजदूरों ने धन्नू की दिल खोलकर धुनाई की है। यह सब राजेश के कहने से ही हुआ है यह भी मैं जानता हूँ। फिर भी मैंने किसी से कुछ नहीं कहा। धन्नू को आप जानते नहीं। उस पहलवान को हमने राजेश जैसे गुन्डों से छुटकारे के लिये ही रखा है। दुख की बात है आप उसे ही गुंडा समझते हैं। अब जो हुआ सो हुआ। आगे ध्यान रखना।"

मजदूर वहाँ से जब क्वार्टरों में गये तो उन्होंने धर्मार्थी जी की जय-जयकार के नारे लगाने आरम्भ कर दिये। सारे क्वार्टरों में राजेश के नाम से भी घृणा उत्पन्न होने लगी। धर्मार्थी जी उस समय कितने प्रसन्न थे, यह स्वयँ भी नहीं जानते। उस दिन वह कार्यालय से पाँच बजे नहीं उठे। जिस समय साढ़े पाँच बजे तो उन्हें पता चला—रजनी ने राजेश की पत्नी को विष नहीं दिया। यह सारा काँड तो राधा ने किया है। राधा इस समय पकड़ ली गई है। यह बात कुछ ही देर में सारे मिल में फैल गई। वायु के प्रवाह में जैसे उलटा मोड़ आ जाये। अधिकतर मजदूर सोचने लगे—

कहीं ऐसा तो नहीं है, राधा से धर्मार्थी जी ने यह कांड करा दिया हो। राधा इनकी कान पकड़ी चेली थी। हो सकता है वह अबोध लड़की इस घाघ की बातों में आ गई हो। छह बजे मजदूरों की इस शंका को बल भी मिल गया। उसी समय जब मिल में पुलिस आ गई और फिर धर्मार्थी जी से पूछताछ होने लग गई।

बात यह हुई—राधा ने थाने में जाकर पागलपन में जाने क्या कुछ कहा। पुलिस सब कुछ नोट करती गई। कई बार राधा ने धर्मार्थी जी का नाम भी लिया। पुलिस ने फिर गहराई से अध्ययन किया। पता चला राधा मिल में काम करती है। धर्मार्थीजी से उसकी घनिष्ठता है। दूसरी ओर राजेश और धर्मार्थी जी एक दूसरे कट्टर विरोधी हैं। पुलिस ने संदेह निवारण के लिये इस कांड में धर्मार्थी जी को भी घसीट लिया। रस्सी को साँप बनाना पुलिस के बाँये हाथ का खेल है। बस वह सीधी मिल पहुँच गई। उसके आते ही धर्मार्थी जी के होश उड़ गये। उनकी

सारी प्रसन्नता पर पाला सा पड़ गया।

पुलिस धर्मार्थी जी को अपने साथ थाने में ले गई। वहाँ पहुंच कर कुछ ही देर में धर्मार्थी जी ने अपना मुँह उज्जवल कर लिया। उन्होंने पुलिस को कितनी भेंट चढ़ाई यह तो वही जानते होंगे। हाँ इतना अवश्य है कि कुछ न कुछ देकर ही पिंड छुड़ाया।

वहाँ से मुख उजला कर धर्मार्थी जी सीधे मिल पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रचार कराया—राधा के चरित्र के बारे में पुलिस ने धर्मार्थी जी से जानकारी प्राप्त की थी। उन्होंने कह दिया—राधा हमारे मिल में काम अवश्य करती थी। परन्तु हम उसके निजी चरित्र के बारे में कुछ नहीं जानते। धर्मार्थी जीं को इस प्रचार के पश्चात् कुछ सन्तोष अवश्य हुआ, फिर भी वह पूर्ण सन्तुश्ट नहीं थे। उनकी सम्पूर्ण आशायें जैसे धूल में मिल गई हों।

रात को जब धर्मार्थी जी दस बजे कोठी पर पहुँचे, नौकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने उस दिन भोजन नहीं किया। वह जाते ही चारपाई पर थके हुए गधे के समान पड़कर करवट बदलने लगे। उन्हें नींद नहीं आई। वह सारी रात्रि सोचते रहे।

भगवान बचाये इन लड़कियों से। आज ही पगड़ी उछल जाती। अब मैं किसी लड़की को अपने कार्यालय में नहीं रखूँगा। ये तो बेपैंदी के लोटे के समान होती हैं। कब किस ओर को लुढ़क जायें, यह कोई नहीं जानता धर्मार्थी जी ने अपने दोनों कान पकड़कर प्रतिज्ञा की—अब मैं इन लड़कियों से सौ कोस दूर बचकर चलूँगा। इनकी निकटता तो प्राणों का अच्छा भला जंजाल है। धर्मार्थी जी के मन में एक बात और चक्कर काट रही थी—हो सकता है राधा ने मेरा नाम अपनी सहायता के रूप में ही लिया हो। पागलपन में आदमी समय अमिट सत्य की अभिव्यक्ति करता है।

राधा से हमारा कुछ न कुछ रागतमक सम्बन्ध था। हमने उससे जब जो भी जी में आया कहा। उसने कभी अपवाद नहीं किया। यदि कभी किसी बात का विरोध भी किया तो ऐसी वाणी में जिससे कानों

में अमृत वर्षा सी हो गई। निश्चित उसने हमें अपना समझ कर सहायता के लिए स्मरण किया है।

धर्मार्थी जी को यह भी विश्वास हो गया—कि पुलिस यहाँ राजेश की प्रेरणा से आई थी। खाने पीने का उसे थोड़ा अवसर मिल जाये, फिर तो वह तिनके का पहाड़ बना देती है। राजेश ने यहाँ भी मरते-मरते मेरे मुँह पर थप्पड़ मार दिया है। इस दुष्ट के बच्चे को जब तक उचित दंड नहीं मिलेगा यह अपनी हरकतों से बाज नहीं आयेगा। यह मेरी प्रतिष्ठा का भविष्य में भी शत्रु बना रहेगा। इसका पत्ता यहाँ से काटना ही होगा। अब प्रश्न यह है कि अब इसको यहाँ से हटाया कैसे जाय। धन्नू और उसके साथी तो अब चूहों की पंचायत हैं, घन्टी कोई नहीं बाँध सकता।

धर्मार्थी जी ने इस रात एक बात पर और विचार किया—राजेश अब स्त्रियों के जाल से मुक्त हो गया है। वह पुनः इस जाल में फँसेगा भी नहीं। इसीलिए वह अब पूरा कर्मठ बन जायेगा। साधु अब वह बन नहीं सकता क्योंकि आज इस ढोंगी समुदाय को रोटियाँ मिलना कठिन हैं। नौकरी उसे मिलना साधारण कार्य नहीं है। पुलिस या फौज में स्वस्थ आदमी ही काम कर सकता है। और वह अब सूई खाया सा पक्का साम्यवादी बन जायेगा। इसलिए हो सकता है चौबीस घंटे ही भविष्य में मेरे पीछे पड़ा रहे। इसीलिए उचित है उससे सहानुभूति का प्रदर्शन कर उसको अपना बना लिया जाये। सच्चे अर्थों में यदि वह अपना न बन सका तो न सही, दिखावे के रूप में ही सही। उसे अब अपनाने में ही काम चलेगा।

अन्त में धर्मार्थी जी ने यही निश्चय किया—राजेश को एक बार प्रेम-वाण से ही घायल करके देखूँ।

३३

उन्मत भ्रमर जैसे सन्ध्या काल कमल पुष्प के पर्यंक में शान्ति पा जाये, राजेश कुछ दिनों से यही अनुभव कर रहा था। राजेश्वरी ने अपने आदर्श प्रेम से उसकी सम्पूर्ण चंचलता पर विजय प्राप्त कर ली थी। विवाह के पश्चात् कुछ दिन वह राजेश्वरी को पहचान ही न सका। और जब पहचाना तो इतना कि वह उसे भाल की मणी समझ बैठा। अब वह मणी एक मूर्ख हत्यारी ने उससे छीनकर वहाँ फेंक दी, जहाँ से लौटकर आने का अब प्रश्न ही नहीं उठता। वह अब फन पीटता रह गया है। उसके उपवन को जैसे किसी ने उजाड़कर उसे किसी खाई में डाल दिया हो। उसको खाई से निकालने वाले खड़े हैं, परन्तु वह निकलना ही नहीं चाहता। उसे पता है अब वह उपवन नहीं मिल सकता। जीवन अब केवल मरुस्थल रह गया है।

राजेश के माता-पिता दिल्ली में ठहरे हुए हैं। उनका इच्छा है अब इसे घर लेकर ही जायेंगे। यहाँ यह भटकता फिरता ही रहेगा। शीघ्र विवाह करके खेती-बाड़ी के काम में लगा देंगे। यह जब आँखों के सम्मुख रहेगा कोई भूल भी न करेगा और हमें इसकी ओर से निश्चिन्तता भी रहेगी। राजेश्वरी की अस्थिताँ आज तीसरे दिन यमुना माई को समर्पित कर दी गई हैं। रमानाथ जी चाहते हैं तेरहवीं गाँव में जाकर की जाये। इसलिये भी वह राजेश को साथ ले जाना इस समय आवश्यक समझते हैं।

उस समय ग्यारह बजे होंगे। रामप्यारी खाना बना रही थी और

रमानाथ जी कमरे के बाहर चारपाई पर लेटे हुए थे। राजेश उनके पास बैठा अतीत की स्मृतियों में खोया हुआ था। रमानाथ जी धीमे स्वर में बोले—

मेरे विचार से अब तुम गाँव चलो बेटा। राजेश्वरी की तेरहवीं भी वहीं करेंगे। विधाता ने हमें जो यह दुःख दिया है उसके भूलने के लिये स्थान का बदलना भी बहुत जरूरी है।"

"आप चले जाएँ। मैं तो अभी कुछ दिन यहीं रहूँगा।"

"हम तुमको यहाँ अकेला छोड़कर कभी नहीं जायेंगे।"

"तो क्या मैं बच्चा हूँ जो डर जाऊँगा ?"

"माँ-बाप के लिये तो सन्तान बड़ी होने पर भी बच्चा ही होती है।"

"ठीक है आपकी बात। फिर भी मैं इस समय गाँव नहीं जा सकता। तेरहवीं जिस दिन होगी मैं आ जाऊँगा।"

"देखो राजेश! अब हम तुमको केवल घर रखना चाहते हैं। हमारे पास गुजारे के लिए जमीन है; इसीलिए हम अब नौकरी नहीं करायेंगे। घर चलो, और हमारी आँखों के सामने रहो।"

"यह भी देखा जायेगा। इस समय आप इस प्रसंग को ही छोड़ दें तो अच्छा हो। मेरा मन अभी सन्तुलित नहीं है।"

"बहुत हट नहीं किया करते राजेश!"

"आपने मेरा विवाह करते समय भी यही बात कही थी।"

"तो फिर भाग्य को मैं क्या करूँ बेटा। लड़की तो हजारों में एक थी। यदि गाँव में रहते तो शायद हमें यह दिन देखना ही न पड़ता।"

राजेश का स्वर कुछ कर्कश हो गया। वह बोला—आप हठ धर्मी छोड़ दीजिए। मैंने कह दिया मैं अभी नहीं चलूंगा चिता की राख ठन्डी नहीं हुई और आप को शायद विवाह की सूझती है। रामप्यारी जो अब तक चुपचाप सुन रही थी। बोल पड़ी—

"विवाह तो करना ही है बेटा। पाँव की जूती जब टूट जाती है तो दूसरी पहनी जाती है।"

राजेश ने मन में सोचा—गृह लक्ष्मी की तुलना पैरों की जूती से। विचित्र है हमारी सामाजिक मान्यतायें। और फिर कहते हैं कि इस संसार में हमारा सामाजिक ढ़ाँचा सबसे श्रेष्ठ है। प्रकट रूप में उसने कहा—

"आप शान्त ही रहें तो अच्छा है माता जी।"

दोनों इस कथन के पश्चात् कुछ नहीं बोले। राजेश भी वहाँ से उठकर मन हल्का करने के लिए सड़क पर आ गया। उसने देखा कुछ मिल मजदूर सूका सहित उसकी ओर आ रहे हैं। सबने आते ही प्रणाम किया, और फिर मिल की सम्पूर्ण गतिविधियों का संक्षेप में परिचय दिया। सब कुछ सुनकर राजेश बोला—

"अभी मेरा मन कुछ ठीक नहीं है। भाइयो मैं पन्द्रह दिन बाद मिल में आऊँगा और फिर देखूँगा, वहाँ के क्या समाचार हैं।" वह फिर सूका से कहने लगा—घर पर माताजी सहित पिताजी भी ठहरे हुए हैं। चाहो तो उनसे मिलते जाओ।

और फिर वह सब रमानाथ जी से मिलने घर चले गये। राजेश ने यूँ ही सामने दृष्टि उठाई। उसने देखा—

रजनी एक वृद्ध के साथ उसी ओर आ रही है। उसको विशेष आश्चर्य न हुआ। उसने निश्चय किया—रजनी शोक प्रदर्शन के लिए ही आ रही होगी। वृद्ध को साथ देखकर राजेश को कुछ जिज्ञासा अवश्य हुई। रजनी ने पास आकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और वृद्ध चुपचाप खड़े हो गये। राजेश ने प्रणाम का उत्तर दिये बिना ही दृष्टि नीचे झुका ली। वृद्ध बोला—

"बेटी राजेश्वरी की मृत्यु का समाचार पाकर हमें असीम दुःख हुआ है बेटा राजेश। कितनी दुष्टता की है उस लड़की ने।"

राजेश ने एक क्षण वृद्ध के मुख पर पड़ी हुई झुर्रियों को पढ़ा।

एक बार उसकी दृष्टि रजनी से टकराई। वह धीरे से बोला—

"क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ।"

"मेरा परिचय ही क्या है बेटा! यही तेलीवाड़े की एक धर्मशाला में यात्रियों के आवागमन की व्यवस्था करता हूँ। कुछ दिनों से यह रजनी मेरे यहाँ ठहरी हुई है। समझ लो अब यह मेरी बेटी बन गई है। इसीलिये इसके साथ ही आपके शोक में सम्मिलित होने आया हूँ।"

"क्या रजनी को आप पूर्ण रूप से जानते हैं ?"

"कुछ अवश्य जानता हूँ परन्तु तुमसे अधिक नहीं।"

"तो आप इस समय इसे रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए लाये हैं ?"

"नहीं बेटा! मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि ऐसे अवसर पर इस बात को लेकर तुम्हारे पास आऊँ। रजनी और तुम्हारा सम्बन्ध तुम दोनों की इच्छा पर निर्भर करता है। हाँ इतना अवश्य है मैं रजनी को भविष्य में पिता के प्यार से वंचित नहीं रहने दूँगा।"

"आप इस दुष्टों की दुनियाँ में कुछ पहले के आये हुए मानव हैं बाबा।"

"हाँ बेटा मेरी आयु इस समय सत्तर वर्ष हो चुकी है।"

"अच्छा फिर मैं आपसे किसी और दिन मिलूँगा। इस समय तो मेरे मस्तिष्क का सन्तुलन ठीक नहीं है।"

"अच्छा बेटा जब कहो मैं मिलने आ सकता हूँ। इस समय तो भगवान से प्रार्थना करनी है कि वह शत्रु को भी सद्बुद्धि दान करे।"

राजेश मन में सोचने लगा—"दुर्बलता मनुष्य में कितने थोथे आदर्शों को जन्म दे देती है। कहते हैं शत्रु को भी सद्बुद्धि दान करने की प्रार्थना करो। यह नहीं कि शत्रु का पत्थर से सिर फोड़ कर उसे स्वर्गधाम पहुंचा दे। दुष्ट पर दया भी भला कोई न्याय है।" वह बोला—

"आप मेरे पास कभी अकेले आयें तो अच्छा हो।"

इस कथन को सुनते ही रजनी सड़क के दूसरी ओर चली गई।

उसके जाते ही वृद्ध राजेश से कोमल स्वर में बोला—

"बोलो बेटा, क्या बात है ? इस समय तो मैं अकेला ही हूँ।"

"इस समय तो मैं कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूँ बाबा।"

"मुँह आई बात न रोको बेटा। हो सकता है मैं कुछ उत्तर दे सकूँ।

"ठीक है आपकी बात। फिर भी मैं इस समय कुछ नहीं कह पाऊँगा। क्या करूँ, बात होठों से बाहर ही नहीं आती।"

"तुम तो यही कहना चाहते हो कि रजनी अच्छी लड़की नहीं है। अब मैं तुम्हें इस बात का उत्तर देता हूँ। रजनी क्या है ? यह तुमने कभी भी विवेक की आँखों से नहीं देखा। रजनी जैसी आदर्श लड़की चिराग लेकर ढूँढने से भी नहीं मिल सकती। मेरे बाल धूप में नहीं पके हैं। चालीस वर्ष तक एक धर्मशाला में आने जाने वालों के न जाने कितने चेहरे मैंने पढ़े हैं। उन सब में रजनी के मुख पर मैंने जो पाया वह न कभी देखा, और न ही भविष्य में देख पाऊंगा।"

"आपने देखा बहुत है बाबा। फिर भी मैं कहूँगा आपने आजकल के जमाने की पढ़ी-लिखी लड़कियों को नहीं देखा।"

"तुम्हारी भूल है बेटा ! मैंने उस जमाने में सातवीं कक्षा पास की है, जिस समय के चौथी पास आज के बी० ए० पास को दस साल पढ़ा सकते हैं। इसीलिये तुम मेरी बात का बहिष्कार नहीं कर सकते। रजनी कुछ दिनों में माता बनने वाली है। मैं अपनी धर्म पुत्री के नाते उसकी जो बन सकेगी, सेवा करूँगा। अच्छा होता तुम होने वाले बच्चे को पिता के प्यार से वंचित न करते।"

"अन्त में आप मूल बात पर आ ही गये।"

"हाँ बेटा ! आज नहीं तो कुछ दिन पश्चात् मुझे यही सब तुमसे कहना था। बातचीत में आज ही व्यक्त कर दिया है।"

"ठीक है बाबा। इस विषय पर भविष्य में ही विचार करना उचित होगा। इस समय तो मैं आपसे क्षमा ही चाहूँगा।"

"अच्छा बेटा ! भगवान तुम्हें शान्ति दे। आपका निश्चय कुछ भी हो। हम तो आपको अपना सम्बन्धी ही समझते हैं।"

"और भविष्य में मैं भी आपको अपना संरक्षक समझूँगा।"

"तुम्हारी बात तुम जानों। हमारा तो निश्चय अटल है।"

उसी समय रजनी भी उनके पास आ गई। उसकी आँखें इस समय आँसुओं से गिली थीं। वृद्ध रजनी को रोती देखकर बोले—

"यदि तुमको कुछ कहना हो तो कह लो बेटी।"

"अंधों के आगे रोने से आँखें ही फोड़नी हैं पिताजी। इसीलिए कुछ भी कहना इस समय व्यर्थ है। जिसको खड़ा नहीं दिखता उसको बैठा ही क्या दिखाई देगा। जब ये स्वस्थ मन थे, कुछ न सुन सके। तो भला अब ये क्या सुनेंगे। इस समय तो इनके ऊपर इतना बड़ा व्रजाघात हुआ है, जिससे इनके मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ सा गया फिर बताइए अब ये क्या सुन सकेंगे ?"

वृद्ध इस समय भाव विभोर हो रहे थे। वह राजेश से बोले—

"सुन रहे हो बेटा, इन शब्दों को ?"

"सुन ही नही रहा बल्कि समझ भी रहा हूँ।"

"तो फिर कोई उत्तर है तुम्हारे पास।"

"समय पर बन सका तो उत्तर भी दूँगा।"

"क्या उत्तर देंगे आप ? एक देवी का इस प्रकार दुखद अन्त हो ही गया है। एक मैं हूँ, किसी दिन रोती-पीटती इस निर्मोही संसार से विदा हो ही जाऊँगी। मैं तो चाहती हूँ भगवान मेरी छोटी बहन को स्वर्ग में स्थान दे और उनकी आत्मा को शान्ति दे। यही मेरी प्रार्थना है। कितना निष्ठुर है विधाता मुझे कुछ दिन इन दोनों को हँसते-खेलते देखने का भी अवसर नहीं दिया।"

इस कथन के साथ ही राजेश की आँखें आँसुओं से भर गईं। वह आँसुओं को पोंछता हुआ भर्राई वाणीं में बोला—

"देखो रजनी ! दुर्बल गलियों में भटक कर मैंने जीवन का पथ

पा लिया है। अब मेरा निश्चय है पीछे नहीं लौटूँगा।"

"कौन कहता है आपसे पीछे लौटने के लिए। आप आगे बढ़ कर विवाह करें। मैं तो फिर वही आशीर्वाद दूँगी अपनी होने वाली बहन को।"

"यह समय व्यर्थ की बातों का नहीं है रजनी।"

"मैंने व्यर्थ की बातें न कभी की हैं और न ही करूँगी। आप मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ कर कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र हैं।"

इस कथन के साथ ही रजनी चल पड़ी और वृद्ध भी उसके साथ ही चल दिये।

राजेश उन्हें भूले पथिक की तरह खड़ा-खड़ा देखता रहा।

३४

जिज्ञासा भरी निवृति का समय अन्त में आ ही गया। रजनी आज कल में माता बनने वाली है। वृद्ध ने इस शुभ अवसर के लिए सम्पूर्ण व्यवस्था कर ली है। उसके पास सारे जीवन की कमाई लगभग सात सौ रुपये थी। सौ रुपये महीने तीन मास से रजनी लाकर दे रही है। एक हजार रुपये में से रजनी के लिए एक गर्म कोट सिला हुआ ही खादी ग्रामोद्योग से खरीद लिया है। दस सेर शुद्ध घी की व्यवस्था कर ली है। नर्स होने से रजनी के लिए अस्पताल में व्यवस्था सुविधापूर्वक हो गई है। साढ़े सात सौ रुपये वृद्ध के पास शेष हैं।

एक सप्ताह से रजनी छुट्टी पर है। वृद्धा प्रत्येक समय उसके पास बैठी रहती है। खाना भी वह उसी समय बनाती है जब वृद्ध घर पर आ जाते हैं। वृद्धा का आदर्श है—रजनी के पास से न उठना। रजनी को खाने के लिए सप्ताह भर से दूध, डबल रोटी और फल दिये जा

रहे हैं। अनुभवी वृद्धा का विश्वास है—"दूध अधिक पिलाने से सन्तान शुभ वर्ण होती है।"

कोठरी में वीरों और सन्तों के चित्र लाकर टाँग दिये गये हैं। वे समझते हैं—इस प्रकार सन्तों और वीरों के दर्शनों से सन्तान धर्म और कर्म दोनों दृष्टि से वीर होती है। वृद्धा ने कुछ चिन्ह देखकर विश्वास कर लिया है—"रजनी पुत्रवती ही होगी।" वृद्धा इस बात को कई बार वृद्ध से भी कह चुकी है। दोनों जब एकान्त में बातचीत करते हैं फूले नहीं समाते। जहाँ एक पैसे की आवश्यकता है वहाँ इस समय चार खर्च करते हैं। होने वाले बच्चे के लिए वृद्ध ने न जाने मन ही मन क्या सोचा हुआ है। एक आने की बीड़ी में सारा दिन बिताने वाला वृद्ध बच्चे के लिए खिलौने खरीदने के लिए सौ रुपये की योजना बनाये बैठा है।

कुछ पश्चिमी विचारकों ने प्रेम और सहानुभूति को स्वार्थ सापेक्ष बताया है। वृद्ध का आचरण यहाँ इस सत्य का अपवाद है। वृद्ध की आयु का अन्त निकट है।

यह जानकर भी वह विश्वास कर बैठा है—मेरे स्नेह का यह तन्तु अमरता लेकर आया है। उसका जीवन जैसे सार्थक हो गया है। वृद्धा उससे भी दो पग आगे है। दिन में दस बार रजनी के भाल पर हाथ रखती है। उसको तिल बराबर भी हिलने-डुलने नहीं देती। शीत की लहर से बचने के लिए प्रत्येक समय अंगीठी ही जलाये रहती है। रजनी को रात में कई बार देखती और उसे कपड़ा उढ़ाती है।

सन्ध्या के पांच बजे होंगे। वृद्धा दौड़ती हुई धर्मशाला गई और वृद्ध के कान में कुछ कह कर आ गई। वृद्ध दौड़े हुए गये और एक टैक्सी लेकर घर आ गये। रजनी को टैक्सी में लेकर दोनों अस्पताल पहुँच गये।

रजनी नर्सों के बीच घिर गई और वृद्ध तथा वृद्धा घर आकर बैठ गये। उस समय हवा कुछ ठन्डी थी। दोनों के पास वस्त्र साधारण थे। फिर भी उन्हें इस समय शीत का कोई ज्ञान न था। दोनों कुछ मधुर

कल्पनाओं में खोये हुए थे। वह बारह बजे तक एक बरामदे में शान्त भाव से बैठे रहे। नियम के अनुसार उनको अस्पताल से निकाला नहीं गया। उन्हें बारह बजे सुनने को मिला—

"पुत्रवती रजनी अब बिलकुल ठीक है।"

दोनों सुनते ही उल्लास में डूब गये। सारी रात्रि वहीं पर जागकर बिदा दी। दोनों अस्पताल से पाँच बजे घर लौट कर आये। वृद्धा तुरन्त कुछ पीने की सामग्री ले अस्पताल चली गई और वृद्ध धर्मशाला से छुट्टी लेकर राजेश को सूचित करने चल दिया। उसे विश्वास था—पुत्रवती रजनी को राजेश पत्नी के रूप में अवश्य स्वीकार कर लेगा। मनुष्य महान होने पर भी कहीं दुर्बल अवश्य होता है। राजेश तो आर्थिक युग का एक युवक ही है। रजनी अब नौकर भी है। वह तो रजनी को स्वीकार कर स्वयँ को सौभाग्यशाली समझेगा। भावना में यदि दोनों एक न भी हुए तो व्यवहार के लिए ही सही। दोनों जब साथ रहेंगे, एक दिन हृदय भी स्वच्छ हो ही जायेंगे। दूरी का भ्रम निकटता की दृष्टि से एक दिन समाप्त हो जाता है। नारी अपने सतीत्त्व की ज्योति में शंकाओं के अन्धकार को एक क्षण में समाप्त कर देती है।

वृद्ध जब राजेश के पास पहुंचा वह घर ही था। उसने देखते ही वृद्ध को पहचान लिया। चारपाई से उठ प्रणाम कर राजेश वृद्ध से बोला—"आइये।"

"अब क्या समाचार हैं तुम्हारे बेटा राजेश?"

"सब ठीक है पिताजी! आप सुनाइये।"

"मैं क्या सुनाऊँ बेटा! विधाता ने तुम्हें जो दुख दिया है वह तो अविस्मरणीय ही है। फिर भी एक शुभ सूचना लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। यदि अवसर हो तो कह दूँ।"

"आप बुजुर्गों की बातें न सुनने के समय का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"तो फिर सुनो बेटा रजनी एक पुत्र की माँ बन गई है।"

"यह तो बड़ी अच्छी बात है। ईश्वर बच्चे को प्रसन्न रखे।"

"उस दिन मैं कहना भूल गया। रजनी को अस्पताल में नौकरी भी मिल गई। शायद उसने आपको कभी बताया भी हो ?"

"यह और भी अच्छी बात है।"

"इस समय केवल इतना कहने से कार्य नहीं चलेगा राजेश।"

"इससे अधिक और मैं कह ही क्या सकता हूँ ?"

"कहना ही नहीं बेटा; तुम्हें कुछ करना भी चाहिए।"

"आप तो जानते हैं इस समय मैं कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हूँ।"

"करना क्या है राजेश। अपनों को अपनाने का प्रश्न है केवल।"

"अपने पराये की परिभाषा तो बड़ी जटिल है, पिताजी।"

"जटिल तो संसार में कुछ भी नहीं है, प्रिय राजेश। तुम मुझे पिता और मैं तुम्हें बार-बार पुत्र कह रहा हूँ। जानते हो कितना सुख है इसमें तुम्हारा और मेरा। अब यदि तुम मुझे यहाँ से उठा दो, तो वह हम दोनों का उतना ही बड़ा दुख भी बन जायेगा। बस मेरे विचार से यही है अपना और परायापन। किसी भी मधुर सम्बन्ध में कर्त्तव्य और भावना का समावेश होता है। इन दोनों में से जहाँ भावना प्रधान है, वहाँ सम्बन्ध की गहराई है और जहाँ कर्तव्य प्रधान है वहाँ सम्बन्ध की व्यापकता स्वयँ सिद्ध हो जाती है। तुम स्वयँ विचार करके देख लो।"

"और जहाँ कर्तव्य और भावना में से कुछ भी न हो।"

"तो फिर वहा धर्म के महत्व को स्वीकार कर लिया जाये।"

"क्या बतायेंगे यह धर्म क्या वस्तु है ?"

"आत्मा की स्वीकृति ही धर्म है राजेश।"

"अच्छा अब मैं आपके लिये चाय लाता हूँ।"

"मैं तुम्हारी चाय नहीं पी सकूँगा बेटा।"

"क्यों ? इसमें क्या बात है ?"

"देखो राजेश ! रजनी मेरी पुत्री है और हमारे निश्चयानुसार तुम उसके पति हो। इसीलिए तुम्हारा पानी भी मैं नहीं पी सकता।" राजेश ने मन में सोचा—एक राधा के माता-पिता हैं जो उसकी कमाई पर दिन बिता रहे हैं। दूसरे उनके विपरीत ये वृद्ध हैं जो सम्बन्ध के कच्चे धागों को जोड़ते फिर रहे हैं। वह बोला—

"आप किस युग की बातें कर रहे हैं बाबा। इस युग में तो लड़कियों की कमाई खाई जाती है। आप तो एक कप चाय में ही धर्म भ्रष्ट समझ बैठे।"

"मुझे बाबा न कह कर यदि पिताजी ही कहो तो अच्छा है राजेश।"

"क्षमा करना मैं भूल गया था।"

"अब सुनो चाय की बात मैं इस बात का कट्टर विरोधी हूँ कि लड़कियों की कमाई खाई जाये।"

"यह तो एक रूढ़िवादी परम्परा है, पिताजी।"

"देखो राजेश रूढ़ियाँ सब ही व्यर्थ नहीं होतीं। बहुत सी रूढ़ियाँ तो ऐसी हैं, जिनको तोड़कर आज हम केवल पाप भागी ही बने हैं। याद रखो, हमारे देश की प्रत्येक रूढ़ि के पीछे कोई न कोई सत्य अवश्य छिपा हुआ है। इसीलिए रूढ़ियों की उपेक्षा मत करो।"

"क्या बता सकेंगे, सन्तान विहीन वृद्ध और वृद्धाओं का बुढ़ापा निर्धनता की स्थिति में किस प्रकार व्यतीत हो सकता है ?'

"इसका उत्तर तो सीधा है। उनकी देखभाल करना सरकार का धर्म है। जो सरकार अपने वृद्धों को रोटी नहीं दे सकती, वह सरकार ही निर्जीव है। वृद्धों का आर्शीवाद देश के लिए उतना ही आवश्यक है जितना फूल के लिए सुगन्ध और रात के लिये चाँदनी।"

एक बात और बतायेंगे आप ?"

"एक नहीं दो। हमने जीवन का क्रियात्मक अध्ययन किया है बेटा।"

"क्या लड़कियों को विवाह नहीं करना चाहिए।"

"यह कोई पूछने की बात है। मेरी दृष्टि में तो एक अविवाहित युवती गर्मी की ऋतु मे तपी हुई उस मृगी के समान है जो छाया और जल की खोज में प्रत्येक समय भटकती रहती है। न जाने इस युग में कुछ युवतियों को अविवाहित रहने का क्या भूत सवार हो गया है। लता चाहे मकान की छत पर चढ़ जाये, वायु के झोंके उसे इधर-उधर झुकाये बिना नहीं रहते। मैं समझता हूँ तुम मेरी बात समझ गये होंगे।"

राजेश को लगा—वृद्ध की बातें अनुभूतियों की गहराई पर आधारित हैं। वह जैसे उनसे कुछ पा रहा हो। वह बोला—

"यह बात भी मेरे विचार से पुरानी पड़ गई है इस युग में।"

"सत्य कभी पुराना नहीं होता राजेश। यौवन काल में किसी भी स्थिति में प्राणी प्रकृति की पुकार का दमन नहीं कर सकता। खूँटे से खुलकर जैसे जानवर इधर-उधर भटकता रहता है, यही दिशा अविवाहित युवक और युवतियों की है। उनके लिए बन्धन अनिवार्य है।"

"अच्छा अब यह बताइये आपकी क्या सेवा करूँ?"

"इस बात का अभी तुमने अवसर ही नहीं दिया है मुझे।"

"मुझे अवसर न देने वाला न मान कर यदि अपना सेवक समझें तो अच्छा है। कहिए मेरे योग्य क्या सेवा है।"

"यही कि मेरे साथ अस्पताल चलो। रजनी ने बुलाया है।"

"यह तो सम्भव नहीं है पिताजी।"

"अभी तो तुम कह रहे थे मुझे आज्ञा दीजिए। मैं सेवक हूँ।"

"मैंने आपकी सेवा की बात की थी और आप इस विषय को दूसरी ओर खींच ले गये। इस विषय में तो मुझे क्षमा कर दीजिए।"

"मेरे साथ चलने में तुम्हें क्या आपत्ति है राजेश?"

"देखिए पिताजी! प्रथम तो अभी मेरा मन ही स्वस्थ नहीं है। दूसरे अभी मेरी आत्मा ने भी आज्ञा नहीं दी है। इसीलिये मैं असमर्थ हूँ आपके साथ चलने में।"

"देख लो राजेश ! कहीं ऐसा न हो, धर्म की आड़ में तुम अधर्म कर बैठो। मैं चाहता हूँ तुम मेरी बात मान जाओ।

"जो दंड मैं पा चुका हूँ, उसको सहन करने के पश्चात् अब मुझे किसी भी दंड का भय नहीं है। आदरणीय ! जो हुआ जब वह देख लिया तो फिर जो होगा, वह भी देखा जायेगा।"

"भूल पर भूल करना बुद्धिमानी नहीं है राजेश।

"दंड के सहन की सामर्थ्य होने पर भूल करने से मनुष्य को भय नहीं होता पिताजी।"

"तो यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है ?"

"अभी तो आप यही समझ लें।"

"साथ चलकर केवल बच्चे को देख लेते।'

"समय आने दीजिए। सहज पकने से ही फल मीठा बताया गया है।"

इस कथन के साथ ही वृद्ध उठे और सीधे अस्पताल को चले गये।

६५

धर्मार्थी जी आजकल दिन-रात मिल में ही रहते हैं। मिल का जो द्वार मजदूरों के क्वार्टरों की ओर है, उसके ऊपर दो कमरे हैं। वह उन्हीं में रहते हैं। मजदूरों की प्रत्येक बात का अब उन्हें तुरन्त पता चलता रहता है। प्रत्येक मजदूर उनसे आज्ञा लिये बिना ही जब चाहे, मिल सकता है। उन्हें अब विश्वास हो गया है मजदूर केवल प्रेम-भाव से ही वश में आ सकते हैं। दमन का समय अब समाप्त हो गया है। मिल के बड़े अधिकारी उनसे मिलने में भय खाते हैं; और मजदूर घोड़े की भांति उछलते उनके पास चले जाते हैं। मजदूरों में इस बात का

अनुकूल प्रभाव पड़ा है। राजेश कुछ दिनों से मिल में आता नहीं है। इसीलिए भी मजदूर धर्मार्थी जी की मुट्ठी में बन्द होते जा रहे हैं।

धर्मार्थी जी को अब विश्वास हो गया है—मिल में राजेश के पंजे अब नहीं जायेंगे। राजेश के विरोध में जमकर प्रचार किया जा रहा है। उसके चरित्र पर जी खोलकर कीचड़ उछाली गई है। यहाँ तक भी प्रचार किया गया है कि राजेश ने अपनी पत्नी को स्वयं ही मरवाया है। अनेक बार एक सत्य की, सत्य सिद्ध करने के लिए यदि पुनरावृति की जाये वह सत्य बनकर ही रहता है। राजेश के विरोध में भी यही किया जा रहा है। मजदूरों को, राजेश से विश्वास उठता जा रहा है।

मंगलवार को धर्मार्थी जी व्रत पहले से ही रखते हैं। बन्दरों को चने डालने का नियम भी भंग नहीं हुआ। अब उन्होंने एक और आदेश जारी कर दिया है—"मिल क्वार्टरों में बन्दरों को कोई न भगाये। बन्दर यदि किसी को हानि पहुँचायेंगे, तो हम उसकी पूर्ति कर देंगे। किसी की पुरानी धोती भी यदि बन्दरों ने फाड़ दी तो उसको नई धोती दे दी गई। सेठ जी ने हर इकादशी को कुछ पुन्य करना निश्चय कर लिया है। यूँ तो वह पहले ही पुण्य आत्मा हैं न जाने कितने दीनों का वह उद्धार कर चुके हैं। किन्तु इस समय इकादशी का पुन्य केवल मजदूरों के निमित्त निश्चित किया गया है। प्रत्येक इकादशी को वह मिल में अपने हाथों से कुछ न कुछ दान अवश्य देते हैं। कभी वह प्रत्येक क्वार्टरों में चार-चार लड्डू बँटवाते हैं। कभी दो-दो सन्तरे या केले।

उस दिन धर्मार्थी जी ने रविवार को मनोरंजन कार्यक्रम की जो मजदूरों को सूचना दी थी, उसकी तिथि बदल गई है। सेठ जी की इच्छा से यह कार्यक्रम इकादशी को निश्चित हुआ। इसके लिए नृत्य, संगीत और कवि सम्मेलन की व्यवस्था पूर्ण हो चुकी है। धर्मार्थी जी ने कुछ समय पूर्व मजदूर कल्याण कोष की स्थापना की थी। मनोरंजन कार्यक्रम का सम्पूर्ण व्यय उसी कोष से होगा। वह समझते हैं मजदूरों को सबसे बड़ा अभाव मनोरंजन का ही है। इस दृष्टि से वह सन्तुष्ट

होने चाहियें ।

इकादशी को प्रातःकाल ही मिल में हलचल सी मच गई। एक ओर मजदूरों को बाँटने के लिए लड्डू बनने आरम्भ हो गये। दूसरी ओर रंगमंच की सजावट होने लगी। इस बार लड्डू आकार में कुछ बड़े हैं। एक पाव भर चढ़ेंगे। प्रत्येक कारीगर को चार लड्डू दिये जायेंगे। मिल के मुख्य द्वार को भली प्रकार कल ही सजा दिया गया था। सब कुछ होने पर भी धर्मार्थी जी को एक चिन्ता जोंक की तरह चिपटी हुई है, कहीं पुरानी गड़बड़ की पुनरावृति न हो जाय। मजदूरों को हल्ला-गुल्ला करते देर नहीं लगती। इसलिए वह मजदूरों के मन की बात जानने के लिए बहुत उत्सुक है।

सवेरे के दस बजे होंगे। उस समय धर्मार्थी जी सम्पूर्ण तैयारी का निरीक्षण कर रहे थे। उसी समय उनके पास धन्नू गुंडा और उसके पाँच प्रमुख साथी आ गये। उनके प्रणाम का धर्मार्थी जी ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया। न चाहने पर भी वह उनसे बोले—

"कहो पहलवान धन्नू क्या समाचार है तुम्हारे ?"

"सब ठीक है शाब। आप कोई चिन्ता न करें।"

"यह तो तुम पहले से ही कहते चले आ रहे हो। किया आज तक कुछ भी नही। तुम्हारी तो वही कहावत है नापो सौ गज और फाड़ो न एक गज भी।"

"नहीं शाब। इस बार मैंने नई टोली बना ली है। जब से झगड़ा हुआ मैं बहुत सावधान हो गया हूँ।"

"शावधान हो गये हो, या सावधान। पहले बोलना तो सीख लो। ऐसा लगता है जब से तुम्हारी पिटाई हुई है। तुम्हारी आवाज भी बदल गई है। सचमुच मुझे तुम्हारे उपर बहुत विश्वास था।"

धन्नू इस व्यंग्य से लाल हो गया। गर्व भरे स्वर में वह बोला—

"अबकी बार कोई मौका आने दीजिए, मैं सालों की धज्जियाँ उड़ा के रख दूँगा। जब तो मैं धोके में आ गया था।"

"ऐसे ही उड़ाओगे, जैसे राजेश की उड़ाई है ।"

"उसका तो अब मैंने आना ही बन्द कर दिया है ।"

"वह तुम्हारे भय से नहीं हुआ बहादुर। उसकी पत्नी मर गई है ।"

"आप यकीन करो । अब यहाँ आयेगा, तो पत्नी के पास ही पहुंच जायेगा ।"

"चलो फिर देखेंगे । आज थोड़ा सावधान रहना ।"

"कह तो दिया सरकार आप चिन्ता न करें ।"

"एक बात याद रखना आज पीनी नहीं है ।"

"पीने के बिना काम कैसे चलेगा सरकार ।"

"एक दिन न पीने से क्या मर जाओगे ।"

"चलिये फिर ऐसा ही होगा ।"

धन्नू अपने साथियों सहित वहाँ से चला गया। उसके जाते ही धर्मार्थी जी सारी व्यवस्था के निरीक्षण के लिए चल दिए। उन्होंने एक चक्कर क्वार्टरों का भी लगाया। इस समय उनके साथ मिल के छोटे बड़े कर्मचारियों का एक झुंड था। धर्मार्थी जी जान पड़ते थे जैसे कोई शिकारी अपने कुत्तों के साथ शिकार के लिए निकल पड़ा है। वह एक बजे तक क्वार्टरों में घूमते ही रहे। इस समय उनके हाथ एक पल के लिये भी भाल से अलग नहीं हुए। जब थक गये, तो डेढ़ बजे अपने विश्राम कक्ष में आकर उन्होंने चादर तान ली।

चार बजे जब धर्मार्थी जी सोकर उठे, सारी व्यवस्था पूर्ण हो चुकी थी। एक बार उन्होंने फिर सम्पूर्ण तैयारी को देखा। निश्चयानुसार पौने पाँच बजे दो नर्तकी दल बल सहित मिल में पहुंच गई। गायिका पाँच बजे आई। और फिर सबसे पीछे राजधानी के कविगण वहाँ आने आरम्भ हो गए। धर्मार्थी जी इस समय नर्तकियों के पास से कहीं जाना नहीं चाहते, फिर भी सवा पांच बजे उनको स्वागत द्वार पर आना पड़ा। इस समय वहाँ पर सेठजी की प्रतीक्षा में बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। सबसे आगे धर्मार्थी जी खड़े थे। सेठ जी पाँच बजकर ठीक

पच्चीस मिनट पर वहाँ आये । धर्मार्थी जी ने उन्हें सहारा देकर कार से उतारा । और फिर स्वागत की सम्पूर्ण क्रियाओं के पश्चात् सब ही रंग-मंच की ओर चल पड़े । सेठ जी बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे । इसीलिए सबकी गति भी धीमी थी । अन्त में सबने अपना स्थान ग्रहण कर लिया ।

सेठ जी परिवार सहित रंग मंच के ठीक सामने आराम कुर्सियों पर बैठे । उनकी मित्र मंडली के लिये उनके पीछे कुर्सियाँ सुरक्षित थीं । वे उन पर जम गये । तीसरी कुर्सी की पंक्ति में मिल के उच्च अधिकारी बैठाये गये । इन कुर्सियों के पीछे आज मजदूरों के लिये बैंच बिछाये गये थे । वह कुछ उन पर अपना स्थान ग्रहण कर गये । बैंच कम थे इसीलिए दो तिहाई मजदूरों के पीछे खड़ा रहना पड़ा । इसीलिए कुछ देर गड़बड़ सी भी मची रही । अन्त में सब शान्त हो गये ।

रंगमंच से पर्दा उठा और दो नर्तकी मृदंग के स्वर के साथ नृत्य करती हुई दिखाई दीं । उपस्थित दर्शकों की दृष्टि उसी ओर खिंच गई । इस समय दोनों नर्तकी कौनसा नृत्य प्रदर्शन कर रही थीं, यह वहाँ एक दो को छोड़ कोई भी नहीं जानता था । पढ़े-लिखे व्यक्ति अपना कला सम्बन्धी ज्ञान प्रकट कर रहे थे । एक ने कहा—

"यह भाट नाट्य कला है ।" दूसरा बोला—

"भाट नाट्य कला नहीं मिया, भरत नृत्य कला है ।"

तीसरे ने सुधार किया—"नहीं यार यह कत्थक नृत्य है ।" कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने नृत्य को राधा कृष्ण लीला कहकर ही अपनी जिज्ञासा को शान्त कर लिया । कुछ ऐसे भी थे, जो इस विषय में कुछ न कहकर केवल नृतकियों के सुगठित अंगों की लचक पर ही दृष्टि जमाये थे । मजदूरों की दृष्टि वस्त्र भूषण पर ही जमी हुई थी । कुछ नर्तकियों के वक्ष पर आँखें गड़ाये थे, और कुछ सुडौल जंघाओं में ही उलझ कर रह गये थे । सेठ जी की दृष्टि नर्तकियों के हाव:भाव के साथ

गिरगट के समान रंग बदल रही थी। धर्मार्थी जी इस समय किस लोक में थे, यह वही जानते होंगे।

दस मिनट तक नृत्य हुआ और फिर पर्दा गिर गया। पर्दा फिर उठा तो रंगमंच पर दो गायिका दिखाई दीं। उन्होंने एक ही पल में अपनी मधुर तान से श्रोताओं की श्रुतियों को छीन लिया। गाना शृंगार रस में डूबा हुआ था। इस बार सेठ जी का मुँह ऐसा जान पड़ता था, जैसे वह खटाई खा रहे हों। उनके विषय में सब जानते हैं। मन्दिर में वह भक्ति रस में पके गीत सुनते हैं। सूर, मीरा, नानक आदि सन्तों के पद उन्हें बहुत प्रिय हैं। आज उन्होंने चार गाने शृंगार रस के सुने। अन्दर से चाहें अच्छे ही लगे हों भी उन्होंने ताली एक बार भी नहीं बजाई।

नृत्य और गान की समाप्ति पर कवि सम्मेलन हो ही न सका। सेठ जी समय के अभाव में जैसे ही खड़े हुए, सारे दर्शकों में गड़बड़ मच गई। सेठ जी को विदा कर धर्मार्थी जी रंगमंच पर आकर खड़े हुये, और कुछ शान्ति स्थापित होने पर बोले—

"आज मेरे भाइयों ने कार्यक्रम को शान्त भाव से सूना, और देखा, इसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूँ।"

उसी समय उनके पास उपस्थित कविगण आ गये। धर्मार्थी जी ने प्रत्येक को किराये के लिये दस-दस रुपये दे कर अपना पिंड छुड़वाया। उन्हें इस समय नर्तकियों और गायिकाओं के लिये चाय पानी की बहुत चिन्ता थी। वह फिर शीघ्र ही कार्यमुक्त हो उनके पास चले गये।

मजदूरों की टोलियां जब घर लौट रही थीं, बात-चीत करती जा रही थीं। धर्मार्थी जी का समर्थक कोई कह रहा था—

"सचमुच धर्मार्थी जी ने मिल में नया जीवन डाल दिया है।"

कुछ कहते हुए जा रहे थे—"सेठ जी भी धर्मार्थी जी के हाथों में खेलते हैं।"

एक मन चला युवक कह रहा था—

"लड़कियाँ क्या थीं, यारो परियाँ थीं परियाँ। इनको तो देखने से ही भूख भाग गई है।" एक युवक ने उसकी बात काट दी—

"यह बात नहीं है भाई। धर्मार्थी जी चरित्र के बहुत अच्छे हैं।

कुछ सोच रहे थे,—यह सब मजदूरों को बुद्धू बनाने का ढ़कोसला है। कुछ बेचारों को घर पहुंचने की जल्दी थी। जाते ही चार लड्डू जो मिलेंगे। दूसरी ओर धर्मार्थी जी ने कमरे में पहुंच कर देखा—खाने पीने की सम्पूर्ण व्यवस्था पूर्ण हो चुकी है। उनके जाते ही पीने का दौर चला और फिर सब भोजन पर जुट गये। उसी समय एक नर्तकी बोली—

"यहाँ पर नृत्य के जानकर तो बहुत ही कम लोग थे।"

धर्मार्थी जी ने उत्तर दिया—

"यह आपको मानना ही होगा कि सब रस मग्न हो गये।"

उसी समय एक गायिका बीच में ही बोली—

"गाने में तो विशेष रुचि थी नहीं श्रोताओं की।"

धर्मार्थी जी ने गायिगा का समर्थन किया—

"गाना तो रेडियो के कारण बहुत ही सस्ता मनोरंजन हो गया है।"

भोजन के साथ-साथ बात-चीत का कार्यक्रम भी नौ बजे तक समाप्त हो गया। इसके बाद गायिका तो विदा हो गई, और नर्तकियाँ उस रात वहीं ठहरीं।

३६

रजनी अस्पताल से घर जा रही है। वह और उसका बच्चा पूर्ण स्वस्थ हैं, परन्तु मन रूप में स्वस्थ नहीं कही जा सकती। वह आशा और निराशा के झूले में झूल रही है। वह जब बच्चे को देखती है फूली नही समाती। पुत्र रत्न को पाकर वह समझ रही है, राजेश का वह अन्तिम आर्शीर्वाद पूर्ण हो गया। विपरीत इसके जब वह सोचती है— आर्शीवाद देने वाला अपने बच्चे को देखना भी नहीं चाहता। वह निराशा में डूब जाती है। जब से वृद्ध ने बताया है— "राजेश बुलाने पर भी नहीं आया।" रजनी की आशा संवेदना में बदल गई है। उसको विश्वास था—राजेश इस समय अवश्य आयेगा। जब न आया, तो रजनी ने स्वयं को सान्त्वना दी।—"कोई बात नहीं! जब वह नहीं रहा, तो यह भी नहीं रहेगा। विधाता जब इतनी दया कर सकते है तो क्या इतनी न करेंगे। इस समय मैं दो सत्य आत्माओं की छत्र-छाया में हूँ। मुझे स्नेह का आलम्बन भी मिल गया है। मेरे जीवन का कुछ लक्ष्य निश्चित हो गया है। मैं अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं हूँगी। हो सकता है कभी राजेश की विवेक दृष्टि सत्य को देखने में समर्थ हो जाये।"

रजनी दस बजे घर जायेगी। इस समय नौ बजे हैं। उसकी कुछ नर्स सखियाँ उसके पास एकत्र हो गई हैं। वह लगभग सभी मैट्रिक पास हैं रजनी का बी० ए० पास होने से इनमें कुछ विशेष सम्मान है।

इस समय उन्होंने सम्मान की बात को भूलकर कुछ छेड़छाड़ करने का मन ही मन निश्चय कर लिया है। वह आते ही मनोविनोद के कार्य-

क्रम में जुट गईं। उनमें से एक ने सबसे पहले घर पर दावत की बात चलाई। वह बोली—

"घर पर दावत में शुद्ध घी की मिठाई खायेंगे हम तो।"

दूसरी बोली—"जीजा जी को तो दिखाया ही नहीं है बहन जी ने।"

तीसरी बोली—"छिपाकर रखती हैं कहीं नजर न लग जाये।"

चौथी ने हठ की—"हम घर जायेंगे और देखकर ही आयेंगे।" पाँचवी बेचारी चुपचाप बच्चे से ही खेलती रही।

उसी समय वृद्ध और वृद्धा वहाँ आ गये।

उनको देखते ही, एक को छोड़ सबकी सब वहाँ से खिलखिला कर हँसती हुई वहाँ से चली गईं। वृद्धा ने आते ही रजनी को गर्म दूध पिलाया और फिर वह बच्चे के पास बैठ गई। वृद्ध रजनी को तैयार देख टैक्सी लेने चले गये।

उनके जाते ही उपस्थित नर्स बोली—

"जीजा जी नहीं आयेंगे क्या?"

रजनी ने अन्दर की निराशा का गला घोंटते हुए उत्तर दिया--

"वह दिल्ली से बाहर गये हैं।"

"क्या उनको सूचना नहीं भेजी गई?"

"सूचना तो भेज दी। कोई आवश्यक कार्य हो गया होगा।"

"जब आयेंगे तो हम उनकी खूब खबर लेंगे।"

वृद्ध उसी समय टैक्सी लेकर आ गये। वृद्धा ने बच्चे को अपनी गोद में बहुत सम्भाल कर उठाया। रजनी भी उठी और नर्स के साथ धीरे-धीरे चलती हुई टैक्सी तक आई। वृद्ध और वृद्धा को नर्स हाथ जोड़कर, लौट गई। और फिर तीनों टैक्सी द्वारा घर आ गये। वहाँ बिस्तर पहले ही तैयार था। रजनी आते ही मुँह ढाँप कर लेट गई। उस समय वृद्धा बोली—

"क्या नाम रखोगे मुन्नू का?"

"मुन्नू नाम भी रख रही हो, और फिर मुझसे पूँछ भी रही हो।"

"मुन्नू तो कुछ दिनों के लिये रख लिया है।"

"और यह सदैव चलता रहै तो क्या बुरा है ?"

"बड़ा होकर हमें गालियाँ रहीं देगा। कहेगा नाम भी रखना नहीं आया आपको।"

"बड़ा होकर तो बड़ा आदमी बन जायेगा, देवी जी। मैंने जन्म के नक्षत्र देख लिये हैं। उस समय तो हजार नाम रखने वाले बन जाते हैं। इसी मुन्ना का मनी राम बनते देर नहीं लगती।"

"आप तो हर समय मास्टर जी बने रहते हैं।"

"जिसकी बेटी बी० ए० पास हो, वह क्या मास्टर भी नहीं है।"

"अच्छा अब यह बताओ खाना कौन बनायेगा।" हमें भूख ही नहीं है। रजनी जो कुछ कहे बना देना।"

"रजनी को तो दूध ही पिलाऊँगी।"

"मेरा तो विचार है सवेरे हलवा, दोपहर को दाल, और शाम को दूध दिया करो। फल जब इच्छा हो तब ही दे दिया।

"मैं आपसे अधिक जानती हूँ, मुझे क्या बता रहे हैं।"

"क्यों नहीं जी, आप तो पूरी मास्टरनी हैं।"

"मास्टरों की घरवाली मास्टरनी ही तो होती हैं।"

"मुझे तो लगता है बुढ़ापे में तुम्हारे पर निकल आये हैं।"

"और आप पूरे हवाई जहाज ही बन गये हैं।"

अच्छा अब चाय बनाओ। बहस न करो।"

वृद्धा उठी और चाय बनाने लग गई। वृद्ध रजनी से बोले—

"तबियत तो ठीक है बेटी।"

"हाँ पिताजी बिल्कुल ठीक हूँ।"

"मन भारी न करना बेटी ! सब ठीक हो जायेगा।"

"आप और माता जी का प्यार पाकर भी यदि मैं मन भारी करूँ तो यह मेरी ही दुर्बुद्धि का दोष है।

"देखो बेटी। धर्म में दृढ़ और कर्त्तव्य के प्रति सचेत व्यक्ति का

यदि सारा संसार भी दुश्मन बन जाये तो कुछ नहीं बिगड़ सकता। एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब उसके शत्रु भी उसके चरणों में आ पड़ते हैं। अपनो की तो बात ही छोड़ दीजिए।"

"ठीक है पिताजी। फिर भी मुझे दुःख केवल इस बात का है, जिनकी हम पूजा करते हैं वही हमको लात लगाते हैं।"

"देखो बेटी! अच्छा दिल मेघ सूर्य के प्रकाश को वश में कर लेता है। उसे तो मेघ हटने पर फिर उसी प्रकार चमकना है।"

"बाबा तुलसी ने कृषि के सूखने पर बर्षा के महत्व को स्वीकार किया है, पिता जी दाँत न होने पर चने स्वाद नही सिर दर्द बन जाते हैं।"

उसी समय बच्चा रो पड़ा। वृद्धा चाय छोड़कर उसके पास आ गई! रजनी ने मुँह ढाँप लिया। वृद्ध कुछ गम्भीर स्वर में बोले—

"देखो रजनी! तुम्हारी संवेदना भरी वाणी हमारे उल्लास को इस समय धूल में मिला रही है। चाहते हैं तुम सदैव प्रसन्न दिखाई दो।"

रजाई को मुँख से हटाकर मुख पर मुस्कान बिखेरती हुई वह बोली—

"आप क्या कह रहे हैं पिताजी। इस समय तो मेरे जितनी सौभाग्यशाली सन्तान कोई हो ही नहीं सकती। मैं तो भविष्य की कुछ व्यर्थ आशंकाओं में खो गई थी। सोचती थी—बच्चे को दुनियाँ क्या कहेगी?"

"संसार की बातों पर ध्यान देने वाले संसार में जी नहीं सकते रजनी। बड़ा निर्मोही है यह संसार। इसने कभी किसी को क्षमा नहीं किया। क्षमा की खैर बात ही दूसरी है यह संसार तो सन्तों को भी लांच्छित कर देता है। दूसरों को जीवन देने वालों का यह संसार रक्त चूस जाता है। संसार का विधान है कोमल को कुचलो और कठोर से बचकर चलो। दुर्बल का संसार अकारण विरोधी है और सबल के असत्य का यह नतमस्तक समर्थन करता है।"

"रजनी को आराम करने दो। चाय बना लो। मैं बच्चे के पास बैठी हूँ। उठूँगी तो यह रोने लग जायेगा।" ये शब्द वृद्धा के थे।

"बच्चे को मुझे दे दो, और तुम चाय बनाकर ले आओ।"

"मैं बच्चे को आपको नहीं दूँगी।"

"क्यों?"

"आपकी नजर लग जाती है।"

"नजर लगे हमारे दुश्मनों को। कैसी बातें कर रही हो।"

"लो फिर संभाल कर लेना। हाथ पाँव इस समय बड़े कोमल होते हैं।"

"अरे! यह तो बिल्कुल अपनी माँ पर है।"

"इसीलिये मैं तुमको दिखाना नहीं चाहती थी। अभी क्या पता बच्चे का। छोटा बच्चा कई रंग बदलता है।"

वृद्धा ने बच्चे को वृद्ध की गोद से लेकर रजनी के पास लिटा दिया। रजनी ने करवट दूसरी ओर बदल ली। वृद्धा बोली—

"करवट न लो बेटी। छोटे बच्चों को छाती से लगा कर सोना चाहिए।"

वृद्धा के कथन से रजनी मन ही मन प्रसन्नता अनुभव कर बोली—

"रात को आप ही सुला लेना। मैं एक करवट से सो नहीं सकती।"

वृद्धा चुपचाप चाय देकर बच्चे के पास बैठ गई और वृद्ध चाय पीकर बाहर चले गये। रजनी मुँह ढाँपे हुए स्वयँ को समझाने लगी—

"अधीर न हो रजनी! तूने जितना पाया है वह किसी बिरले को ही प्राप्त होता है। छोटी जाति में जन्म लेकर भी तूने पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की है। जीवन के अनेक मोड़ पाकर तूने कुछ अनुभव भी प्राप्त किया है। यही अनुभव तो जीवन का मूल रहस्य है। पानी बहता हुआ ही शुद्ध रहता है। स्थिर जलाशय का जल शुद्ध हो ही नहीं सकता। तेरी जीवन सरिता अनेक मोड़ों से मुड़ कर ऐसा लक्ष्य पा गई है, जिस को जीवन की शान्ति कहा जा सकता है। चलते पथिक को वृक्ष की

छाया मिली। प्यास लगने पर जल मिला और बताओ वह पथिक अब क्या चाहता है। तेरे सिर पर किसी के स्नेह भरे हाथ हैं, और तुझे भी स्नेह भरे हाथ रखने का अवलम्बन मिल गया है। जिनका आशी-र्वाद तुमने पाया है, उनके प्रति कर्तव्य पालन भी तो तुम्हारा है।"

"मूर्ख रजनी ! संयोग की आयु बहुत कम होती है। जो भावनायें तुम्हारे हृदय में करवट बदल रही है, वह कभी शान्त ही नहीं हो सकती। हजारों वर्ष जीने पर भी मनुष्य अन्त में यही कहेगा—कुछ और जीते तो अच्छा था। अरमान कभी किसी के पूर्ण नहीं हुए। स्मरण रखो, तुम्हारा प्रेम अब प्रेम के लिये नहीं रहा। वह जीवन की सिद्धि बन गया है। जिसके प्रेम का निष्कर्ष यह बच्चा तेरी करवट की शोभा बढ़ा रहा है। इस समय तो वह भी जीवन की पत-झर से गुजर रहा है। फिर तू ही बता उससे क्या चाहती है ?

आगे रजनी की विचार शृंखला जुड़ती ही चली गई।

"भोली रजनी ! जिस मुस्कान को तूने पाया है, उसके लिए तो एक युवती ने दूसरी के प्राण ले लिए हैं। और अब स्वयँ भी मृत्यु का ग्रास बनने जा रही है। फिर बता और क्या चाहती है ? तू एक समय हँसी है और खिल खिलाकर हँसी है। और अब तुझे वह खिलौना मिल गया है जिससे आदमी जीवन भर खेल कर भी सन्तुष्ट नहीं होता। यौवन का ज्वार भाटा जीवन सागर में एक ही बार आता है, वह अब आ चुका है अब उसकी स्मृतियों को लेकर भी तू जीवन में सहर्ष आगे बढ़ सकती है।

"अबोध रजनी ! सरस संवेदनाओं की साधना का नाम ही तो प्रेम है। अब साधना कर। अपनी भूल, अब दुनियाँ को देख। उस दिन पिताजी ने कहा था— देश प्यार से बड़ा धर्म कोई नहीं है। तू क्या उसको भूल गई ? वह हमारा है, जहाँ यह ठीक है वहीं पर इससे भी बड़ा सत्य है कि सब ही हमारे हैं। यदि दार्शनिक दृष्टि से देखें तो यह शरीर भी हमारा नहीं है। यदि तू भावना की आँखों से ही इस जीवन को देखना चाहती है तो समझ ले जिसको तू अपना मानती है अपना

ही मानती चल। लक्ष्य-विहीन पक्षी एक दिन अपने नीड़ में अवश्य आता है।

उसी समय बच्चा रो पड़ा। रजनी की चेतना का सूत्र टूट गया। उसने बच्चे को वक्ष से लगा लिया। वृद्धा ने देखा—इस समय रजनी के मुख हर हल्की मुस्कान खेल रही थी। यह देखकर वृद्धा के मुख की झुर्रियों में भी चमक उत्पन्न हो गई।

३७

अवधि का मरहम पाकर वियोग के घाव कुछ भरने लगते हैं। राजेश के जीवन में यह कथन चरितार्थ नहीं हुआ। राजेश्वरी की मृत्यु के पश्चात् दिन जैसे बीतते जा रहे हैं। अभाव जन्य अनुभूतियाँ वैसे ही बढ़ती जा रही हैं। दिन-रात की निकटता से व्यक्ति का मूल्य कम हो जाता है। उसके दूर होने पर ही जान पड़ता है, वह क्या था। अतल सागर में मुक्ता यदि मुट्ठी में आ जाये तो उसका मूल्य आधा रह जाता है। राजेश्वरी के हृदय से निकले शब्द क्रियायें, चेष्टाएँ और हाव भाव अब राजेश के लिए जीवन की धड़कन बनकर रह गये हैं। इस जीवन में उनकी पुनरावृत्ति सम्भव नहीं है। निरन्तर प्रताड़ना पाकर भी जो कभी कर्तव्य से विचलित नहीं हुई। कहाँ मिल सकती है इस युग में ऐसी नारी। कितनी महान थी वह जिसके पास भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द ही न थे। नेत्रों को पढ़कर जिसके भावों को जाना जाता था। अब वह भगवान की प्यारी बन चुकी है। एक नागिन उसे निगल गई।

राजेश को अब जान पड़ा है—नारी के बिना मनुष्य पंगु ही नहीं नेत्र विहीन भी है। पुरुष की गति और अगति सब कुछ नारी ही है।

दिन में दो बार राजेश घर आता और जब जाता नवीन बनकर जाता। बारह घंटे काम करके भी कभी थकान नहीं हुई। और अब काम करने की इच्छा ही नहीं होती। किसी कार्य में मन नहीं लगता। कई दिन से राजेश मिल जाने की सोच रहा है। उसके पास कुछ मजदूर भी कई बार आ चुके हैं। वह सबको झूठ-सच बोलकर टाल देता है। सूका से कई बार उसने कहा—"कल आऊँगा।" और वह कल आज तक नहीं हुई। गाँव से कई बुलावे आ चुके है। वह सब सुनकर भी अनसुनी कर देता है।

विवाह के विषय में राजेश निश्चय कर चुका है— अब विवाह नहीं करेगा। आकाश को छूकर गिरने वाला व्यक्ति पेड़ों की चोटियों पर बैठकर शांति नही पा सकता। रजनी निकट आई और कुछ मेरी भूलों से ही विकट पहेली वन गई। राजेश्वरी को पहचानने में समय लगा। और जब पहचान हुई तो फन पीटती हुई एक नागिन ने उसे डस लिया। वह अब इस जीवन से इतनी दूर चली गई, जहाँ से लौटकर कभी कोई नहीं आया। रजनी ने जो मांग की थी, उसे मिल गई। अब उसे मेरी आवश्यकता ही नहीं है। सन्तान को पाकर स्त्री पुरुष से प्यार नहीं करती। भावी सम्बन्ध केवल व्यवहार पर स्थिर रहता है। वह पास रहे या दूर कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। उसको स्नेह का अवलम्बन मिल गया है।

अपने वर्तमान से भी अधिक राजेश भविष्य के प्रति चिन्तित रहता है। उसका अतीत जितना सरस और सुखदाई था, वर्तमान उतना ही नीरस, कटु और दुखदाई है। भविष्य क्या होगा? स्मरण कर राजेश दुखद कल्पनाओं में खो जाता है। अभी तक उसका कोई निश्चित कार्य क्षेत्र नहीं है। जिस मिल में वह हजारों मजदूरों के कल्याण की बात सोचता है, क्या वह कर पायेगा। वह सोचता है— जब मैं अपना ही जीवन-पथ अभी तक नहीं खोज पाया तो फिर इन बेचारे हजारों मज-दूरों को पथ क्या दिखाऊँगा? अन्धा डाक्टर और आँखों का विशेषज्ञ, भला यह कैसे सम्भव है। मजदूरों के अधिकार को पूँजीपतियों की

तिजोरियों से निकालना उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक उन्हें राजनैतिक शरण प्राप्त है। शक्ति के बिना धनिक कभी नहीं झुकते।

हड़ताल कराने की बात को राजेश ने उठाकर एक ओर रख दिया है। वह जानता है—यदि कुछ सुविधाएँ मजदूरों को दिलाई जायें तो वे धर्मार्थी जी से मिलकर दिलाना ही उचित है।

राजेश यह सब संध्या के सात बजे कमरे में पड़ा हुआ सोच रहा था। उसी समय उसने देखा—राधा के माता-पिता उसी ओर आ रहे हैं। उनको देखते ही राजेश ने दृष्टि नीचे झुका ली। वे दोनों चुपचाप राजेश के पास आकर खड़े हो गये। राजेश कुछ न बोला। राधा के पिता कुछ देर उसे देखते ही रहे। वे फिर बोले—"क्या हमको देखना भी पाप है, राजेश बेटा।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं है। मैं कुछ सोच रहा था। बैठिए।"

"आप बैठायेंगे तो अवश्य बैठेंगे।"

राजेश चारपाई से खड़ा होकर बोला—

"मैंने यही तो कहा है। कहिए क्या बात है?"

"हम एक प्रार्थना लेकर आये हैं तुम्हारे पास। यदि हम दो दुखिया प्राणियों पर आप दया कर सकें तो निवेदन करें।"

"आप मुझसे अधिक दुखिया नहीं हैं। मान्यवर! भला बताइये जो स्वयँ डूब रहा है वह दूसरों को सहारा क्या दे सकेगा?"

"आप सब कुछ तो जानते हैं, राजेश। हम दोनों के जीवन का आधार केवल राधा ही थी। और अब वह अपने पापों से मृत्यु के द्वार पर खड़ी है। कितना अच्छा हो आप हम पापियों को क्षमा कर दें। राधा के वृद्ध पिता का इस कथन के साथ गला भर आया। राजेश उसकी ओर देखकर क्षण भर के लिए द्रवित सा हो गया। वह बोला—

"आप बैठ जाएँ। खड़े-खड़े बातें करना शोभा नहीं देता।"

"क्या बैठें बेटा! हम तो दोनों अब अन्धे हो गये हैं।"

"ठीक है आपकी बात। परन्तु मैं कर ही क्या सकता हूँ इस समय। अब तो आपको न्यायालय की शरण में जाना ही उचित है।"

"मैं जानता हूँ बेटा। राधा ने जो कुछ किया है वह पाप ही नहीं महापाप है। उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। इसके साथ ही मैं यह अवश्य कहूँगा, उसने जो कुछ किया है अन्धी भावना से प्रेरित होकर ही किया है। इसका प्रमाण है वह अगले दिन ही पागल हो गई। मुझे पूर्ण विश्वास है, यदि उसका मस्तिष्क ठीक हो गया, तो वह जब तक जियेगी पश्चात्ताप ही करती रहेगी। अच्छा हो आप थोड़ी उदारता का परिचय दे दें।"

"वह खुशियाँ मनायेगी, या पश्चात्ताप करेगी, इससे मेरी न हानि है और न ही लाभ। मेरे जीवन का उसने विनाश कर दिया है। मैं तो केवल अब यही जानता हूँ कि उदारता की अपनी इस प्रार्थना के लिए आपको न्याय का द्वार खटखटाना चाहिए।"

"ठीक है बेटा। फिर भी हम केवल इतना चाहते हैं आप अपनी ओर से राधा को क्षमा कर दें।"

"आप यह व्यर्थ की बातें कर रहे हैं। मैं जानता हूँ, राजेश्वरी अब मुझे नहीं मिलेगी। अब मेरी ओर से न्यायालय राधा को क्षमा करे या दंड दे। मुझे किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं है।"

"क्या करें बेटा? एक सन्तान थी, सो वह भी ऐसी निकली जिसने दो घर धूल में मिला दिये।"

"क्षमा करना! इसमें कुछ दोष आपका भी है।"

"वह कैसे बेटा?"

"यह भी बताने की बात है। आपको राधा के विवाह की कोई व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए थी। इस आयु में इतनी स्वतंत्रता का ही तो यह दुखद परिणाम है जो आज हमको भोगना पड़ रहा है।"

"विवाह करना तो हमारी विवशता थी बेटा।"

"यह मैं नहीं मान सकता। थोड़ा हृदय पर हाथ रखकर देखिये। वह भी व्यक्ति हैं, जो आज भी बेटी के घर का पानी नहीं पीते। विपरीत इसके आप की तो जीविका ही उसकी कमाई पर चल रही

थी। उसने जो आज तक कमाया है यदि वह सब आप एकत्र करते रहते तो भली प्रकार उसका विवाह कर सकते थे।"

"ठीक है राजेश! तब नहीं तो अब अवश्य करना पड़ेगा।"

"करना पड़ेगा, यह एक बात है और करना चाहिए था यह दूसरी बात।"

"कुछ पता नहीं राजेश! विवशता आदमी को कहाँ तक झुका ले जाये।"

"विवशता के साथ ही आपने कुछ विश्राम को भी समय से पहले ही, जीवन का अभिन्न अंग बना लिया था। आप सत्य से आँखें न चुरायें। जब तक आदमी के हाथ पाँव चलें, उसे कुछ करना ही चाहिए।"

राधा की माता अब तक शान्त रही थी। इस कथन को सुनकर अब राजेश के पाँवों में पड़ गई। भर्राये कंठ से वह बोली—

"बेटा राजेश! हम जानते हैं हमने कितनी बड़ी भूल की है। और यह भी जानते हैं, हमारी भूल ही आपके हरे भरे जीवन को जला कर राख बना गई है। फिर भी आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है, किसी प्रकार भी उस दुष्ट के प्राणों को बचाकर आप पुण्य कमा लें। समझ लीजिए वह आपकी छोटी बहन है।"

राजेश ने बृद्धा का हाथ पकड़कर ऊपर उठाया वह बोला—"यह आप क्या कह रही हैं माता जी! मैं तो आपका बच्चा हूँ। मेरा कोई दोष हो तो मुझे ही माफ कर दीजिए। आपका यह भ्रम है, कि राधा को मैंने दोषी ठहराया है। सत्य है कि राधा हत्यारी है। और यह सत्य अब प्रकट हो गया है।"

"यह तो ठीक है बेटा मैं भी उसे दोषी मानती हूँ।"

"तो फिर बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ।"

"हम केवल इतना चाहते हैं कि आप उसकी प्राण रक्षा का कोई उपाय बता दें। यह तो तुम्हें मानना ही होगा कि उसने तुमको पाने के लिए ही यह नीच कर्म किया है। हमें अब इस बात का पता चल गया है।"

इस कथन को सुनते ही राजेश ने कुछ भार सा अनुभव कर दृष्टि नीचे झुका ली। वह धीमे स्वर में बोला—

"हो सकता है आपकी यह बात सत्य हो।"

"सत्य नहीं बेटा ! पूर्ण सत्य है।"

"ठीक है माता जी ! फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए किसी के प्राणों से ही होली खेली जाये।"

"नारी की इस दुर्बलता से तुम परिचित नहीं हो बेटा। भावना के वशीभूत नारी क्या कर बैठे यह तो अन्तर्यामी भी नहीं जानता। तुम तो जानते ही हो नदी में जब बाढ़ आती है, वह अपने किनारों को तोड़ कर ही इधर-उधर बह जाती है। यही दशा नारी की है। जिस स्थिति में राधा ने यह नीच कर्म किया है, इस दिशा में नारी के लिए अपने प्राण देना और दूसरे के लेना तिनका तोड़ने से बढ़कर और कुछ भी नहीं।"

वृद्धा के ये शब्द राजेश को प्रभावित किए बिना न रह सके, कथन की सत्यता को अनुभव कर वह बोला—

"इसके लिये आप कोई अच्छा वकील कर लेना माताजी।" यदि उचित समझो, तो जहाँ राधा नौकरी करती थी, वहाँ के मैनेजर से कुछ सहयोग प्राप्त कर लो। आप जानती हो मैं दिल्ली में नया हूँ। पैसे की दृष्टि से मेरे पास अपने निर्वाह का भी साधन नहीं है। फिर आप ही बतायें मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।"

"आपको बेटा कहकर भी मन हल्का हो गया है राजेश। हम तो उसी दिन तुम्हारे पास आने वाले थे। क्या करें पाँव ही नहीं पड़ा। इच्छा हो रही है, दिन में तुम्हारे एक दो बार दर्शन अवश्य किया करें।"

"आप अवश्य आया करें।"

दोनों फिर वहाँ से कुछ मन हल्का करके चले गये।

३८

धर्मार्थी जी यूँ तो वाणी के मधुर हैं परन्तु जब अपने कार्यालय में व्यवस्थापक बन कर बैठते हैं; उनके स्वभाव में आमूल परिवर्तन हो जाता है। विशेषकर जब वे मिल के बड़े अधिकारियों से मिलते हैं, हिंसक से दिखाई देते हैं। उनका विश्वास है, इस कुर्सी पर बैठकर बड़ों के साथ कठोर व्यवहार करना ही चाहिए। उनके पास जाते हुए बड़े अधिकारी इसीलिये भयभीत से रहते हैं। वह कोई न कोई बहाना खोजकर डाँट अवश्य लगाते हैं। उनके स्वभाव में आजकल कुछ और भी कठोरता आ गई है। राधा का कार्यालय में न होना कार्यक्रम की दृष्टि से कोई हानिकारक सिद्ध नहीं हुआ। उसका कोई विशेष उत्तर दायित्व भी न था। हाँ, जब धर्मार्थी जी का सिर कुछ भारीपन अनुभव करता, वह राधा को अपने पास बातचीत के लिये बुला लिया करते थे। उससे वह खुलकर बातें करते थे। यही उनकी कार्यक्षमता की संजीवनी थी। इसीलिये वह अब झुंझलाये से रहते हैं।

रजनी जितने दिन मिल में रही, धर्मार्थी जी राधा को भूले से रहे। और फिर जब वह चली गई, तो उन्होंने फिर अपनी पुस्तक के पन्ने खोल लिये। अब वह सोचते हैं, मिल में और दो चार लड़कियों की नियुक्ति करूँ उनमें से कोई तो हमको समझेगी ही। वह डरते भी हैं—लड़कियाँ भी कभी व्यर्थ का सिर दर्द बन जाती हैं। ये जिस रोग का उपचार करती हैं उसी को जन्म भी देती हैं। सब दृष्टि से विचार कर अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया—कार्यालय में कुछ लड़कियाँ

होनी ही चाहिएँ। इसके लिए विज्ञापन देना उचित होगा। पाँच रिक्त स्थानों के विज्ञापन के लिए पाँच सौ लड़कियों का आना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनमें से एक दो जो मनोनुकूल होंगी उन्हीं की नियुक्ति कर ली जायेगी।

आज जब धर्मार्थी जी अपने कमरे से पैदल ही कार्यालय जा रहे थे, लड़कियों की नियुक्ति के विषय में ही सोच रहे थे। जब वह दस बजे कार्यालय के द्वार पर आये, तो उन्होंने देखा वहाँ राजेश खड़ा हुआ है। राजेश की मुद्रा कुछ गम्भीर थी। धर्मार्थी जी एक ही दृष्ठि में उसको पढ़कर, सीधे कार्यालय के अन्दर चले गए। राजेश बाहर खड़ा सोचता रहा—धर्मार्थी जी ने मिल में मजदूरों में अपना रंग खूब ज़मा लिया है। सवेरे सात बजे से मैं अब तक जितने मजदूरों से मिला, एक दो को छोड़कर किसी ने मुँह उठाकर बातें नहीं की। जैसे मैं कोई चोर हूँ। अपने अभाव को बालू की दीवार जानकर ही मुझे यहाँ आना पड़ा है। सचमुच ये मजदूर अपने रक्षक और भक्षक की तिल बराबर भी पहचान नहीं कर सकते।

राजेश जब खड़ा हुआ सोच रहा था—उसी समय चपरासी आया और उसे अन्दर बुला कर ले गया। उसने जाते ही धर्मार्थी जी को प्रणाम किया। धर्मार्थी जी प्रणाम का उत्तर देकर बोले—

"बैठो राजेश! कहो कैसे कष्ट किया है आने का?"

राजेश धर्मार्थी जी के व्यंग को समझकर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। धर्मार्थी जी कुछ देर तक आवश्यक पत्रों को उलटते पलटते रहे। कुछ देर वह जानकर कुछ नहीं बोले। उनको शान्त देखकर राजेश बोला—

"क्या इस समय आपके पास कुछ अवकाश नहीं है?"

"व्यर्थ की बातों के लिए तो हमारे पास कभी भी समय नहीं है। हाँ यदि कोई काम की बात हो तो अवश्य कहो।"

"तो फिर आपने अन्दर ही क्यों बुलाया था।"

"कहा तो है, कहो क्या बात है ?"

"आपके, यहाँ काम करने वाली राधा के पिता शायद आपके पास आये होंगे। हो सके तो उस विषय में विचार करके देख लीजिए।"

"देखो मास्टर राजेश ! यदि हम किसी विषय में विचार करेंगे तो आपकी सम्मति के बिना भी कर लेंगे। व्यर्थ की बातों पर विचार करने के लिये हमारे पास समय नहीं है।"

"एक दिन आपने कहा था कि हमारा जन्म ही परोपकार के लिये हुआ है, इसीलिये कुछ निवेदन करने आया हूँ।"

"ऐसे परोपकार तो आपको ही शोभा देते हैं राजेश। हम तो ऐसे व्यक्तियों को कान पकड़ कर निकाल देते हैं।"

"परन्तु वह तो आपके कार्यालय में काम करती थी।"

आपको जो कुछ कहना है साफ-साफ कहो। व्यर्थ में समय नष्ट न करो।"

इस उपेक्षा को पाकर भी राजेश वहाँ से खड़ा नहीं हुआ। वह बोला—

"मजदूरों की कठिनाइयों के विषय में क्या सोचा है आपने ?'

धर्मार्थी जी को स्मरण हुआ—एक दिन हमने राजेश को प्रलोभन से वश में करने का निश्चय किया था। और अब यह स्वयँ ही वश में हो गया है। इसीलिये प्रलोभन का प्रश्न ही नहीं उठता। वह बोले—

"मजदूर हमारे और हम मजदूरों के। फिर बताइये इस विषय में आप कौन हैं बातें करने वाले कहना हो तो कुछ अपनी कहो।"

"बहुत रूखी बातें कर रहे हैं इस समय आप।"

हमने तो कभी मीठी बातें भी की थीं। हम क्या करें, तुमने उस समय सुना ही नहीं। उस समय शायद आप हवा के घोड़े पर सवार थे।"

"और इस समय आप उसी घोड़े पर सवार हैं।"

"देखो राजेश ! तुम अभी हमें नहीं जानते।"

तुम्हारी वर्ष की कमाई हमारे एक घन्टे के खर्च के बराबर है।

ढाई अक्षर पढ़कर स्वयँ नेता न समझो। अभी कुछ दुनियाँ में करके दिखाओ फिर कुछ बनने की बात सोचना। मजदूरों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा न करो।

राजेश इस कथन को सुनकर तिलमिला गया। फिर भी समय की नाड़ी को पहचान स्वयँ को सन्तुलित रख वह बोला—

"कथन आपका सत्य हो सकता है। फिर भी मेरी दृष्टि में धन के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व की नाप नहीं होनी चाहिए।"

"विचित्र हैं तुम्हारे आर्दश! एक ओर मजदूरों की अर्थ सिद्धि के प्रश्न को उठाते हो। दूसरी ओर उनकी आड़ में अपनी भी अर्थ सिद्धि चाहते हो। और फिर कहते हो अर्थ का कोई महत्व ही नहीं है।"

"देखिये आप इस समय मानवता की सीमा को लाँघ रहे हैं।

"तो फिर तुमने यह अवसर ही क्यों दिया है।"

इस कथन को सुनकर राजेश का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया। स्वयँ को कठिनाई से सन्तुलित कर वह बोला—

"तो मेरे यहाँ आने का आप मेरी दुर्बतला समझ रहे हैं।"

और मैंने तुम्हें कभी सबल समझा ही नहीं है। मैं तो यहाँ आने से पहले ही तुम्हारी दुर्बलता को जानता हूँ। दुर्बलता का परिणाम ही है कि पत्नी को मृत्यु की भेंट चढ़ा दिया। दिन-रात लड़कियों से खिलवाड़ करने वाला युवक कभी बलवान हो ही नहीं सकता। कभी रजनी तो कभी राधा, न जाने कितनी लड़कियों का जीवन नष्ट किया है। यही है ना तुम्हारे बलवान होने का प्रमाण।"

इस समय राजेश के संयम का बांध टूट गया। खड़ा होकर वह बोला—

"ओ नीच, पाजी। चुप हो जा। यदि आगे कुछ कहा तो तेरी जबान निकाल लूँगा। इतनी देर से बकवास करता चला आ रहा है।"

धर्मार्थी भी खड़े होकर चीख पड़े—

"बाहर निकल जा नीच, कमीने। नहीं तो साले को कान पकड़वा कर मुर्गा बना दूँगा।"

राजेश की आँखों में रक्त टपकने लगा। उसे पता नहीं रहा कि वह कहाँ है ? उसके सीधे हाथ का अनायास ही घूँसा बन गया। दायाँ हाथ एक पल में ही धर्मार्थी जी के कंठ पर जम गया। धर्मार्थी जी की चीख घुटकर रह गई। राजेश के सीधे हाथ का घूँसा धर्मार्थी जी की नाक पर कई बार पड़ा। और फिर वह अचेत से होकर फर्श पर गिर गये। राजेश वहाँ से चल दिया। चपरासी उस समय बाहर नहीं था। धर्मार्थी जी का कमरा सबसे अलग था, किसी को कुछ भी पता न चला। वह फिर वहाँ से सीधा अपने कमरे पर आ गया।

धर्मार्थी जी की नाक से रक्त बहने लगा। कुछ देर वह अचेत से ही पड़े रहे। जब कोई कागज लेकर चपरासी अन्दर आया तो उसको धर्मार्थी जी की यह हालत देखकर असीम आश्चर्य हुआ। उसने सोचा धर्मार्थी जी की नकसीरी छूट गई है। वह दौड़कर पानी लाया और बड़े बाबू को खबर दी। धर्मार्थी जी कुछ सचेत हुए। वह फिर मुँह हाथ धोकर अपने कमरे में आकर आराम करने लगे।

चोर की माँ जैसे मुँह छिपाकर रोती है। यही दशा इस समय धर्मार्थी जी की थी। उन्होंने यह जीवन में प्रथम बार इतनी चोट खाई थी। वह न डाक्टर बुला सके, और न ही किसी से कुछ कह सके। वह केवल इस समय राजेश से प्रतिरोध की बात सोच रहे थे। उन्होंने निश्चय कर लिया कुछ भी हो, इस राजेश को जीवित नहीं छोड़ूगा।

धर्मार्थी जी ने आज प्रथमवार स्त्री के अभाव को गम्भीरता से अनुभव किया। वह किससे कहें अपने मन की बात। सुनने वाले हजार है और वास्तव में कोई नहीं। स्त्री ही जीवन की अभिन्न साथी है। अब तक वे समझते थे—स्त्री एक मदिरा की प्याली है। मदिरा के समान ही उसकी भी अनेक कोटियाँ होती हैं। जैसी पियो वैसा ही नशा होगा। कुछ का नशा शीघ्र उतर जाता है और कुछ का समय लेता है। रजनी को उन्होंने एक दिन ऐसी प्याली समझा था जिसका नशा कभी नहीं उतरेगा। वह इस समय भी धमार्थी जी की कल्पनाओं में खेल रही थी। वह सोच रहे थे—कितना अच्छा हो, इस समय रजनी मुझसे

कहे—

"अब कैसी तबियत है आपकी ? क्या आपके सिर को दबाऊँ ?

रजनी के स्मरण पर ही धर्मार्थी जी का राजेश पर क्रोध इतना बढ़ा कि उनके दाँत कटकटाने लगे । इस समय यदि राजेश उनके सम्मुख होता तो वह कच्चा ही चबा जाते । वह सोच रहे थे—

"इस दुराचारी ने ही रजनी को मेरे निकट नहीं आने दिया । मैं उससे विवाह भी कर लेता । आज मैं चन्दन का वह वृक्ष हूँ जिसके पास सुगन्ध पाने के लिये दिन में हजारों सर्प आते हैं । और यदि वह धन और पद की सुगन्ध समाप्त हो जावे तो मुझे चन्दन मानने वाले ही कल बबूल कहने लग जायेंगे । स्वार्थ निरपेक्ष प्रेम यदि कर सकती है तो केवल स्त्री और वह भी पत्नी रूप में । कितनी उपयुक्त थी इस अभाव की पूर्ति के लिये रजनी ।

धर्मार्थी जी जब कम्बल ओढ़े विचारों में खोये हुए थे, उसी समय उनके पहाड़ी नौकर ने उनसे कहा—

"शाब जी ! बाहर कुछ आदमी आया है ।"

"उनसे कहो, क्या बात है, देखते नहीं आराम कर रहा हूँ ।"

चपरासी बाहर गया और तुरन्त लौटकर आ गया । वह बोला—

"आपका हाल पूछने के लिए आया है सब लोग ।"

"थोड़े आदमी हों तो अन्दर बुलाओ । नहीं तो कहो शाम को मिलें ।"

आदमी पाँच थे चपरासी इसीलिए अन्दर ले आया । उनमें से एक ने गिड़गिड़ाते हुए स्वर में पूछा—

"अब आपकी तबियत कैसी है सरकार ।"

"ठीक है । कुछ सिर में दर्द है कुछ सोना चाहता हूँ ।"

पाँचों वहाँ से चुपचाप चले गये । धर्मार्थी जी फिर सोचने लगे—

ये आने वाले चाटुकार सब कुत्ते थे । कोई पदोन्नति चाहता है तो कोई वेतन में वृद्धि । स्वार्थी आदमी न जाने कितने द्वारों पर सिर

टिकाता फिराता है। इस दृष्टि से वह नीच राजेश ही महान् है। लालच के वशीभूत कभी नहीं हुआ। उसी समय उनके सिर में जोर का दर्द हुआ। वह फिर राजेश के जीवन का अन्त करने की उक्ति सोचने लगे—एक दिन इस दुष्ट को सड़क पर जाते समय कार से कुचल कर ही मुझे शान्ति मिलेगी। कुछ नहीं तो हाथ पैर टूटने से यहाँ यह आने में असमर्थ अवश्य हो जायेगा। उसी समय बाँस कटने से वंशी का बजना बन्द हो सकेगा. और मैं भी पूरी नीद सो सकूँगा।

पीड़ा के कारण उन्हें नींद नहीं आई। और फिर उन्होंने नींद की गोली ही खानी पड़ी।

३१

कहते हैं माता बनने के पश्चात् स्त्री का आधा सौन्दर्य स्वयँ ही समाप्त हो जाता है। रजनी इस कथन का अपवाद सिद्ध हुई। अब उसके सौन्दर्य को चार चाँद लग गये हैं। अत: अतीत की अपेक्षा वह अब कुछ स्वस्थ भी है। उसके आकर्षक अंगों में विशेष प्रकार का उभार है। आकृति पर आकर्षण को जन्म देने वाली चमक सी उत्पन्न हो गई है। शरीर में सुगठन के साथ ही कुछ लचक भी है। विशेषकर जब वह अस्पताल के शुभ्र वस्त्रों को धारण करती है, देखते ही बनता है। इसकी इस सुन्दरता की वृद्ध और वृद्धा एक ओर सराहना करते हैं तो दूसरी ओर कुछ चिन्तित भी रहते हैं। वृद्धा को डर है कहीं नजर न लग जाये। वृद्ध सोचते हैं—अस्पताल में ही कोई युवक सिर दर्द न बन जाये। रजनी जब अस्पताल में जाती है वृद्धा उसे कोई शृंगार नहीं करने देती। दूध पिलाती है, तो उसमें थोड़ी सी चूल्हे की राख अवश्य डालती है। उसके जाते ही वृद्धा बच्चे को छाती से लगाकर

बैठ जाती है। जब बच्चा सो जाता है, तो कुछ काम करती है।

रजनी आजकल कुछ सन्तुष्ट भी है। उसे यदि कोई चिन्ता है, तो केवल राजेश की है। वह जानना चाहती है उसके जीवन में अब कौन सा मोड़ आयेगा। उसे यह पक्का विश्वास है—राजेश को घर वालों की हट पर विवाह तो करना ही होगा। अब देखना यह है कि उसको भावी जीवन संगिनी कैसी मिले। अपनी ओर से यही चाहती है कि कोई राजेश्वरी जैसी स्त्री मिले तो उत्तम है। साधारण स्त्री अब राजेश के मन पर अधिकार नहीं कर सकती। राजेश्वरी ने तो अपने त्याग और सेवा से राजेश को अपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया था। सब स्त्री ऐसी कहाँ होती है। स्त्री का स्त्रीत्व वही है, जिसके सम्मुख पुरुष की सारी चंचलता घुटने टेकती चली आये।

छुट्टी समाप्त कर अस्पताल आने का आज चौथा दिन है। जब वह घर से चली थी, उसने मन में सोचा था—यदि अवसर मिला तो आज राजेश के पास जाऊँगी। वह मेरी न सुने, परन्तु मेरा तो धर्म है, उसकी पूछना। न जाने कितनी उदासी होगी उसके मुख पर! राजेश प्रथम मेरा है ओर पीछे किसी ओर का। मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना चाहिए। रजनी जब अस्पताल में पहुंची, उसे एक विषम स्थिति का सामना करना पड़ा। एक मनचले डाक्टर ने उसे कुछ संकेत किया। पहले भी कई बार यही डाक्टर अस्पष्ट सी भाषा में कुछ कह चुका है। रजनी ने पहले इस ओर यिशेष ध्यान नहीं दिया। आज भी वह डाक्टर के संकेत को दृष्टि मोड़ कर टालने लगी। डाक्टर था पुराना खिलाड़ी। उसने संकेत की उपेक्षा देख अन्त में बातचीत आरम्भ कर दी। वह बोला—

"क्या आपके पास कुछ समय है?"

रजनी ने उपेक्षा भरे स्वर में उत्तर दिया—

"इस समय तो मेरी ड्यूटी आरम्भ हो गई है।"

"कुछ समय अवश्य निकालो। कोई आवश्यक बात है।"

"कुछ समय तो अभी है। कहिए क्या बात है?

"इस प्रकार भाग दौड़ में नहीं, कुछ शान्ति से बातें करनी हैं।"

"ड्यूटी टाइम में तो शान्ति से बात संभव नहीं है, डाक्टर साहब।"

"बड़ा रुखा व्यवहार है आपका। अब आप हमसे इस प्रकार नाक चढ़ा कर बातें कर रही हैं, तो फिर रोगियों से आपका कैसा व्यवहार होगा।"

"आप चिन्ता न करें, मैं अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह जानती हूँ।"

"आपको यह पता है कि आप किससे बातें कर रही हैं।"

"जी हाँ! मैं अस्पताल में एक डाक्टर से बातें कर रही हूँ। साथ में यह भी जानती हूँ कि डाक्टर साहब अस्पताल के सम्मानित डाक्टर हैं।"

"देखो रजनी! इस समय आप ट्रेनिंग ले रही हैं। इन दिनों में आपको बहुत संभलकर चलना है। अभी आप हमारी मुट्ठी से बाहर नहीं हैं।"

"क्षमा करना। मुझे इसका ज्ञान है।"

"तो फिर तुम्हारी यह और भी बड़ी भूल है। जानकर भी हमसे इस प्रकार का रुखा व्यवहार कर रही हो।"

"आखिर आप चाहते क्या हैं श्रीमान् जी ?"

"इसका पता तो आपको होना ही चाहिए। क्या आप पुरुष की दृष्टि को पढ़ना नहीं जानती ?"

"मैं अब भी नहीं समझी आपकी बात।"

"मूर्ख न बनाओ रजनी। सोते को जगाया जाता है जागते को नहीं। सब कुछ जानकर भी अनजान बनने से काम नहीं चल सकता।"

रजनी ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा—

"मैं आपसे फिर बातें करूँगी। इस समय एक बार रोगियों को देख लूँ।"

"आपकी ड्यूटी आज हमारे पास ही रहेगी आप चिन्ता न करें।"

"इसकी मुझे पूर्व सूचना तो नहीं मिली।"

"हमने जो कुछ कहा है, क्या वह सूचना नहीं है। आओ हमारे साथ कमरे में। वहीं पर है आपकी ड्यूटी।'

डाक्टर इस कथन के साथ ही चल दिया।

रजनी भी दबे पाँव उसके पीछे चल पड़ी। वह जानती है डाक्टर अस्पताल में विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति है। वह इस समय सोच रही थी—सचमुच जहाँ नारी के लिए वरदान है वहीं पर अभिशाप भी। जिस मार्ग को चुनती हूँ उसमें ही काँटे बिछ जाते हैं। यहाँ भी दूसरे धर्मार्थी राह रोककर खड़े हो गये हैं। अब इनसे कैसे पिंड छुड़ाया जाये ?"

डाक्टर अपने कमरे में पहुँच कर एक कुर्सी पर जम गए। रजनी उसके सम्मुख शान्त सिर झुकाये अभियुक्ता के समान खड़ी हो गई। डाक्टर उससे बोला—

"बैठिए, आप तो चपरासी बन कर खड़ी हो गईं।"

"आपके सम्मुख मेरा अस्तित्व चपरासी का ही है डाक्टर साहब।"

"कैसी बातें करती हो रजनी। हम तो तुम्हें आँखों में बैठाए हुए हैं।"

"शायद आपको पता नहीं मैं विवाहित हूँ।"

"यह तो हम जानते हैं। विवाहित के साथ ही आप एक बच्चे की माँ भी हैं। फिर भी मन ने जिसको अपना लिया बस वही अपना है। जिस सौन्दर्य की हमें प्यास है, उसका तो आपके पास सागर है।"

"सागर का जल खारा होने से सेवन नहीं किया जाता डाक्टर साहब।"

"यह सोचना तो हमारा काम है।"

"तो मैं बुद्धिहीन हो जाऊँ ?"

"यही तो हमारा सबसे बड़ा सुख होगा।"

"और यही बुद्धिहीनता नारी का सबसे बड़ा अभिशाप है।"

"तुम तो भावुकता के क्षणों में भी दार्शनिक हो बैठीं। कुर्सी पर बैठ जाओ।"

रजनी ने कुर्सी पर बैठ कर धीमे स्वर में कहना आरम्भ किया—

"कर्तव्य के समय भावुकता को भूलना ही उत्तम है डाक्टर साहब! हम जिस कार्य को कर रहे हैं वह कितना महत्वपूर्ण है, यह तो आप जानते ही हैं। भारत के इस अस्पताल में देश के प्रत्येक कोने से न जाने कितने रोगी हमारे पास कितनी आशायें लेकर आते हैं। उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल कर यदि हम प्रेम लीलाओं में खो जायें तो फिर बताइये इससे बड़ा अधर्म और क्या हो सकता है। हमें अपने कर्त्तव्य को पहचानना चाहिए। हम वेतन पाते है। केवल वेतन भोगी होकर जीने से मर जाना कहीं उत्तम है। अब तक मैं दस रोगियों को देखती। उनका धैर्य बँधाती। और आपने जैसे मुझे यहाँ बन्दी बना कर छोड़ दिया है। कुछ विचार तो कीजिये।"

"आप यहाँ हमसे कुछ सीखने आई हैं या हमको पढ़ाने।"

आप डाक्टर हैं इसीलिए निस्सन्देह मुझसे बड़े हैं। आपका चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान मुझसे बड़ा है, यह कौन नहीं जानता। फ़िर भी मेरे विचार से सच्चा ज्ञान वही है जो मनुष्य को कर्त्तव्य के प्रति सचेत रखे। विषय का पंडित होने के साथ ही मनुष्य को जानना चाहिए कि मनुष्यता क्या वस्तु है। हमारे देश में आज इसी बात का अभाव है। कथनी के रूप में त्यागी, परोपकारी और समाज़ सुधारकों के दल फिरते हैं और जब परखते हैं करनी रूप में, तो कोई भी खरा नहीं उतरता। थोड़ा इस ओर भी ध्यान देकर देख लो।"

डाक्टर को लगा—स्त्री है खेली खाई। मूल विषय को निकट ही नहीं आने देती। कुछ विचार कर वह बोला—

"आपको तो अध्यापिका होना चाहिए था।"

"किसको क्या होना चाहिए और वह क्या बन जाये, यह सब तो परिस्थितियों पर निर्भर है डाक्टर साहब! जहाँ तक मानव सेवा का

प्रश्न है। वह मनुष्य कहीं भी कर सकता है। मेरी दृष्टि में मनुष्य केवल पैसा कमाने की मशीन नहीं है। उसे कुछ और भी होना है। उसे सोचना है—जिस भवन को मैं अपने विश्राम के लिए बना रहा हूँ, कहीं उसकी दीवारों में अत्याचार का ईंट-चूना तो नहीं लगा है। जैसे भवन निर्माता मनुष्य नहीं स्वयँ पत्थर हैं, जो दिन-रात दूसरों का शोषण कर अपने भोग विलास में खोये रहते हैं। मेरी दृष्टि में इससे अच्छी है, मजदूर की वह झोंपड़ी, जिसमें मानवता विश्राम करती है।"

"देखो रजनी, मुझे तुमसे मार्क्सवाद नहीं पढ़ना है। यदि पढ़ाना ही है तो फ्रायड को पढ़ा दो।"

"मैं आपको पढ़ा नहीं रही हूँ महोदय। मनमाना अर्थ न लगाओ।"

"इन सब बातों का मतलब है, कि तुम नर्स बनना नहीं चाहती।"

"देखो डाक्टर! चरित्र बेचकर यदि मुझे सृष्टि की कोई संचालिका भी बनाये तो मैं बनना स्वीकार नहीं करूँगी। मेरे मस्तिष्क में नर्स के कर्तव्य का जो चित्र अंकित है, मैं उसको कभी नहीं भुलाऊँगी। एक नर्स का कर्तव्य है—रोगियों की देखभाल भी करे और उन्हें मानसिक सांत्वना भी दे। मैं अपने इस धर्म का सदैव पालन करूँगी। कृपया आप अनाधिकार माँग को प्रस्तुत न करें। मैं जो हूँ मुझे वही समझें।"

डाक्टर को विश्वास हो गया—प्रलोभन या भय से यह युवती वश में नहीं आ सकती। भाव और वाणी में परिवर्तन कर वह बोला—

"तो आपने हमारी याचना को अन्तिम रूप में ठुकरा दिया है।"

"मुझे आपकी याचना की भूख नहीं है डाक्टर साहब! मैं तो चाहती हूँ आप मुझे छोटी बहन समझ कर कोई भी आदेश दें और मैं उसको नतमस्तक स्वीकार कर कृतार्थ हो जाऊँ।"

"अच्छा जाओ अपना काम करो। व्यर्थ समय नष्ट करने से क्या लाभ?"

रजनी चुपचाप वहाँ से उठकर अपने वार्ड में आ गई। उसने एक कोने से रोगियों को देखना आरम्भ कर दिया। चार बजे तक वह

बराबर रोगियों की देखभाल करती रही। वह चार बजे अस्पताल से चली और साढ़े पाँच घर पहुँच गई। उसने जाते ही बच्चे को दूध पिलाया। वृद्धा ने इतनी देर में चाय तैयार कर दी। रजनी चाय पीकर खाना बनाने लग गई। और वृद्धा बच्चे को लेकर लेट गई। आठ बजे तक खाना बनाकर वृद्धा और रजनी बातों में लग गई। नो बजे वृद्ध धर्मशाला से आये। रजनी ने उनके साथ भोजन किया, और फिर दोनों बातों में जुट गये। वृद्ध बोले—

"आज तुम कुछ उदास हो, बेटी! क्या बात है?"

"कुछ नहीं पिताजी! सब ठीक है।"

"छुपाओ नहीं बेटी। कुछ बात अवश्य है।"

"बात कुछ खास तो नहीं है। आज एक डाक्टर अपनी मूर्खता का परिचय देने लगा। उसी विषय में कुछ सोच रही थी।"

"देखो बेटी! स्त्री घर से बाहर कोई भी कार्य करे उसे भेड़िये अवश्य मिलेंगे। इसीलिये प्रत्येक समय बहुत ही सावधानी से चलना है तुम्हें। कार्य क्षेत्र में नारी को कीचड़ का कमल बनकर ही अपने अस्तित्व की सुरक्षा करनी चाहिए।"

"कल आप उस डाक्टर को जाकर समझा देना" शब्द वृद्धा के थे।

"तुम मूर्ख तो नहीं हो। हमें अपने बच्चों को समझाना था, सो समझा दिया। भला ये पके हुये घाघ अब क्या समझेंगे।"

"अच्छा अब तुम सो जाओ बेटी, रात बहुत हो गई है।" रजनी तुरन्त बच्चे के पास सो गई।

४०

सेठ करोड़ीमल की विवाहित पत्नी का बड़ा लड़का यिदेश से व्याव सायिक अध्ययन करके भारत लौट आया। वह अब मिल का विधिवत् मैंनेजन के रूप में संचालन करता है। धर्मार्थी जी का कार्य अब मजदूरों की गतिविधियों का अध्ययन करना ही शेष रह गया है। वह उनमें सारा समय लगाते हैं। इसीलिए उन्होंने अपने गुप्त साधनों से उन मजदूरों का पता लगा लिया है जो हृदय से राजेश के साथ हैं। उनमें से अधिकतर पंजाबी कारीगर हैं वे कुछ निर्भीक और दृढ़ निश्चयी से हैं। इसीलिए धर्मार्थी जी ने कोई न कोई बहाना खोजकर उनको निकालना आरम्भ कर दिया है। मिल में इस बात से असन्तोष की लहर सी दौड़ गई है। धर्मार्थी जी वाणी के जितने पहले से कोमल हो गये हैं। उनके हृदय की कठोरता उसी अनुपात से बढ़ गई है सेठ जी के सुपुत्र और धर्मार्थी जी को लेकर मजदूरों में उन दोनों के व्यवहार की चर्चा होने लगी है।

उस दिन छब्बीस जनवरी होने से मिल बन्द था। धर्मार्थी जी ने चार बजे मिल के स्थायी रंग मंच पर एक नाटक खेलने की व्यवस्था की। नाटक का शीर्षक था 'भारतमाता'। मजदूरों के बच्चों के लिये कुछ मिठाइयाँ बांटने की योजना भी बनाई गई। धर्मार्थी जी ने एक अब प्रचार यह भी किया है— मजदूरों के सब बच्चे मेरे ही बच्चे हैं। कुछ कारीगर इस कथन की खिल्ली भी उड़ाते हैं। वह कहते सुने जाते हैं—बच्चे तो अब धर्मार्थी जी के हो गये हैं। स्त्रियाँ भी एक दिन उनकी ही बन जायेंगी। हमको तो वह पूरे साधू बनाकर ही दम

लगे। संध्या को चार बजे नाटक देखने विशेष मजदूर नहीं आये। उन्होंने आज भी मजाक बनाया—हम तो भाई साधू हैं हमें नाटक देखने की क्या आवश्यकता है। मूल बात यह थी सब के सब सवेरे तो झाँकियाँ देखने गये थे। एक बजे तक वहाँ से लौटकर आए, और फिर खाना खाकर अधिकतर मजदूर चादर तानकर सो गये।

धर्मार्थी जी ने कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं किया। नाटक निश्चित समय पर खेला गया। दर्शकों की संख्या सीमित होने से कोई गड़बड़ आज नहीं हुई। नाटक की समाप्ति पर सदैव के समान ही धर्मार्थी जी ने संक्षिप्त भाषण दिया। वे बोले—

"भाइयो! आज का दिन इतिहास में विशेष महत्व रखता है। यह दिन हमारा राष्ट्रीय पर्व है। हमारे नेताओं ने इसी दिन कुछ प्रतिज्ञाएँ कीं और उनको पूर्ण किया। आओ हम भी प्रतिज्ञा करें—देश के विकास में तन, मन, धन से जुटे रहेंगे। जो हमें पथ-भ्रष्ट करेंगे हम उनकी नहीं सुनेंगे। हमें देश में राम राज्य लाना है। वह दिन-रात काम करके ही लाया जा सकता है।

भाषण के समय ही धर्मार्थी जी की दृष्टि कुछ मजदूरों के मध्य राजेश पर पड़ गई। वह वैसे तो छिपकर खड़ा हुआ था, फिर भी भीड़ कम होने से धर्मार्थी जी को दिखाई दे गया। उन्होंने तुरन्त भाषण बन्द कर दिया। मजदूर भी इधर उधर हो गये। धर्मार्थी जी ने वहाँ से जाकर धन्नू को बुलाया। वह उनसे बोले—

"तुमने देखा है? राजेश आज फिर मजदूरों के साथ मिल में ही है। आज दिखा दो अपनी पहलवानी।"

धन्नू ने सीने में अपेक्षाकृत उभार लाते हुए कहा—

"अभी लो बाब! आज इसकी ऐसी मरम्मत करेंगे जो नानी याद आ जाये। ये भी याद करेगा किससे पाला पड़ा है।"

धर्मार्थी जी ने दस का नोट धन्नू के हाथ में थमा दिया। वह उस को जेब में रख अपने साथियों को लेकर राजेश के घर लौटने के मार्ग

में खड़ा हो गया। राजेश जब आया तो उसको रोक कर धन्नू बोला—

"ठहरो बाबू, कुछ बातें करनी है।"

साइकिल से उतर कर राजेश स्वर में नम्रता लाकर बोला—

"कहो भाइयो क्या बात है ?"

"क्या आप हमको जानते हैं ?"

"क्यों नहीं ! अपने भाइयों को कौन नहीं जानता।"

"आप मिल में आना छोड़ोंगे या नहीं ?"

"मिल मेरी ससुराल नहीं है भाई धन्नू। आप ऐसा चाहते हैं तो मैं कभी नहीं आऊँगा। और बोलो क्या आज्ञा है ?"

"अच्छा यह बताओ आप यहाँ आते क्यों हैं ?"

"आप भाइयों के दर्शन करने के लिए।"

"बेकार की बात छोड़कर अब आप यहाँ आना बन्द कर दीजिए।"

"कह तो दिया कल से नहीं आयेंगे। वस एक बात का उत्तर आप दे दें। फिर हमारी आपकी पूरी विदाई हो जायेगी।"

"बोलो—वह क्या बात है।"

"आप सब धर्मार्थी के कहने से मेरी पिटाई करने आये हैं, यह मैं जानता हूँ। अब मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि मैंने आप भाइयों का क्या बिगाड़ा है ?"

"हम तो पैसे के लिए पिटाई करते हैं। आप भी जिसकी चाहें करा लें।"

"देखो भाइयो। यह जीवन और जवानी केवल चार दिनों की है। हमें इस दुनियाँ से अन्त में जाना ही है। फिर बताइये इसको क्यों बेकार किया जाए। मुझे आप मार सकते हैं यह ठीक है परन्तु यह वीरता नहीं है। मेरे विचार में सबसे बड़ी वीरता है, दुर्बल पर दया। आप विचार कीजिए उनकी सहायता छोड़कर आप एक धनिक

के हाथ का खिलौना बने हुए हैं। मैं चाहता हूँ आप अपने साथियों को गले से लगा लें। और फिर मुझे जो आज्ञा दोगे मैं स्वीकार करूंगा।"

इस कथन को सुनकर धन्नू कुछ पिघला। वह बोला—

"क्या बताओगे, हमें क्या करना चाहिए ?"

"अपने भाइयों के अधिकार की रक्षा। आपका मिल में प्रभाव है। आप एक संगठन बना सकते हैं। मैं जानता हूँ, आपको धर्मार्थी जी ने मेरे विरुद्ध कितना कुछ कहा है। अच्छा हो आप मेरे साथ कुछ दिन चलकर देखें। यह ठीक है—मैं अच्छा आदमी नहीं हूँ। फिर भी उतना बुरा नहीं हूँ जितना आपको बताया गया हूँ।"

धन्नू का एक साथी पूर्ण प्रभावित हो गया। उसने पूछा—

"आप दिल्ली में रहते कहाँ पर हैं ?"

राजेश ने अपना पता लिखकर दे दिया। वह बोला—

"मेरे पास जब भी आप आयें सवेरे ही आयें।"

"कल आप किस समय आयेंगे मिल में ?" शब्द धन्नू के थे।

"अब मैं क्यों आऊँगा ? आपने मेरे काम को संभाल तो लिया।"

"कल आपको आना ही होगा।"

"आप बुलायेंगे तो मैं अवश्य ही आऊँगा।"

"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अब से हम अपने भाइयों के साथी रहेंगे। आप हमें रास्ता दिखायें, चलना हमारा काम है।"

राजेश ने गद्‌गद् होकर सबको छाती से लगाया। सबको लगा—जैसे सचमुच अपना कोई बिछुड़ा हुआ भाई पाकर गले से लग रहा है। सबसे बिदा होकर राजेश सीधा अपने घर आ गया। उसने देखा—वहाँ रजनी उदासी की जीवित प्रतिमा बनी खड़ी है। रजनी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राजेश ने प्रणाम का उत्तर देकर ताला खोला। चारपाई निकाल ली। वह बोला—

"बैठो रजनी। कहो कैसे आई हो ?"

"क्या मुझे यह भी बताना होगा कि मैं क्यों आई हूँ ?"

"अकारण तो कोई क्रिया नहीं होती।"

"मैं आपके दर्शन करने आई हूँ, तर्क करने नहीं।"

"मेरे दर्शनों से तो खिली कली भी मुरझा जाती है रजनी। चाँद को देखूँ तो ग्रहण लग जायेगा। फूल को छू लूँ तो वह भी पत्थर बन जायेगा। क्या करोगी मेरे दर्शन करके। अपनी दुनियाँ को बसाओ। मुझे तो अब भूल ही जाना ठीक है।"

कटुता के स्थान पर आज रजनी ने प्रथम बार राजेश के स्वर में कुछ अपनत्त्व की झलक सी देखी। उसने भी हृदय को व्यक्त किया—

"ऐसा न कहो मेरे देवता! बहन राजेश्वरी को लाना तो अब मेरे लिए सम्भव नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि यदि कोई सेवा मुझ दासी के योग्य हो तो मैं प्रस्तुत हूँ। मेरे तो आप जीवन पर्यन्त ही सिर के स्वामी रहेंगे।"

"नारी की वाणी कितनी कोमल होती है, उतना हृदय नहीं होता रजनी।"

"दुःख तो यही है अब आपको सब राधा ही दिखाई देती हैं।"

"राधा के निकट भी मुझे तुमने ही लाकर खड़ा किया था।"

"यही तो भूल है, जिसके लिए मुझे जीवन भर पश्चाताप करना होगा। कितना अच्छा होता मैं उसके पास आकर ही न ठहरती।"

"घावों को हरा न करो। अब यह बताओ किसलिए आई हो?"

"मेरे देवता का आर्शीवाद मुझ अभागी के लिए वरदान सिद्ध हो गया है। इसी की सूचना देने के लिए मैं यहाँ आई हूँ।"

"यह सूचना तो मुझे उसी दिन मिल चुकी थी। ईश्वर बच्चे सहित आपको प्रसन्न रखे। रही दूसरी बात। आप वैश्या हैं या सावित्री, इससे अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। बुलबुल के उड़ने पर चमन बसे, या उजड़े, उसे इससे क्या। अपना भला-बुरा आपको स्वयँ ही सोचना है।"

"एक बार अपने बच्चे को तो देख ही लेते।"

"सुख और दुख के दोनों पथों के अन्तिम छोरों को देखकर अब

कुछ भी देखने की इच्छा नहीं है, रजनी।"

"आपके खाने का क्या प्रबन्ध है आजकल ?"

"यह जानकर तुम क्या करोगी ?"

"यह जानना मेरा धर्म है। खाना बनाकर दे जाया करूँगी।"

"छोड़ो व्यर्थ की बातों को। इस समय मैं संक्रान्ति काल की बेला से गुजर रहा हूँ। अभी मुझे कुछ न कहो तो अच्छा है।"

"एक बात मानेंगे आप।"

"निश्चित नहीं कह सकता। सम्भव हुआ तो अवश्य मानूँगा।"

"आप विवाह कर लीजिए।"

"इस विषय में आप न सोचें। अभी तो मेरे सोचने वाले मेरे सिर पर बैठे हैं। आप विश्वास रखें, अविवाहित रहकर मैं भविष्य में आपके पथ का रोड़ा किसी भी स्थिति में नहीं बनूँगा।"

"मुझे दुःख है राजेश, आप मुझे अब भी नहीं समझे। मैं जो भी कहती हूँ आप मनमाना अर्थ लगाकर मेरे कथन की उपेक्षा कर देते हैं।"

"स्त्री को जितना भी कम समझा जाए, उतना ही अच्छा है रजनी।"

"परन्तु मैं आपकी पत्नी हूँ स्त्री नहीं। मुझे तो आप अतीत में ही पूर्ण रूप से समझ चुके हैं। अब यदि न भी समझें तो भी मेरे निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। रही आपकी बात—वह आपको जानना है।"

"मैं वही तो कहता हूँ, जख्मों को हरा न करो।"

"हृदय की आँखों से देखो राजेश। मैं घावों को हरा करने वाली नहीं हूँ, उन पर मरहम लगाने वाली हूँ।"

"उचित समझो तो चारपाई पर ही बैठ जाओ।"

"उठने के लिए बैठकर क्या करूँगी मेरे प्राण।"

राजेश ने चारपाई उठाकर अन्दर डाल दी। वह बोला—

"चलो फिर अन्दर बैठ जाओ।"

रजनी को एक झटका सा लगा और वह उसी के साथ अन्दर चली गई। वह चारपाई पर बैठ गई और राजेश चुपचाप खड़ा हो गया। उसको देखकर रजनी भी खड़ी हो गई। दोनों कुछ देर तक एक दूसरे को देखते रहे। भाव विभोर सा हो राजेश बोला—

"खड़ी क्यों हो गई बैठ जाओ।"

इस कथन को सुनते ही रजनी अतीत के समान ही राजेश के चरणों में गिर गई। राजेश उस समय कुछ देर शान्त खड़ा उसकी पीठ को देखता रहा। आज उसे रजनी अतीत से भी अधिक सुन्दर दिखाई दी। उसके पगों में कम्पन सी हुई। शरद ऋतु होने पर भी राजेश को पसीना आ गया। उसके हाथ कई बार रजनी की पीठ की ओर बढ़े। वह पूर्ण शक्ति लगा कर उन्हें रोके रहा। वह विवश हो गया। और उसने दोनों हाथों से रजनी को ऊपर उठा लिया। रजनी ने खड़ी होकर देखा —राजेश की आँखों में अतीत कालीन उन्मत्तता उबल रही थी। एक पल के लिए रजनी भी कंपित सी हो गई। वह न जाने किस लोक में भ्रमण के लिए चली गई। वह फिर जैसे सोते से जागी हो। सचेत सी हो, स्थिति से सुरक्षा के लिए वहाँ से तुरन्त चल पड़ी। राजेश ने चलते ही उसका हाथ पकड़ कर उसे रोका। वह बोला—

"अभी न जाओ रजनी, बैठो।"

रजनी ने पूर्ण सचेत हो राजेश की दृष्टि को पढ़ा और कहा—

"फिर आऊँगी संध्या को। इस समय चलने दो।"

राजेश को न जाने क्या हुआ, रजनी के हाथ को कस कर पकड़ लिया। रजनी जैसे शिकंजे में कस गई हो। वह इस समय सोच ही नहीं पाई कि क्या करूँ। धीमे स्वर में वह बोली—

"मुझे छोड़ दो राजेश, बच्चा रोता होगा।"

"आज तुम नहीं जा सकोगी रजनी।"

उसी समय रजनी ने एक झटका लगा कर हाथ को छुड़ा लिया। वह फिर द्रुत गति से बाहर आ गई। राजेश का मन इस समय बल्लियों उछल रहा था। उसने रजनी को पकड़ने की भी चेष्टा की। वह उस समय बाहर सड़क पर जा चुकी थी। राजेश हारे जुआरी के समान पाषाण प्रतिमा बन कर खड़ा हुआ उसे देखता ही रह गया।

४१

राजेश ने उस संध्या को भोजन नहीं किया। वह आधा सेर दूध पीकर ही सो गया। वह चाहता था—तुरन्त नींद आ जाए। उसे नींद नहीं आई। रात्री का एक बज गया और वह बराबर विचारों में डूबता गया। उसने फिर बत्ती जला कर कोई पुस्तक पढ़ना आरम्भ कर दिया। वह दो बजे तक पढ़ता रहा। उसका मस्तिष्क कुछ थकने लगा। वह फिर बत्ती बन्द कर बिस्तर पर मुँह ढाँप कर पड़ गया। इस बार उसे कुछ नींद सी आ गई। नींद कुछ गहरी न थी। उचटी सी नींद में उसने स्वप्न देखा—रजनी उससे कह रही है—"मुझे विवेक की दृष्टि से पहचानो राजेश। मैं तुम्हारी हूँ केवल तुम्हारी। तुम्हारे लिए कौन सा बलिदान है, जो मैं नहीं कर सकती।"

राजेश की नींद खुल गई। वह फिर चिन्तन के भार से दब गया। रजनी के विषय में ही सोचने पर विवश हो गया। अब उसकी आँखों के सम्मुख आठ घन्टे पूर्व की घटना का चित्र खेल रहा था। वह उसी के विषय में विचार मग्न हो गया—

"मैंने यह क्या किया? सचमुच मैं बड़ा मूर्ख हूँ। एक बार जो मक्खी मुँह से उगल दी उसी को निगलने के लिए उद्यत हो गया। जिस सुन्दरता पर मैं मुग्ध हुआ वह मेरे लिए कोई नवीन न थी। ऐसी ही भूलों से मेरे जीवन का विनाश हो गया है। सचमुच मैं संयमहीन हूँ। रजनी एक चंचल गाय है। वह एक खूंटे से बंध ही नहीं सकती। फिर मैंने यह मूर्खता क्यों की? रजनी को अब मेरी दुर्बलता का पता चल गया है। क्या वास्तव में नारी की सुन्दरता ही सब कुछ है? नहीं

कदापि नहीं। सुन्दरता और शिक्षा के साथ ही नारी के लिए सचरित्र होना भी बहुत आवश्यक है। इसके बिना तो नारी उस सुगन्धहीन सुमन के समान है जिसमें केवल आकर्षण शक्ति ही है।

विचारों में डूबे राजेश को क्रोध आ गया। उसके क्रोध का केन्द्र बिन्दू थी, इस समय वही रजनी। उसने अपने आप को भी फटकारा—मैंने रजनी का स्वागत ही क्यों किया ? उसको यूं ही खड़ी देखकर मुझे लौट जाना चाहिए था। फिर मैंने उसके लिए पलकें ही बिछा दीं। नीच आखिर नीच है। नाली की ईंट भला मन्दिर में कैसे शोभा पा सकती है। कुत्ते की पूँछ बारह वर्ष नलकी में रह कर भी सीधी नहीं हो सकती। फिर भला रजनी क्या बदल सकती है। स्त्री का पाँव एक बार फिसलने पर संभालना उतना हो कठिन है जितना वर्षा ऋतु में उमड़ती सरिता के प्रवाह को मोड़ना।

राजेश रजनी को चारों ओर से परखने लगा—वह अब माता बन कर गर्वीली हो गई है। प्रदर्शन के लिए पावों में भी पड़ गई। तन उस का यहाँ था और मन बच्चे के पास। एक भूखे वृद्ध का आश्रय पाकर वह समझती है मैं मल्लिका बन गई हूँ। तुच्छ व्यक्ति की यही पहचान है। छोटे नाले वर्षा ऋतु में अवश्य उमड़ते हैं। किन्तु अपनी सीमा में नहीं रहते सागर प्रत्येक ऋतु में एक जैसा ही रहता है। उसकी एक मर्यादा है। नौकरी मिलने से तो रजनी मुझे नहीं स्वयँ को भी भूल गई है। आखिर इसका अस्तित्व ही क्या है ? इधर उधर बन संवर कर भटकती रहती है। इसका सौंदर्य एक मरुस्थल के समान है। न जाने कितने प्यासे मृग इसमें भटकते रहते हैं। कितनी भूल की है मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। इससे उसका गर्व सातवें आसमान पर पहुंच गया है। पुरुष के संयम को पाकर नारी मोम बन जाती है। विपरीत उसके पुरुष यदि मोम बन जाये तो नारी को पाषाण बनते देर नहीं लगती। मैंने आज मोम बनने की भयंकर भूल की है।

आखिर मैंने यह सब किस शक्ति की प्रेरणा से किया है। उसे उत्तर मिला—यह सब उद्दंड मन के आदेश का परिणाम था। मन मनुष्य

की प्रतिष्ठा को एक पल में ही धूल में मिला देती है। इसीलिए संतों ने इसकी भर्त्स्ना की है।

मन निंदा करते हुए राजेश तुरन्त ही मन के वशीभूत हो गया—कितना अच्छा हो रजनी एक बार फिर उसी रूप में आए। कितना सुहावना था वह दृश्य जब रजनी पाँवों में पड़ी थी। प्रदर्शन के लिए ही सही। कुछ था अवश्य, जो आँखों से ओझल ही नहीं होता। इस समय की झुंझलाहट भी तो यही कह रही है। भोग जीवन का जहाँ एक अभिशाप है, वहीं पर वरदान भी। नारी के समर्पण को ग्रहण करने में जो सुख है, शायद वह अन्य कहीं नहीं।

उस समय पाँच बजे होंगे। राजेश को न जाने क्या हुआ। उसने द्वार खोलकर खड़े ही खड़े निश्चय किया, मुझे अभी रजनी के पास चलना चाहिए। चलना ही नहीं, क्षमा भी माँगनी चाहिए। समय के अनुसार बच्चा मेरा है। मुझे बच्चे को अपनाना चाहिए। रजनी कहीं भटकती फिरे। बच्चा निश्चित रूप में मेरा है।

कमरे के द्वार बन्द कर राजेश सड़क पर आ गया। वहाँ कोई सवारी उस समय न थी। खड़े-खड़े ही उसके विचारों में नया मोड़ आ गया। उसने अपने से ही कहा—क्या कर रहे हो राजेश ? एक मूर्खता करके दूसरी भूल न करो। जो तुम्हारा है वह दूर होकर भी तुम्हारा ही रहेगा। धैर्य रखो ! ठंडा भोजन ही उचित होता है। गर्म निगलने से मुँह जलने का अंदेशा है। एक ओर हजारों मजदूरों को आँखें देना चाहते हो और दूसरी ओर स्वयँ ही अन्धे बनकर चल पड़े।

राजेश फिर सड़क से कमरे पर लौट आया। वह फिर कमरे के द्वार बन्द कर सो गया। उसे इस बार कुछ नींद आ गई। वह दो घण्टे तक सोता रहा। लगभग सात बजे उसे द्वार पर थपकियाँ सुनाई दीं। वह फिर आँखें मलता हुआ खड़ा हो गया। उसे द्वार खोलते ही राधा के पिता सम्मुख खड़े हुए दिखाई दिए। वही बात हुई खोदा पहाड़ निकला चूहा। वह अनुमान कर बैठा था --रजनी आई है। कुछ खिन्न

सा होकर राजेश राधा के पिता से बोला—

"कहिए कैसे आए हैं आप इस समय ?"

"जिस वृक्ष को मेरी सन्तान ने काटकर फेंक दिया है मैं उसी की छाया में विश्राम के लिए आया हूँ बेटा।"

"कहिए ना, मुझसे आप क्या चाहते हैं ?"

"प्रथम तो यही कहना है राधा की जमानत नहीं हो सकी।"

"तो फिर इस विषय में मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"करना यही है। राधा का मानसिक सन्तुलन अब ठीक हो गया है। वह चाहती है—इस दुनियाँ से विदा होने से पहले एक बार राजेश के दर्शन और कर ले। क्या तुम मिल सकोगे उससे ?"

"आप व्यर्थ में मेरा सिर दर्द क्यों कर रहे हैं। यदि कोई खास बात हो तो शीघ्र बताओ। समय नष्ट करने से क्या लाभ ?"

"देखो राजेश, अब मुझे सारी स्थिति का गहराई से पता चल गया है। राधा ने यह नीच क्रिया तुम्हारी प्राप्ति के लिए ही की है। अब मैं चाहता हूँ यदि किसी प्रकार भी उसके प्राणों की रक्षा हो सके, तो मैं उसका विवाह तुम्हारे साथ ही कर दूँ। तुम्हारी प्राप्ति के लिए जब वह इतनी अन्धी हो सकती है तो तुम्हारा भी कुछ धर्म अवश्य है। तुम्हें उसकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण करनी ही चाहिए।"

"इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि आप उसकी इस नीच क्रिया का समर्थन भी करते हैं।"

"नहीं राजेश ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता।"

"आपके कथन से यह बात स्वयँ सिद्ध हो गई है। यह बात आपने यहाँ कही है। यदि कहीं और कहते तो कुछ और ही हो जाता।"

"आप क्या उसकी इतनी इच्छा भी पूरी न करोगे ?"

"आप यहाँ से जा सकते हैं। मुझे इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं सुननी है।"

राधा के पिता आशा के प्रतिकूल उत्तर पाकर वहाँ से लौट पड़े। उनके जाते ही राजेश रजनी को भूलकर राधा के विषय में सोचने लगा—

"हत्यारी राधा से मिलन और विवाह। कितना विचित्र है यह प्रश्न। अपने कल्पित स्वार्थ के लिए जो दूसरों के प्राण ले सकती है भला उससे पतित स्त्री और कौन होगी। ऐसी को देखना भी पाप है। वह नारी जाति का जीवित कलंक है। कलंक जितना शीघ्र मिटे उतना ही अच्छा है। विचित्र है यह राधा का पिता, जो पाप की गठरी को सिर पर रखकर दौड़ना चाहता है।"

राधा के विषय में सोचता हुआ राजेश कुछ दार्शनिक सा भी बन गया। वह गहराई में उतर कर सोचने लगा—

राधा ने यह नीचाति नीच क्रिया क्यों की ? उसे स्वयं से ही उत्तर मिला—देखो राजेश ! तुमने ही उसकी भावनाओं को जगाया था। जाग्रत भावना उसी बाढ़ के समान है, जो कुछ न कुछ अनिष्ट किये बिना नहीं रहती। वह अपनी बुरी या भली दुनियाँ से पूर्ण सन्तुष्ट थी। वह सो रही थी, तुमने उसे जगाया। यह सोचा ही नहीं उसे जाग्रत होने पर क्या करना चाहिए। तुम दोषी अवश्य हो। अन्धा न्याय तुम्हें दोषी नहीं मान सकता। फिर भी तुम दोषी हो। जिस अग्नि को तुमने अपने चारों ओर जगाया था, उसी की लपटों ने तुम्हारी पत्नी को क्षार बना दिया है।"

राधा की अल्पबुद्धि ने अपने कल्पित पथ में राजेश्वरी को ही सब से बड़ी बाधा पाया था। उसने उसी को हटाने के लिए ऐसा कुत्सित क्रम किया है। व्यापक दृष्टि से देखो। दुनियाँ का प्रत्येक व्यक्ति ही अपने पथ का निर्माण करते हुए, बाधाओं को दूर करता हुआ आगे बढ़ता है। अपनत्व का पोषण और परत्व का हरण, यही है जीवन की वास्तविक गति। बड़े-बड़े आदर्शवादी भी इस गति को समयानुसार अपनाते हुए पाए जाते हैं। जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ प्राणी मनुष्यों की पंक्ति से उठकर देवताओं की श्रेणी में चला जाता है। अपने आँचल में झाँक कर देखो राजेश, कुछ दोष तुम्हारा भी है।

उसी समय राजेश की भावनाओं ने अंगडाई लीं। वह चीख पड़ा—

"देवी राजेश्वरी मुझे क्षमा कर देना। जिस बाघिन ने तुझे मृगी समझ कर निगल लिया है। उसको बढ़ावा देने का कुछ दोषी मै भी हूँ। परन्तु अब क्या हो सकता है। जो तीर हाथ से छूट गया वह लौटकर नहीं आ सकता। कितना अच्छा होता आज तुम जीवित होतीं।"

राजेश जब भावों में डूबा हुआ था उसी समय उसका भाव धन्नू ने भंग कर दिया। उसने देखा—

धन्नू अपने अनेक साथियों सहित उसके सम्मुख खड़ा है। धन्नू ने रात भर मिल में एक नई चेतना को जन्म दिया और फिर मार्ग दर्शन के लिए वह राजेश के पास आ गया। बड़प्पन की तो उसमें पहले से ही इच्छा थी। पहले वह पहलवान कहने से ही फूल जाता था और अब वह सबका नेता बन कर सन्तुष्टि का इच्छुक हो गया है। धन्नू और उसके साथियों के प्रणाम का उत्तर देकर राजेश सड़क पर गया और सबके लिए चाय का आर्डर दे आया।

वह आते ही धन्नू को सम्बोधित कर बोला—

"बैठो भाई, खड़े क्यों हो?"

धन्नू ने सबकी ओर से बोलते हुए उत्तर दिया—

"पहले तो आप हमें माफी दे दें बाबूजी। हम तो अन्धे थे। अब तक फेंके हुए टुकड़ों पर ही जीते रहे।

"कोई बात नहीं धन्नू भाई, सुबह का भूला शाम को घर लौट आये तो वह भूला नहीं होता। आप अब भी बहुत कुछ कर सकते हैं।"

"आप रास्ता दिखाएँ बस चलना अब हमारा काम है।"

उसी समय चाय आ गई और सबने एक साथ चाय पी। जब राजेश पैसे देने लगा तो धन्नू न माना। उसने पैसे अपने पास से ही दिये।

पैसे देता हुआ वह बोला—

"ये पैसे तो धर्मार्थी के ही हैं बाबूजी। हमारे घर के नहीं हैं।"

इस कथन के साथ ही सब हँसते हुए चल पड़े। सबने प्रणाम कर राजेश को मिल में आने के लिए कहा और राजेश ने उदारता भरे स्वर में कहा—

"अच्छा भाइयो मैं आज अवश्य आऊँगा।"

४२

उस रात रजनी की नींद भी हवा हो गई। वह घर जाकर चुप-चाप बिस्तर पर पड़ गई। बच्चे को वक्ष से लगाकर उसने सोने का प्रयत्न किया। एक करवट से पड़े-पड़े उसकी करवट में दर्द हो गया। रात के एक बजे तक वह बराबर विचारों में उलझती चली गई। चिन्तन तो वैसे उसका दैनिक कार्य है फिर भी आज वह जैसे किसी महत्त्वपूर्ण निर्णय के निकट पहुँचना चाहती हो। उसके मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उठे, और उनका उत्तर भी स्वयं ही देती रही। वह सोच रही थी—

आखिर मैं राजेश के पास क्यों गई। उसको अपने से ही उत्तर मिला—जब वह तेरे हैं तो उनके पास जाना कोई पाप नहीं है। अपनों के पास जाना किस विवेकी ने पाप बताया है। उसने फिर अपने से ही प्रश्न किया—जब वह तुझे ही अपनी नहीं समझते तो तुझे भी दूर ही रहना चाहिए था। और अगर गई तो उनके निश्चय का विरोध कर क्यों चली आई। जानती हो राजेश के मस्तिष्क में इसकी कितनी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होगी। चली थी कुछ पाने और आई है गाँठ से भी कुछ खोकर। बता तूने यह भूल क्यों की है? महान् से महान् व्यक्ति भी कहीं दुर्बल अवश्य है। विशेषकर इस दृष्टि से मनुष्य की दुर्बलता चिर परिचित है, जिससे तूने राजेश को देखा है।

रजनी ने अपनी भूल का पश्चाताप सा किया—अब क्या हो सकता है। कितना अच्छा अवसर था। राजेश की शंकाओं की दीवार एक पल

में धराशायी हो जाती । नारी के सौन्दर्य की मदिरा के सेवन करने के पश्चात् पुरुष उसके दोष निकालने वाली दृष्टि से अन्धा हो जाता है। यदि मैं अतीत की एक प्याली राजेश को पिला देती तो निश्चित ही उसका निश्चय कच्चा धागा बनकर रह जाता ।

काठ को बेंधने वाला मनचला मधुकर कमल कोष में बैठकर सारी चंचलता भूल जाता है । इस पर भी राजेश भ्रमर नहीं है यह मैं जानती हूँ । वह मेरा पति है इसीलिये उसने मेरा हाथ पकड़ा था । यदि कोई और स्त्री होती तो राजेश कभी ऐसा आचरण न करता ।

रजनी ने विचार मन्थन के पश्चात् निश्चय किया– कल मैं फिर राजेश के पास जाऊँगी । मुझे अपनी भूल की क्षमा मांगनी ही चाहिए। वह क्षमा करें या न करें यह उन पर निर्भर है। मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही होगा । वह क्रुद्ध होंगे तो मैं समझूंगी वह मेरे है। अपनों की भूलों पर ही अपने क्रोध ही किया करते हैं । यदि वह तटस्थ से हो गये, उन्होंने कुछ नहीं कहा । मैं समझूंगी, वह अब मेरी ओर से विरक्त हो गये हैं। मैं चाहती हूँ वह सीमा से अधिक क्रोध करें । इससे एक और उनके प्रेम की परीक्षा होगी और दूसरे उनकी खुमारी भी कुछ मध्यम हो जायेगी । क्रोध की अति इति भी बन सकती है। आज का उनका क्रोध पश्चाताप भी बन सकता है। जिस दिन वह कहेंगे 'मैंने भूल की है' उस दिन मैं स्वयँ को सबसे अधिक सौभाग्यवती समझूंगी ।"

रजनी ने जीवन के भावी निश्चय पर विचार किया—पुरुष नारी को पहेली कहता है, विपरीत इसके मैं आज राजेश को पहेली कहूँगी । हाँ इतना अवश्य है कि यह पहेली मधुर बहुत है। मैं भी इसको जानकर ही रहूँगी । मदिरा की प्याली पिलाकर उन्मत्त करने की बात मैं सोच रही थी । यह भी ऐसी भूल है। मैं कोई वैश्या नहीं हूँ। मुझे तो कुशल गृहिणी बन कर दिखाना है। पुरुष को भोगान्ध बनाकर जो नारी मुट्ठी में बन्द करती है, वह अच्छी नारी ही नहीं है । नारी को राजेश पुरुष के कर्त्तव्य की प्रेरणा मानते हैं । वह इस समय कर्त्तव्य

के पथ में जूझ रहे हैं। धर्मार्थी से संघर्ष पर उनकी विजय होनी ही चाहिए। उनके मन में हजारों मजदूरों का दर्द समाया हुआ है। इस स्थिति में मुझे उनकी प्रेरणा बनकर ही चलना है। जिस धर्मार्थी से वह नैतिक संघर्ष कर रहे है वही तो हम दोनों के मध्य शंका की दीवार बन कर खड़ा हुआ है। वह उसे गिरा कर ही दम लेंगे। कितना शुभ दिन होगा जब मैं धर्मार्थी की उनके द्वारा पराजय देखूँगी।

उस समय दो बजे होंगे। रजनी बच्चे को छाती से लगाये विचारों में डूबी हुई थी।

न जाने क्यों बच्चा रो पड़ा। वृद्धा तुरन्त बत्ती जलाकर बच्चे के पास आ गई। वह बच्चे को थपकियाँ देने लगी। उसने देखा रजनी भी जाग रही है। वृद्धा को आश्चर्य हुआ पहले कभी रजनी जागती हुई नहीं पाई। मैं तो कई बार बच्चे को देखती हूँ। आज जरूर कोई बात है। शाम रजनी देर से भी आई थी। इस समय वह कुछ विचार कर रही है। वृद्धा ने फिर रजनी से पूछा—

"सो जाओ बेटी। तुम क्यों जाग रही हो?"

रजनी ने करवट बदलते हुए उत्तर दिया—

"आँख खुल गई थी माताजी।"

"रात को तुम आराम से सो जाया करो बेटी! बच्चे को तो मैं आप संभाल ही लेती हूँ।"

"सो रही हूँ माताजी।"

इतना कहकर रजनी शान्त हो गई। कुछ देर में वृद्धा भी बच्चे को सुलाकर शान्त हो गई। रजनी इस समय चिन्तन के भार से दबकर थक चुकी थी। उसे कुछ नींद की झपकी सी आ गई। स्वप्न में उसने देखा—

"वह एक टीले पर खड़ी है। उसकी दृष्टि के सम्मुख कुछ झाड़ियाँ हैं। उन्हीं झाड़ियों में से उसे कुछ खाई सी दिखाई दे रही है। राजेश उसी खाई में अचेत सा पड़ा है। वह कुछ सचेत सा हुआ। उसने आँखें

फाड़-फाड़कर चारों ओर देखा। न जाने उसे क्या हो गया है। वह उठ नहीं पा रहा है। रजनी से न रहा गया। उसकी भावना उमड़ी और वह उसी ओर दौड़ पड़ी। उसका सारा शरीर झाड़ियों में छिल गया। उसे इसका कुछ भी ध्यान नहीं है। तीर की भाँति वह राजेश के पास दौड़ गई। उसने देखा—

राजेश पंगु सा बना हुआ है। रजनी ने अपने कंधे का सहारा देकर उसे उठाया। उसने जैसे ही राजेश को उटाकर गले से लगाया। वह कराह पड़ा—"तुम कितनी महान् हो रजनी। मुझे क्षमा कर दो देवी।"

रजनी सचमुच चीख पड़ी।

"मुझे ही क्षमा कर दो मेरे देवता।'

रजनी की चीख सुनकर वृद्धा और वृद्ध दोनों ही जाग गये। वह दोनों ही रजनी की चारपाई के पास आ गये। वृद्धा ने रजनी के सिर पर हाथ रखकर उसे जगाते हुए कहा—

"क्या बात है बेटी?"

"कुछ नहीं माताजी, एक स्वप्न सा देखा था।"

वृद्धा शान्त हो गई और फिर वृद्ध ने पूछा—

"आज तुम कुछ उदास भी दिखाई दे रही हो। क्या बात है ठीक बताओ?"

रजनी को बताना पड़ा—

"कल मैं छः बजे उनसे मिलने गई थी।"

"तुम्हारी माता ने तो मुझे नहीं बताया।"

वृद्धा अपनी ओर पानी ढ़लता हुआ देख बोली—

"मैं क्या बताती। मैंने तो समझा कोई काम गई होगी। कल कुछ झांकियाँ भी तो निकली थीं। मुझे लगा--क्या पता वहीं देखने गई हो।"

"तो फिर वहाँ कौनसी विशेष बात हो गई।"

"यह मैं कल माताजी को बता दूँगी।"

वृद्ध ने इतने से ही कुछ अनुमान लगाकर कहा—"देखो बेटी ! आने जाने में तो कोई हानि नहीं है। फिर भी मैं एक बात अवश्य कहूँगा । जब तक राजेश के मन की शंका दूर न हो जाए, तुम्हें उसके पास अकेले नहीं जाना चाहिए । शंका से उत्पन्न क्रोध जहां स्थायी रूप धारण कर जायें, वहाँ बहुत संभल कर चलना चाहिए। शंका की निवृत्ति के बिना क्रोध शान्त नहीं होता । जहाँ तक शंका निवारण का प्रश्न है, वह किसी विशेष घटना के बिना संभव नहीं है। धैर्य रखो, एक दिन वह अवश्य आयेगा, जब राजेश को अपनी भूल के लिए पश्चाताप करना ही होगा । हमारे पथ की ठोकरें हमें सचेत करती हैं—संभल कर चलो । जो ठोकर खाकर भी सचेत नहीं होते उन्हें एक दिन अपनी सम्पूर्ण गति से हाथ धोना पड़ता है। मानव का धर्म है कि वह अपनी ओर से कोई भूल न करे, और जहाँ तक सम्भव हो, दूसरों की भूलों को क्षमा कर दे। अभी राजेश तुम्हारी माँग को जो वास्तव में उचित है, तुम्हारी दुर्बलता समझता है जब तक तुम दुर्बल हो तुम्हारी बात बालू की रेखा से बढ़कर और कुछ नहीं है। और जिस दिन तुम उसकी दृष्टि में सबल और सचरित्र सिद्ध हो जाओगी, तुम्हारी बात पत्थर की रेखा बन जायेगी ।"

वृद्धा से न रहा गया । वृद्ध का लम्बा भाषण सुन वह बोली—

"अब सोने भी दोगे । तुमने तो पोथी ही खोल कर रख दी ।"

"तुम्हे नींद आ रही है तो तुम सो जाओ ।"

वृद्धा इस कथन के साथ ही चुप हो गई । वृद्ध फिर बोले—

"देखो रजनी ! अच्छा होता तुम हमसे पूछ कर जातीं । मैं तो जब भी तुम चाहो, तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ ।

"आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है, पिताजी ।"

"बस फिर अब सो जाओ ।"

वृद्ध इस कथन के साथ ही बाहर चले गये । उनके जाते ही रजनी ने संक्षेप में वृद्धा को सारी घटना का संक्षिप्त परिचय दे दिया । वह फिर सो गई । इस समय वह मन के भार को कुछ हल्का सा कर चुकी

थी, इसीलिये उसे पढ़ते ही नींद आ गई।

वृद्ध जब बाहर से लौटकर आये, चार बज चुके थे। उनके आते ही बातों की शृंखला जुड़ गई।

"रजनी देर से आई थी तो तुमने मुझे क्यों नहीं बताया था।"

"बता तो दिया। मैंने समझा कोई काम हो गया होगा।"

"वहाँ गई तो क्या बातें हुई।"

"कुछ नहीं यूँ ही छेड़-छाड़ हो गई थी।"

"छेड़-छाड़ कैसी ? मुझे ठीक समझाओ। कहीं कोई ऐसी वैसी बात तो नहीं हो गई है। तुमने कुछ पूछा भी है ?"

"मैंने पूछ लिया। लड़के ने हाथ पकड़ लिया था। रजनी छुड़वा कर तुरन्त भाग आई। बस इतनी सीं बात हुई है,"

"वही बात हो गई। अब राजेश और भी क्रुद्ध हो गया होगा।"

"भगवान ही जाने आदमियों को। एक समय होते हैं पत्थर से भी कठोर और फिर दूसरे समय बन जाते हैं पिघल कर मोम से।"

"तभी तो कह रहा हूँ। इस समय उसके पास नहीं जाना चाहिए।"

"हमारी बेटी स्वयं भी तो समझदार है।"

"इस आयु में मनुष्य की समझ ही उसकी सबसे बड़ी शत्रु होती है देवी जी। कुछ पता भी है यौवन काल में युवक युवतियों अपने में समझ मानकर ऐसी भूल कर बैठते हैं जिनके लिए आयु भर रोना पड़ता है।"

"मुझे क्या समझा रहे हो। मैं तो अब बुढ़िया हूँ।"

"तुम तो बुढ़िया हो, परन्तु बेटी तो बुढ़िया नहीं है।"

"अच्छा अब सो जाओ। आज तो सिर में ही दर्द कर दिया।"

"अब सोने का समय नहीं है। आज रजनी को नहीं जगाना है।"

और फिर दोनों दिन निकलने तक बातें ही करते रहे।

४३

राजेश ने पढ़ा है—कर्त्तव्य के पथ में फूल और शूल की समान आवृत्ति होती है। इस समय उसने इसका व्यवहारिक जीवन में अनुभव भी कर लिया है। उसने निश्चय किया है—मुझे शूलों से लड़ते हुए आगे बढ़ते जाना है। यौवन के भोग की वह अब निवृत्ति समझ बैठा है। इसीलिए अब उसकी सम्पूर्ण शक्ति कर्त्तव्य पालन में लग गई। जब से धन्नू की उसने अनुकूलता पाई है, उसका उत्साह और भी बढ़ गया है। धन्नू को उसने वचन दिया था—"मैं अभी मिल आऊँगा। उसी के पालन के लिए वह तैयार हो दस बजे मिल चल पड़ा। घर से निकलते ही उसने देखा---उसके पिता रमानाथ किसी को साथ लिए आ रहे हैं। वह उनके आने का कारण समझ गया। यह सब विवाह की भूमिका है। उनको कमरे की चाबी देकर वह प्रणाम कर मिल चला गया।

राजेश ने जाते ही मिल में आशातीत परिवर्तन पाया। वह जहाँ गया उसका वहाँ हृदय से स्वागत हुआ। धन्नू ने बारह घन्टे में जैसे बारह वर्ष का काम कर दिया हो। धन्नू राजेश को जाते ही मिल गया। दोनों निर्भीक सारे क्वाटरों में भ्रमण करते रहे। दोनों का गठबन्धन देखकर मजदूर आज अति प्रसन्न थे। उन्हें जैसे चाणक्य और चन्द्रगुप्त की जोड़ी मिल गई हो। ठीक भी है बुद्धि और वीरता का संयोग होने से सफलता संभव हो जाती है। संसार के शेष मज़दूरों को यदि ये दो बल प्राप्त हो जायें तो दुनियाँ में पूँजीपतियों का निशान भी न रहे।

राजेश और धन्नू की इस मित्रता का किसी गुप्त सूत्र से धर्मार्थी

जी को भी तुरन्त पता चल गया। वे अपने कमरे के उस बरामदे में कुर्सी डालकर बैठ गये, जहाँ से सारे क्वार्टर दिखाई देते हैं। दोनों को क्वार्टरों में भ्रमण करता देख, धर्मार्थी जी की पुतलियाँ फिरने लगीं। वे जानते हैं—धन्नू चाहे वीर नही है फिर भी मिल के मजदूर उससे भय अवश्य खाते हैं। उसकी एक टोली है। वह उसी का सरदार है। मेरे हाथ का समय या कुसमय में चलने वाला यह एक शस्त्र था। इसे भी राजेश के बच्चे ने उसकी धार उल्टी कर दी है। अब यह शस्त्र मेरे सिर पर पड़ सकता है।

भावी आशंकाओं में डूबे धर्मार्थी जी ने उक्ति सोची—

"आज घर लौटते हुए, इस राजेश के बच्चे के कुछ नहीं तो हाथ पाँव अवश्य तोड़ दूँगा। यह कार्य मुझे कार द्वारा टकरा कर करना है।"

राजेश अपने पिता को घर छोड़कर आया था। इसीलिए धन्नू से विदा होकर वह एक बजे ही मिल से चल पड़ा। धन्नू ने चलते समय कहा—

"चलिए मैं आपको घर छोड़ आऊँ।"

"ऐसा क्या मैं बच्चा हूँ धन्नू भाई। कल फिर मिलूँगा।"

राजेश धन्नू से हाथ मिलाकर साइकिल द्वारा घर को चल दिया। धर्मार्थी जी यह सब बैठे हुए देख रहे थे। थोड़ी ही देर में वे भी अपनी कार लेकर चल पड़े। उन्होंने राजेश को रोहतक रोड पर जाते हुए देखा। वह अपने विचारों में खोया हुआ साइकिल पर धीरे-धीरे जा रहा था। अवसर पाकर धर्मार्थी जी ने कार को तेज कर दिया और राजेश से टकरा दिया। कार राजेश के पाँव और साइकिल को कुचलती हुई रुक न सकी। कार के टकराते ही धर्मार्थी जी के हाथ पाँव फूल गये। वह एक वृक्ष से टकरा गई। कार के शीशे धर्मार्थी जी से टकरा कर चूर-चूर हो गये। फिर एक क्षण में ही वे गाड़ी के इंजन में फंसकर अचेत हो गये!

इस भयंकर दुर्घटना को देख, वहाँ आने जाने वालों का एक जम-घट लग गया। पुलिस को फोन किया गया और फिर दस मिनट में ही पुलिस का उड़न दस्ता घटना स्थल पर पहुँच गया। उस समय राजेश आहें भर रहा था। उसकी टूटी टांग से रक्त स्रवित हो रहा था। था। धर्मार्थी जी पूर्णतया अचेत इंजन में फंसे हुए थे। कार का अगला भाग अन्दर को धस गया था। धर्मार्थी जी का सिर उसी में फँसा हुआ था। उनका सांस रुक-रुक कर चल रहा था। इस दुर्घटना की आस-पास भी खबर हो गई। राजेश को जानने वाले भी एक दो व्यक्ति वहाँ आ गये। दूसरी ओर धर्मार्थी जी के जानकार तो स्वयँ पुलिस वाले ही थे। कुछ देर में दोनों को अस्पताल ले जाने की व्यवस्था भी हो गई। उस समय राजेश के पिताजी भी वहाँ आ चुके थे। अपने बेटे की ऐसी दशा देखकर वे पीले पड़ गये। पुलिस जब दोनों को लेकर चली, तो राजेश के पिता भी उनके साथ चल दिये। पुलिस ने अस्पताल में देखा—धर्मार्थी जी, सदैव की नींद सो चुके हैं।

सेठ जी ने धर्मार्थी जी की मृत्यु की सूचना पाते ही मिल में छुट्टी करा दी। वे सपरिवार अस्पताल पहुँचे और उनके साथ ही मिल के कुछ बड़े अधिकारी भी वहीं पहुँच गये। धर्मार्थी जी की शव यात्रा अस्पताल से निगम बोध घाट के लिए ठीक सात बजे आरम्भ हुई।

राजेश अचेत तो नहीं था, परन्तु सचेत सा भी नहीं कहा जा सकता। उसके शरीर का रक्त उसी प्रकार रिक्त हो चुका था जैसे गन्ने से रस। उसके लिए तुरन्त रक्त की व्यवस्था की गई। जिस समय राजेश को रक्त दिया जा रहा था, अस्पताल के द्वार पर मजदूरों की भीड़ उसे देखने के लिए उतावली हो रही थी। रजनी भी उसी समय ड्यूटी से निवृत हो घर जाने के लिए अस्पताल से बाहर आई। उसने कुछ परिचित मिल मजदूरों से यूँ ही बातचीत आरम्भ कर दी। उनसे सारी घटना का पता चलते ही वह तुरन्त राजेश के पास पहुँच गई। वहाँ पहुँच रजनी ने देखा—राजेश एक पाँव से पंगु बन चुका है। उसे रक्त दिया जा रहा है। जो डाक्टर और नर्स राजेश के पास थे, रजनी को जानते

थे, इसीलिए रजनी राजेश के पास किसी रुकावट के बिना ही पहुँची और देखते ही हत प्रभ हो गई !

नर्स होकर भी न जाने रजनी को क्या हुआ। वह राजेश की इस दशा को देख ही नहीं पाई। उपस्थित नर्स ने रजनी को धैर्य बंधा कर वार्ड से बाहर स्पेशल रूम में लाकर लिटा दिया। उसके साथ ही राजेश के पिता भी वहाँ आ गये। दोनों वहीं पर बातों में खो गये। राजेश के पिता ने रजनी को सान्तवना दी—"धैर्य रखो बेटी। प्राण बच गये यही सब कुछ है।"

अस्पताल में डाक्टर और नर्सों को पता चल गया—यही रजनी के पति हैं। फिर क्या—एकदम स्पेशल व्यवस्था हुई। चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध हुआ। और फिर रजनी ने अपने बच्चे, वृद्ध और वृद्धा को भी अस्पताल में बुला लिया। वह जानती थी कि सारी रात उसे उनके पास ही रहना होगा कुछ देर के लिए रजनी बाहर गई और मजदूरों को कृतज्ञता प्रकट करते हुए विदा कर दिया।

अगले दिन प्रातः छह बजे राजेश ने सचेत हो आँखें खोल दीं ! उसने देखा—रजनी उसके सिर पर हाथ रखे उदासी की जीवित मूर्ति बनी खड़ी है। राजेश ने एक दृष्टि रजनी को देख आँखें बंद कर लीं। रजनी ने देखा—राजेश की आँखें कुछ गीली हैं और उनमें इतना कुछ लिखा है जिसको पढ़ने में युग बीत जायेंगे। दृष्टि में नेत्रों की पुस्तक का सारांश हृदयांगत कर रजनी ने राजेश की आँखों पर अपने दोनों हाथ धीरे से टिकाते हुए कहा—

"अधीर न हों मेरे प्राण परीक्षा की अवधि समाप्त हो गई।"

धैर्य बंधाती हुई रजनी स्वयं ही अधीर हो गई। उसकी आँखें आँसुओं से भर गई। उसने राजेश के मुँह पर कुछ कहने के लिए जैसे ही गर्दन झुकाई, उसकी आँखों से आँसू की दो बूंदें राजेश के गालों पर गिर पड़ीं। राजेश कुछ कहना ही चाहता था, रजनी ने तुरन्त उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा—

"बातों के लिए भविष्य बहुत पड़ा है। अभी शाँत रहो।"

रजनी ने जैसे ही हाथ उठाया, राजेश के मुख से फूट पड़ा—

"मुझे क्षमा कर दो देवी। मेरा बच्चा कहाँ है ?"

राजेश की आँखें इस कथन के साथ ही पुनः गीली हो गई। रजनी ने रूमाल से आँखें पोंछकर बच्चे को उसे दे दिया और वह उसे देखते ही गद्‌गद् हो गया। जैसे उसकी सारी पीड़ा शून्य में विलीन हो गई हो।

उसी समय वह डाक्टर भी वहीं आ गया, जो कुछ दिन पूर्व से रजनी को आँखों में बसाकर चल रहा था। वह बोला—

"ये तुम्हारे पति हैं रजनी ?"

रजनी ने सर झुकाकर धीमें स्वर में उत्तर दिया—"जी हाँ।" डाक्टर फिर राजेश से बोला—

"तुम्हारी पत्नी स्त्री नहीं, देवी है, राजेश ."

इन कथन को सुनकर राजेश स्वर्गीय कल्पनाओं में खो गया। बोला वह कुछ नहीं। उसने दृष्टि मोड़ दूसरी ओर देखा—वृद्धा बच्चे को गोद में लिए खड़ी थी। वह भावमग्न हो बच्चे को टकटकी लगा-कर पुनः देखने लगा। राजेश के पिता ने बच्चे को वृद्धा की गोद से अपनी गोद में लेकर राजेश के बिलकुल पास बैठा दिया। राजेश ने एक अंगुली बच्चे के कपोल पर टिका कर, एक आशा भरी लम्बी सी सांस ली। रजनी उस समय एक ओर खड़ी सुखद कल्पनाओं में खोई हुई थी।

रजनी को वहीं छोड़ फिर सब वहाँ से विदा हो गये। सबके जाते ही राजेश रजनी से धीमे स्वर में बोला—

"अब मुझे सड़क पर बैठना पड़ेगा रजनी।"

"क्या कह रहें हैं आप। अभी मैं जीवित हूँ मेरे स्वामी आजीवन मेरे सिर पर स्थान पायेंगें।"

"शरीर का एक अंग तो भंग हो ही गया है देवी।"

"शरीर के अंग तो होते ही भंग होने के लिए हैं, मेरे देवता। इस सम्बन्ध में तो मन का भंग होना दुखदायी होता है और हमारे मन अब

सदैव के लिए एकाकार हो चुके हैं।

"तुम कितनी मूर्ख हो रजनी।"

"क्यों?"

"मेरे सारे अपराधों को एक पल में ही भूल गईं।

"स्वस्थ होने पर दण्ड भी दूंगी।"

यह कहते हुए रजनी के मुख पर धीमी सी मुस्कान फैल गई। उसका ध्यान तुरन्त अपने बच्चे की ओर मुड़ गया।

बच्चा अपने पिता के वक्षस्थल पर अचल शांति से लेटा हुआ उनकी आँखों में आये आँसुओं को अपने नन्हे हाथों से हटाकर इस तरह से देख रहा था जैसे उसे जीवन पर्यन्त के लिए कोई अतुल निधि प्राप्त हो गई है।